श्री महावीराय नमः

श्री जिनेन्द्र पूजा पाठ

अर्थ सहित

(जिनवाणी संग्रह)

अनुवादक एवं संकलनकर्ता

पं० सनत कुमार, विनोद कुमार जैन प्रतिष्ठाचार्य,

रजवाँस (सागर) म.प्र.-४७०४४२

प्रकाशक

श्री अशोक कुमार, अजय कुमार जैन,

जैन इलैक्ट्रीकल्स वाले, 1/6013 कबूल नगर,

शाहदरा, दिल्ली-110032 दूरभाष : 2294932

राकेश कुमार मनीष कुमार जैन

जैनको फोटो स्टेट

185 डबल स्टोरी क्वाटर्स,

कबूल नगर, शाहदरा दिल्ली-32

दूरभाषः 2285118, 2124121

तृतीयावृत्ति

सन्
1999

मूल्य :
(नित्य पूजन—पाठ)

श्री जिनेन्द्र पूजा पाठ

अर्थ सहित

पं० सनतकुमार, विनोद कुमार जैन प्रतिष्ठाचार्य,
रजवांस (सागर) म. प्र. ४७०४४२

© सर्वाधिकार प्रकाशाधीन है।

ला. हुकमचन्द भूषणलाल जैन (खेकड़े वाले)
१/६००५ B, कबूल नगर, शाहदरा, दिल्ली–३२
फोन : २२७५५६४, २२६०७३२

मान्यवर,

सभी धर्म प्रेमी बन्धुओं से नम्र निवेदन है कि यह पुस्तक (श्री जिनेन्द्र पूजा पाठ) करीब–करीब सभी जैन मन्दिरों में पहुंचाने की कोशिश की गई है। यदि किसी कारणवश किसी मन्दिर जी में न पहुंची हो, वह महानुभाव हमें नीचे लिखे पते पर सूचित कर दें या फोन कर दें, उनके वहां पर यह पुस्तक भेजने की व्यवस्था करा दी जाएगी।

नोट :–

१. जिनवाणी की पुस्तक निःशुल्क है।
२. ४ पुस्तकों की पैकिंग डाक व रेलभाड़ा आदि का खर्च ५० रू० का मनीआर्डर एडवाँस भेजना पड़ेगा।
३. जहाँ पारसल मंगवाना है उस स्टेशन व बुकिंग दफ्तर दिल्ली का पता देना होगा।

सप्रेम भेंट :–

श्री भूषणलाल जैन, निर्मल जैन, विपिन जैन, मनोज जैन
१/६००५–B, कबूल नगर (खेकड़े वाले) शाहदरा, दिल्ली–३२
फोन : २२७५५६४, २२८०७३२

मुद्रक : जयभारत प्रिंटिंग प्रेस,
१५२६ A, वैस्ट रोहतास नगर, शाहदरा, दिल्ली–३२
फोन : २२६५०१३, २२६८०६६, २२७५४०७ (निवास)

पुरोवाक्

अध्यात्म विज्ञान का यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि प्राणी जैसा और जिसका ध्यान करता है, वैसा ही बन जाता है। "यद् ध्यायति तद् भवति" इस सत्य से कोई भी व्यक्ति मना नहीं कर सकता। वीतराग जिनेन्द्र की प्रतिमा के सम्मुख श्रद्धा भक्ति समन्वित पूजक खड़ा होकर जब वीतराग जिनेन्द्र की शान्त छवि का दर्शन/स्तवन/पूजन/गुणगान करे, तो वह स्वयं जिनेन्द्र तुल्य गुणवान् बनें इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। जिनपूजा के विशिष्ट फल को बताते हुए जैनाचार्य कहते भी हैं-

इन्द्राणां तीर्थकर्तृणां केशवानां रथाङ्गिनाम्।
सम्पदः सकलाः सद्यो जायन्ते जिनपूजया॥
धनं धान्यं महाभाग्यं सौभाग्यं राजसम्पदा।
पुत्रमित्र कलत्रं च सत्कुलं गोत्रमुत्तमम्॥
दीर्घायुर्दुगतेर्नाशो विनाशः पापसन्ततेः।
अभीष्ट फल सम्प्राप्तिर्मणि मुक्ता फलादिकम्॥
सम्यक्त्वं मुक्ति सद्बीजं भवभ्रमणनाशनम्।
सद्विद्या सच्चरित्रं च सौख्यं स्वर्गापवर्गयोः॥

(सर्वोपयोगी श्लोक संग्रह)

जिनपूजा से इन्द्र, तीर्थङ्कर, नारायण और चक्रवर्तियों की समस्त सम्पदाएँ शीघ्र ही प्राप्त होती है। धन, धान्य, महाभाग्य, सौभाग्य, सम्पदा, पुत्र, मित्र, स्त्री, उत्तम कुल, उच्चगोत्र, दीर्घायु, दुर्गति का नाश, पाप परम्परा का विनाश, अभीष्ट फल की प्राप्ति, मणिमुक्ताफल आदि की उपलब्धि, मुक्ति का उत्तम कारण तथा संसार भ्रमण का नाश करने वाला सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र तथा स्वर्ग-मोक्ष का सुख प्राप्त होता है।

ऋद्धि वृद्धिकारिणी जिनपूजा सर्वार्थसाधिनी है। इसीलिए पद्मनन्दी आचार्य ने भी कहा है-

यः करोति जिनेन्द्राणां पूजनं स्नपनं वा।
सः पूजामाप्य निःशेषां लभते शाश्वतीं श्रियम्॥

जो जिनेन्द्र भगवान का पूजन और अभिषेक करता है, वह सम्पूर्ण पूजा प्रतिष्ठा को प्राप्त कर अविनाशी मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त होता है।

जिस जिनेन्द्र पूजा का इतना माहात्म्य आचार्यों ने प्रतिपादित किया है, वह क्या, किसकी, कैसे करना चाहिए इसका ज्ञान होना आवश्यक है, अतएव संक्षिप्त या उसीका विवरण प्रस्तुत है।

पूज्य के गुणानुवाद, गुणस्मरण, स्तुति स्तवन के साथ पूज्य के प्रति पूजक का पूर्ण समर्पण पूजन है। पूर्ण समर्पणरूप क्रिया सम्यक्त्वर्विधनी है। इसके करने से मन में पवित्रता का अविर्भाव होता है।

आत्मशुद्धि की साधिका स्वरूप महार्चना वीतराग देव की करना ही इष्ट है क्योंकि सरागी देव-देवियों के आश्रय लेने से तो संसार बृद्धि ही है। संसार का होना दुःख का ही कारण है, अतएव सरागी देव-देवियों से भिन्न वीतराग देव का पूजन भजन कार्यकारी होता है इसीलिए भक्त विनयपाठ में प्रार्थना करता हुआ कहता है-

राग सहित जग में रुल्यो, मिले सरागी देव।
वीतराग भेट्यो अबै, मेटो राग कुटेव॥

यहाँ पूजक प्रार्थना करता है कि राग और रागी को छोड़कर वीतराग से भेंट हो, वह वीतराग देव आप्त के सिवाय अन्य नहीं है जिसका स्वरूप प्रतिपादित करते हुए समन्तभद्राचार्य ने कहा है-

आप्तेनोच्छिन्न दोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन, नान्यथा ह्याप्तता भवेत्॥

*रत्न. श्रा.*5

जिसने राग द्वेषादि दोषों का विनाश कर दिया है, जो सर्व चराचर जगत का जानने वाला सर्वज्ञ है और वस्तु-स्वरूप के प्रतिपादक आगम का स्वामी अर्थात् मोक्ष-मार्ग का प्रणेता है, वही पुरुष नियम से सच्चा आप्त होने के योग्य है। अन्यथा आप्तपना हो नहीं सकता।

अप्त ही सच्चे वीतरागी होते हैं जैसा कि आचार्य समन्तभद्र देव कहते हैं-

क्षुत्पिपासा जरातङ्क जन्मान्तकभयस्मयाः।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते ॥

(रत्न. श्री. 6)

जिसके भूख, प्यास, जरा, रोग, जन्म, मरण, भय, मद, राग, द्वेष, मोह, चिन्ता, अरति, निद्रा, विस्मय, विषाद, प्रस्वेद और खेद ये दोष नहीं हैं, वह पुरुष वीतरागी आप्त कहलाते हैं।

वीतरागी आप्त देव की ही पूजा करना अभीष्ट है जिनमें उक्त दोष आदि न पाये जाएं उनकी भक्ति पूजन पवित्र द्रव्यों के द्वारा करना श्रेयस्कर है। द्रव्य की शुद्धि और श्रेष्ठता का अनुसरण भावों की शुद्धि और श्रेष्ठता करती है अर्थात् जैसा द्रव्य होता है वैसे ही परिणाम होते हैं। अतएव पवित्र अष्ट द्रव्यों से विधिपूर्वक जिनार्चना करना चाहिए-

जिन पूजा के पाँच अंग है- अभिषेक, आह्वानम्, स्थापनम् सन्निधिकरण और विसर्जन। इन पाँचों में से एक के बिना भी पूजा दोषप्रद है वर्तमान में आगम से अनभिज्ञ कुछ स्वच्छन्द प्रवृत्ति के लेखकों ने अभिषेक और स्थापना का निषेध किया है, उन्हें अपनी भ्रान्त धारणा को छोड़ देना ही उचित है।

आगम में अभिषेक पूर्वक ही जिन पूजा का विधान है। सिद्ध भक्त्यादि शान्त्यन्ता पूजाभिषेक मंगलं- धर्मामृत।

अर्थात् पूजा अभिषेक और मंगल क्रिया सिद्ध भक्ति पूर्वक होती है।

श्रावक के कृति कर्म की विधि के प्राचीन ग्रन्थों में जो प्रमाण उपलब्ध है, उनमें अभिषेक के संबंध में लिखा है-

अति हेय वंदना सिद्ध चेदिय पंच गुरु संति भत्तीहि। **(भाव संग्रह)** जिनेन्द्र प्रभु का अभिषेक और पूजन सिद्ध भक्ति, पंच गुरु भक्ति और शान्ति भक्ति पूर्वक करना चाहिए। वृहत्सामायिक पाठ में भी लिखा है

स्नपार्चा स्तुति जपान् साभ्यार्थ प्रतिमार्पिति।
पूज्याद्या याम्नाय भाऽद्यादृते सकल्पितेऽर्हंति ॥

भरत ने खोटे स्वप्नों के निवारण के लिए क्या किया था उसका वर्णन करते

हुए श्री जिनसेनाचार्य जी लिखते हैं।

शान्ति क्रियामतश्चक्रे, दुःखस्वप्नानिष्ठ शान्तये।
जिनाभिषेक सत्पात्र दानयैः पुण्य चेष्टितै।।

(आदिपुराण/41.85)

दुःस्वप्न रूपी अनिष्ट की शान्ति के लिए जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक सत्यपात्र दान आदि पुण्य क्रियाओं से शान्तिक्रिया की थी।

अभिषेक करते समय जन्म कल्याणक की कविता जन्ममंगल (वदन उदर अवगाह.....) आदि नहीं पढ़ना चाहिए क्योंकि यहाँ हम जन्माभिषेक नहीं करते। यह अभिषेक हमारा जिन बिम्ब अभिषेक है अतः हिन्दी या संस्कृत का अभिषेक पाठ पढ़कर ही अभिषेक करना चाहिए।

गन्धोदक कहाँ और क्यों लगाना चाहिए इसका उत्तर है। **दृष्टि ज्ञान विशुद्ध्येऽर्चित जलं दृष्टि द्वयं सिंच्यते।**

दोनों आँखों में गन्धोदक लगाने का प्रयोजन यही है कि हमारे सम्यक् दर्शन की विशुद्धि हो।

सारंभइं ण्हवणाइयंह जे सावज्ज भणंति।
दंसणु तेहिं विणासियउ इत्थु ण का यउ भंति।।

(सावयधम्म दोहा २०४)

अर्थात् जो अभिषेक पूजा आदि के समारंभ को सावद्य/दोषपूर्ण कहते हैं उन्होंने सम्यग्दर्शन का नाश कर दिया है इसमें कोई भ्रान्ति नहीं।

पूजन के पूर्व अभिषेक जिस प्रकार आवश्यक है उसी प्रकार आह्वानम् स्थापन और सन्निधिकरण भी आवश्यक है।

पूजा के आरंभ में किन्हीं भी तीर्थंकर की प्रतिमा के सामने ठोना पर पीले चावलों द्वारा भगवान के स्वरूप को दृष्टि के समक्ष लाने का प्रयास करना आह्वानम् है। उनके स्वरूप को हृदय में विराजना स्थापना है, और हृदय में विराजे भगवान के स्वरूप के साथ एकाकार होना सन्निधिकरण है।

पूजक अभिषेक, आह्वानन् स्थापना, सन्निधिकरण करके पूजन में अष्टद्रव्य समर्पण भावपूर्वक प्रवृत्त होता है।

उन द्रव्यों में क्रमशः जल समर्पण से ऐसा भाव है कि जैसी शीतलता जल

में रहती है वैसी मेरी आत्मा में रहे। चंदन समर्पण जीवन सुगंधि प्रदायक है। अक्षत से अक्षय पद की प्राप्ति। पुष्प चढ़ाने के प्रति भाव उनके समान ऐश्वर्य और सुख की प्राप्ति की चाह। नैवेद्य चढ़ाने से भावों में श्रद्धा जगती है कि भगवन्! आपने जिस प्रकार क्षुधा वेदनी का नाश कर दिया है उसी प्रकार मेरी क्षुधावेदनी नष्ट हो। दीपक ज्ञान का प्रतीक है अतः दीपक चढ़ाते समय भाव होना चाहिए कि जिस प्रकार हे भगवान्। आपका ज्ञान दीपक के समान सम्पूर्ण संसार को आलोकित करता है ऐसा ही ज्ञान मेरी आत्मा में प्रकट हो। धूप समर्पण के समय भाव होता है कि प्रकार की धूप की सुगंधि प्रदूषण समाप्त करती है उसी प्रकार मेरी आत्मा का प्रदूषण नष्ट हो जाए। फल चढ़ाने से मोक्ष फल की प्राप्ति का भाव होता है। अष्ट द्रव्यों की समष्टि ही अर्घ्य है। अर्घ्य का अर्थ मूल्यवान भी होता है। तब अर्घ्य समर्पित करके हमारी भावना अनर्घ्य अर्थात् अमूल्यता पाने की रहती है आत्मोपलब्धि ही अमूल्य है।

वसुनन्दि आचार्य ने भी अष्ट द्रव्य चढ़ाने के प्रयोजन फल को बतलाते हुए कहा है कि पूजन के समय नियम से जिन भगवान् के आगे जलधारा के छोड़ने से पाप रूपी मैल का संशोधन होता है। चन्दन समर्पण से मानव सौभाग्य से सम्पन्न होता है। अक्षतों से पूजा करने वाला मनुष्य अक्षय नौ निधि और चौदह रत्नों का स्वामी चक्रवर्ती होता है तथा अक्षोभ और रोग शोक रहित, निर्भय रहता है। अक्षीण लब्धि से सम्पन्न होता है। अन्त में अक्षय मोक्ष सुख को पाता है। पुष्पों से पूजा करने वाला मनुष्य कमल के समान सुन्दर सुख वाला, तरुणी जनों के नयनों से और पुष्पों की उत्तम मालाओं के समूह से समर्चित देह वाला कामदेव होता है। नैवेद्य के चढ़ाने से मनुष्य शक्तिमान, कान्ति और तेज से सम्पन्न तथा सौन्दर्य रूपी समुद्र की वेलावर्ती तरंगों से संप्लावित शरीर वाला अर्थात् अति सुन्दर होता है। दीपों से पूजा करने वाला मनुष्य सद्भावों के योग से उत्पन्न हुए केवल ज्ञान रूपी प्रदीप के तेज से समस्त जीव द्रव्यादि तत्वों के रहस्य को प्रकाशित करने वाला अर्थात् केवल ज्ञानी होता है। अन्तरग जागरण की प्रेरणा मिलती है। धूप से पूजा करने वाला मनुष्य चन्द्रमा के समान त्रैलोक्य व्यापी यशवाला होता है फलों से पूजा करने वाला मनुष्य परम निर्वाण का सुख रूप फल पाने वाला होता है।

आदिपुराण में जिनसेनाचार्य ने भरत द्वारा बताये गये पूजन के प्रकारों पर प्रकाश डाला है- अर्हन्तदेव की पूजा चार प्रकार की होती है। नित्यमह, सर्वतोभद्र, कल्पद्रुमह और आष्टाह्निक पूजा। प्रतिदिन अपने गृह से जिनालय में ले जाये गये गन्ध, अक्षत, पुष्प आदि द्रव्यों से जिन भगवान की पूजा करना नित्यमह कहलाती है। मुकुट बद्ध राजाओं के द्वारा की जाने वाली पूजा महामह या सर्वतौभद्र है। चक्रवर्तियों द्वारा किमिच्छक दान देकर जिनार्चन करना कल्पद्रुममह है। आष्टाह्निक पूजा पर्व में सर्व साधारण जनों के द्वारा नंदीश्वर द्वीपगत जिन प्रतिमाओं की अर्चना आष्टाह्निक पूजा है। इन चार प्रकार की पूजाओं के सिवाय इन्द्रों द्वारा की जाने वाली महान् पूजा को इन्द्रध्वजमह कहते हैं। श्रावक (पूजक) को नित्यमह पूजन करना तो आवश्यक है ही, किन्तु नैमित्तिक पूजाओं को करके भी महान् पुण्य प्राप्त करना चाहिए क्योंकि भव्य मार्गोपदेशक उपासकाध्ययन में आचार्य यही प्रेरणा दे रहे हैं- "प्रतिष्ठा कराने से, अभिषेक से, पूजा करने से और दान के फल से मनुष्य इस इस लोक और परलोक में देवों के द्वारा पूज्य होता है।" जिनाभिषेक, जिनपूजन, जिनप्रतिष्ठा और जिन-गुणकीर्तन करने का जो महान् पुण्य होता है, उसे मैं जड़बुद्धि कैसे वर्णित कर सकता हूं। अतः इतना ही अनुरोध है कि प्रतिदिन आचार्यों के द्वारा बताए हुए मार्ग के अनुसार प्रत्येक श्रावक, श्राविका को जिनेन्द्र भगवान् की पूजन अवश्य ही करना चाहिए। यही जीवन के विकास के लिए आवश्यक है। इसीसे आत्मा की उन्नति भी सम्भव है।

पूजा करते समय उपयोग को स्थिर रखना भी आवश्यक है। उपयोग के स्थिर न रहने से पूजा करने में आनन्द शान्ति और रस नहीं आ सकते हैं। पूजा करने का सच्चा मर्म एकाग्र चित्त वाला ही जान सकता है जिसका चित्त बन्दर के समान चंचल है, वह पूजा से क्या शान्ति प्राप्त करेगा ? मन, वचन और काम के स्थिर हो जाने से पूजा द्वारा ध्यान की सिद्धि भी की जा सकती है। चंचल इन्द्रियो और मन की सरलतापूर्वक विजय की जा सकती है।

पूजन काल में शुभोपयोग रहता है, पाप या बुरी वासनाएं उतने काल तक आत्मा में नहीं आने पाती हैं। पूजक की भावनाओं में इतनी शुद्धि आ जाती है जिससे पुण्य का बन्ध होने से लौकिक दृष्टि से भी प्राणी को दीनता, रोग इनके

निर्धनता आदि बातें नहीं सताती हैं। चित्त में भगवान् के दर्शन, स्तवन और पूजन से अपूर्व शान्ति मिलती है। आत्मा अनुभूति के रस से भर जाती है।

पूजन के समय दो बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। निष्काम फल की आंकाक्षा के बिना पूजन करना और उपयोग मन वचन और काय की स्थिर कर पूजन करना। यदि फल की आंकाक्षा से या किसी कार्य को पूरा करने की आंकाक्षा से पूजा की जायेगी तो कर्तृत्व भाव का आरोप हो जाने से अथवा निदान बांधने से सम्यक्त्व विशुद्ध करने के स्थान में मिथ्यात्व का पोषण होगा। पूजा करने का जो वास्तविक ध्येय है, उसकी सफलता नहीं हो सकेगी। पूजन का फल अचिन्त्य होता है। थोड़े से फल की आंकाक्षा कर उसकी सीमा निर्धारण कर देना कितनी बड़ी मूर्खता है। फल की आंकाक्षा कर पूजा करने वाला कल्पवृक्ष को प्राप्त कर उससे भी चने की सूखी रोटियां मांग ने वाले के समान है। अतः सर्वदा भावपूर्वक शुद्धि के साथ भगवान की पूजा निष्काम होकर करनी चाहिए।

वीतरागी प्रभु की पूजा करने पर अत्यशुद्धि होती है तथा अर्घ्य रूप विकारो की ओर से प्रवृत्ति हटती है जिससे व्यक्ति आंशिक स्वतंत्रता प्राप्त करता है तथा अपने स्वरूप में लीन होने का प्रयत्न करता है।

पूजा को जीव के लिए हितकारी इसीलिए माना गया है कि वह आत्मशुद्धि में सहायक है। आत्मोत्थान की भूमिका इसके द्वारा सम्पन्न की जाती है।

पवित्र आत्माओं की पूजा करने या नाम स्मरण करने से पापों का नाश होता है। अन्तराय कर्म का बल कम हो जाता है। पवित्र आत्मा में जितना शुभराग आता है जीवका उतना ही पाप दूर हो जाता है और पुण्य का बन्ध होता है। इसलीए पूज्य पुरुषों की भक्ति पाप को गलाकर पुण्य प्रकट करती है और सम्यग्यदर्शन को निर्मल बनाती है।

नित्यमह एवं नैमित्तिक रूप में जिनार्चना महती प्रभावना के साथ सम्प्रति होती रहती है। संगीत की स्वर लहरियों में पूजक झूमते हुए अवश्य दिखलायी पड़ते हैं किन्तु शब्दों के अर्थों से शून्य रह जाने के कारण सम्यक् अव-भासना वे नहीं कर पाते हैं जिसके कारण पूजन भक्ति के पूर्ण फल से वंचित भी रह जाते हैं। इस तथ्य को विधि-विधान सम्पादक जिनधर्म प्रचारक विद्वत् युगल पंडित

श्री सनत कुमार और पं० श्री विनोद कुमार जैन रजवांस जिला सागर (म.प्र.) ने जानकर पुरातन विद्वानों/व्रतियों द्वारा रचित पूजाओं में विद्यमान रहस्यों के उद्घाटन पूर्वक अर्थ तैयार कर आराधकों के लिए अनुपम उपहार रूप में प्रदान किया है। इन्होंने पूजाओं में आये हुए बिशिष्ट शब्दों के हार्द को तो उद्घाटित किया ही है साथ में अनेकार्थक शब्दों के भिन्न भिन्न अर्थों को स्फुट कर श्रद्धालुओं की श्रद्धा को शत गुणित कराके उनके सम्यक्त्व गुण को निर्मल बनाने में महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

पंडित श्री सनतकुमार जैन संगीत विद्या में प्रवीण है। अपने मधुरकण्ठ से पूजाओं को प्रस्तुत कर अबाल बृद्ध का मन मोह लेते हैं। मनहर शैली के प्रतिष्ठाचार्य के रूप में आप अभ्युदय को प्राप्त होंगे। पंडित श्री विनोद कुमार जैन विधि-विधान में पूर्ण निष्णात होते हुए पूजाओं के भावों को सरल रूप से प्रस्फुट करने की अपूर्व क्षमतावान् मनीषी हैं। विधि-विधान कराने वाले विद्वानों में अपूर्व अध्यवसायी के रूप में इनका उदय हुआ क्योंकि करणानुयोग में गहरी अभिरुचि रखते हैं। समय समय पर शास्त्रीय विषयों के लिए प्रयत्नशील देखे गये युवा मनीषी ने अपनी प्रतिभा के बल पर पूजाओं के अर्थ किए उन्हें पुस्तकाकार देकर "जिनेन्द्र पूजा पाठ" रूप में सम्पूर्ण जिनभक्तों के करकमलों में प्रदान कर रहे हैं। यह सग्रंह श्रद्धालुओं के लिए आस्था का केन्द्र बनेगा। ज्ञान विकास का साधन होगा। इसके द्वारा कोटि-कोटि भव्यात्माएं जिनेन्द्रार्चना कर जीवन कृतकृत्य करें ऐसी मंगल भावना।

डॉ० श्रेयांसकुमार जैन
12/544 गान्धी रोड, बड़ौत
(बागपत) 250611

अभिमत

श्री पं. सनतकुमार विनोद कुमार जी प्रतिष्ठाचाय, रजवाँस निवासी ने श्री जिनेन्द्र पूजा पाठ नामक पुस्तक का अर्थ सहित संपादन किया है, इस पुस्तक से पूजाओं का अर्थ अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है। इससे पूजा पढ़ते समय भाव भासना हो जाने से पूजक को विशेष लाभ हो सकता है। लेखक का प्रयास श्लाघनीय है।

—डॉ० पन्नालाल साहित्याचार्य, सागर

दो शब्द

मुझे प्रसन्नता है कि म०प्र० के अन्तर्गत रजवांस निवासी पं० सनतकुमार एवं पं० विनोदकुमार ये दोनों बन्धु अपनी नवीन रचना लेकर आये। ये दोनों बन्धु पूजा पाठ प्रतिष्ठादि कार्य के सिवाय जैन तत्त्वज्ञान में भी हमेशा प्रवृत्त रहते हैं। नई रचना में इन्होंने हिन्दी एवं संस्कृत पूजाओं के सरल भाषा में अर्थ भी लिखे है। प्राचीन द्यानतराय आदि कवियों के शब्दों में जहाँ सामान्य जन भ्रमित हो जाते हैं। वहाँ इन्होंने अर्थ को स्पष्ट किया है। यह एक अपूर्व बात है। ऐसे अनेक उदाहरण इस रचना में मिलते हैं। इन उदीयमान विद्वानों की इस रचना का हम स्वागत करते हैं और बधाई देते हैं ये आगे बढ़ते जायें, इनका क्षयोपशम ज्ञातव्य है।

आशा है आगे भी इसी प्रकार की रचनाओं का उदय इनके द्वारा होगा।

धन्यवाद !

डॉ० दरबारी लाल कोठिया न्यायाचार्य

29 जनवरी 1998 — बीना (सागर) म०प्र०

भावना

श्री जिनेन्द्र पूजा पाठ संग्रह जिनवाणी अनुवादक एवं संकलन कर्त्ता पं० सनतकुमार विनोद कुमार जैन प्रतिष्ठाचार्य रजवाँस की कृति बहुत सुन्दर और

भाव प्रधान अर्थ होने से अत्याधिक उपयोगी बन गई है। पूजा करने वालों को अर्थ समझना आवश्यक है। अर्थ का ज्ञान हो जाने से भावों में निर्मल एवं शान्ति मिलती है। जिन धर्म भावना प्रधान है। भक्त भक्ति की भावना से पूजा करता है। पाठ करता है उसको भाव भाषण हो जाने से मन में एकाग्रता आती है। उत्तम प्रयास किया है अर्थ सहित जिनवाणी संग्रह कम देखने में आये हैं उस शेष कमी को दूर करने में यह संग्रह बहुत उपयोगी बन गया है। भक्ति-मुक्ति का प्रथम द्वार है। भाव-भक्ति सहित प्रत्येक क्रिया संसार काटने में सहायक है।

देवशास्त्र गुरु की पूजा एवं दक्ष लक्षण धर्म की पूजा का अर्थ सुन्दर और भावना प्रधान है। जो ह्दय को छू लेता है। हमारे यहां ग्रहस्थ एवं श्रावक के चौके में सोला का महत्त्व है उसका खुलासा किया गया है उन क्रियाओं को जान लेने से भोजन शुद्धि होती है। भोजन की सामग्री का मन पर प्रभाव पड़ता है कहावत है जैसा खाओ अन्न वैसा होवे मन इसे स्वास्थ विज्ञान भी मानता है

इस संग्रह में भक्तामर, तत्त्वार्थ सूत्र और सहस्त्रनाम लिए गए है जो नित्य पाठ के आवश्यक अंग है। अनुवादक एवं संकलन कर्त्ता का परिश्रम सार्थक हो गया है अब पूजा पाठ करने वालों का कर्तव्य है कि अर्थ समझ कर अपने परिणामों को सम्हाल लें। बंधतो परिणामों से होता है। परिणामों की निर्मलता से शुभ भावना बनती है वही भावना हमारे लिए उपयोगी है।

मैं मंगल कामना करता हूँ कि श्री पं० सनतकुमार विनोद कुमार जी अपने जीवन में ऐसे ही उपयोगी संकलन समाज को देते रहेंगें वे स्वंय ही प्रतिष्ठाचार्य है सरल परिणामी है उनका जीवन उज्ज्वल हो और माँ जिन वाणी की सेवा में सदैव रत रहे। इस जिवाणी संग्रह का प्रचार प्रसार हो। घर घर एक प्रति रहे जिन मंदिरों में रहे अधिक से अधिक लोग इसका लाभ ले सकें इसी मंगल भावना में साथ उनके जीवन के प्रति शुभकामनाऐं।

सागर मल जैन
संरक्षक
अ.भा.दि० जैन शास्त्रीय परिषद

टीकमगढ़ म०प्र०
4/12/1998

समाज में नित्य नैमित्तिक पूजन-पाठ के लिये कई लेखक-विद्वानों की पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वर्तमान में युवा पीढ़ी अंग्रेजी माध्यम से अध्ययन कर रही है। इसलिये संस्कृत की पूजन प्रायः कम की जाती है परन्तु हिन्दी की पूजनें संगीत स्वर लहरी से खूब प्रचलित है। पूजन करने एवं कराने वालों को हिन्दी की पूजनों के अर्थ भी प्रायः समझ में नहीं आते हैं इस बात की कमी सभी को खलती थी। मेरे मन में भी यह बात आती थी कि पूजनों के अर्थ लिखे जायें परन्तु जब मैंने अर्थ सहित कृति मा० प्रतिष्ठाचार्य बन्धु पं० सनतकुमार विनोद कुमार जैन द्वारा अनुदित - सम्पादित देखी तो मेरा मन प्रसन्न हो गया वस्तुतः श्री जिनेन्द्र पूजा पाठ में संग्रहित पूजनों के अर्थ तर्क संगति ढंग से लिखे गये हैं। प्रत्येक पूजन करने वाले महानुभाव को इस कृति के माध्यम से अर्थ समझना चाहिये फिर पूजन करने की भाव मासना सुनिश्चित ही फलदायी होगी। कृति के लेखक विद्वान बधाई के पात्र हैं। मैं इनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

आशा है इस प्रमाणिक पूजन कृति को प्रत्येक जिन मंदिर में आदर्श मानकर जरूर रखेंगें।

(डॉ० शीतल चन्द जैन)
प्राचार्य

निदेशक
श्री दि० जैन श्रमण संस्कृति संस्थान
सांगानेर, जयपुर
मंत्री
वीर सेवा मंदिर ट्रस्ट जयपुर
उपाध्यक्ष
अ०भा०दि० जैन विद्वत, परिषद

श्री दि० जैन आ. स. महा.
मनिहारों का रास्ता जयपुर

प्रकृत "जिनेन्द्र पूजा पाठ" अभिमत।

जैन दर्शन के महावीर परम्परागत अनेक आचार्यों ने धर्म पुरुषार्थ के अन्तर्गत गृहस्थ जीवन के छहकर्तव्यों का निर्देश किया है। (1) देवपूजा, (2) गुरु भक्ति, (3) स्वाध्याय, (4) संयम, (5) तप (इच्छा निरोध), (6) दान। सोम प्रभ आचार्य देवाचार्य ने मानव रूप वृक्ष के छह फल दर्शाये हैं उनमें प्रथम फल

देवार्चा का कथन किया है। मूलाचार में कृति कर्म के नाम से कथन है। इससे सिद्ध होता है कि जैन सिद्धान्त में जिनेन्द्र अर्चा का बहुत महत्त्व है।

उस जिनेन्द्र पूजा का अध्ययन, मनन, प्रयोजन पूज्य, पूजक, पूजा और पूजा फल को समझने के लिये श्री पं० सनतकुमार जी एवं पं० विनोद कुमार जी प्रतिष्ठाचार्य ने अतिपरिश्रम के साथ इस प्रकृत पुस्तक का निर्माण कर बाल, वृद्ध, युवक नरनारियों को पूजाकर्तव्य का मार्ग सरल सुबोध कर दिया है। प्रतिष्ठाचार्य महोदय अभिनन्दन के पात्र है। हम इस पुस्तक की मनसा वाचा कर्मणा लोक में प्रभावना चाहते हैं।

दयाचन्द्र सहित्याचार्य
प्राचार्य
श्री गणेश दि० जैन संस्कृत
महाविद्यालय का सागर
दि० 13/12/1997

दो शब्द

प्रतिष्ठाचार्य सिंघई पवनकुमार शास्त्री "दीवान"

"देवलोक ताको घर आंगन, राजसिद्धि सेवै तसु पाय।
ताके तन सौभाग्य आदि गुण, केलि विलास करैं नित आय।
सो नर तुरत तिरै भवसागर, निर्मल होय मोक्ष पद पाय।
द्रव्य भाव विधि सहित " बनारसि" जो जिनवर पूजे मन लाय।

(पूजाधिकार-बनारसी विलास पृष्ठ-22 कवि वनारसीदास) भव दुःख से संतप्त जीवको जिनेन्द्र भक्ति ही एक मात्र दुःख की नाशक है, बशंते भक्ति निदान रहित। निष्काम हो, क्योंकि निष्काम भक्ति ही निःधत्ति-निकाचित जैसे कर्मों का नाश करती है। सम्प्रति शुद्धोपयोग की अप्राप्ति वश धर्मध्यानान्तर्गत जिन भक्ति रूप शुभोपयोग ही मात्र एक अवलम्बन है भव्यजनों को मुक्ति पथ पर अग्रसर करता है। पूजन करते समय मात्र जहाँ अच्छी द्रव्य का समर्पण मात्र ही पूजा नहीं बल्कि द्रव्य के साथ उत्तम भावों का संजोयन भी परमावश्यक है।

द्रव्ययुक्त भाव पूजन ही श्रा वकोचित है। क्योंकि मुनि द्रव्यपूजा का अधिकारी नहीं है तो गृहस्थ भी केवल भावपूजा का अधिकारी नहीं है। यद्यपि संसार का बन्ध एवं वृद्धि भावश्रित ही है अतएव पूजने करते समय भावों/परिणामों का लगना चित्त की एकाग्रता व योगों की जिनभक्ति रूप तन्मयता होना परमआवश्यक है।

जैन पूजा साहित्य के अनेकों संस्करण वैयक्तिक व संस्थागत प्रकाशित हुये हैं किन्तु वह सभी केवल पूजामात्र तक ही सीमित है भावार्थ रहित हैं, प्रस्तुत कृति में यद्यपि पूजनें अधिक नहीं है तथापि नित्यमह से पर्व विशेष की सभी पूजनों के हिन्दी अर्थ कवि हृदय प्रतिष्ठाचार्य पं० श्री विनोद जी द्वारा संकलित किये गये। यह इसकी विशेषता है। जो अन्यत्र देखने में नहीं आती है।

स्वभावतया सरल, विनम्र, व श्रेष्ठ क्षयोपशमी, जिज्ञासु विद्वान श्री पं० विनोदजी अपने अग्रज संगीतचार्य पं० श्री सनत जी सहित राम-लखन जी वत् अत्यल्प काल में ही अच्छी लोकप्रियता को प्राप्त कर रहे हैं। प्रतिष्ठा विधि विधान की शैली भी हृदय स्पर्शी एवं आगमोक्त ही है। निःसन्देह प्रस्तुत कृति जनसाधारण में पहुँचकर जनोपयोगी होगी। घर-घर में, जन-जन में कृति का समादर हो यही शुभ भावना है और विद्वतद्वय/ भ्रातद्धय आगे भी इसी प्रकार साहित्य-संस्कृति सेवा में संलग्न रहे कुल-ग्राम युत स्व पर के लिये श्रेष्ठ यशोपार्जन करते हुए आत्म कल्याण रत हों।

॥इतिशुभम ॥

तीर्थ राज श्री सम्मेद शिखर
फाल्गुन शुक्ला 10
अष्टान्हिका पर्व
वीर नि०-2524
दि० 7/3/98

व्याख्यता
श्री दिगम्बर जैन श्रमण
संस्कृति संस्थान
सांगानेर (जयपुर)
राजस्थान पि० 303802

विषय-सूची

क्र०		पृष्ठ संख्या	क्र०		पृष्ठ संख्या
1.	अपनी बात		23.	श्री सोलह कारण पूजा	142
2.	पुरोवाक्		24.	श्री पंचमेरु पूजा	150
3.	अभिमत		25.	श्री नंदीश्वर पूजा	158
4.	मंगलाचरण	1	26.	श्री दशलक्षण धर्म पूजा	167
5.	मगलाष्टक	2	27.	रत्नत्रय पूजा	182
6.	दर्शन पाठ	6	28.	रविव्रत पूजा	198
7.	अभिषेक पाठ	9	29.	सरस्वती पूजा	203
8.	शान्ति धारा	14	30.	नव देवता पूजा	206
9.	अभिषेक आरती	16	31.	स्वयंभू स्रोत (हिन्दी)	210
10.	विनय पाठ	17	32.	निर्वाण काण्ड (भाषा)	213
11.	पूजन पीठिका	23	33.	अर्घ्यावली	215
12.	देव शास्त्र गुरु पूजन	37	34.	महार्घ्य	222
13.	देव शास्त्र गुरु विद्यमान बीस तीर्थंकर अनंतानंत सिद्ध पूजा	47	35.	शान्ति पाठ	223
			36.	विसर्जन	226
14.	विदेह क्षेत्र विद्यमान बीस तीर्थ का पूजा	55	37.	महावीराष्टक	228
			38.	भक्तामर (हिन्दी)	231
15.	अकृत्रिम चैत्यालय अर्घ्य	63	39.	भक्तामर (संस्कृत)	240
16.	सिद्ध पूजा (संस्कृत)	67	40.	तत्वार्थसूत्रजी	256
17.	वर्तमान चौबीस तीर्थंकर पूजा	78	41.	सह स्त्रनाम जी	286
18.	श्री आदिनाथ जिनपूजा	85	42.	जाप्य मंत्र	308
19.	श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा	96	43.	सोला	311
20.	श्री शान्तिनाथ जिनपूजा	110	44.	सूतक विधि	312
21.	श्री पार्श्वनाथ जिन पूजा	121	45.	मर्यादा चार्ट	314
22.	श्री महावीर जिन पूजा	131			

श्री महावीरायनमः

श्री जिनेन्द्र पूजा पाठ

(अर्थ सहित)

जिनवाणी संग्रह

मंगलाचरण

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आइरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्व साहूणं

स्याद्वाद नय षट द्रव्य गुण पर्याय और प्रमाण का
जड़ कर्म चेतन बंध का अरु कर्म के अवसान का
कह कर स्वरूप यथार्थ जग का जो किया उपकार है
उसके लिए जिनवाणी तुम को वंदना शतवार है।

*   *   *   *   *   *

पाप पंथ परिहरो, मोक्ष पंथ पगधरो
अभिमान नहीं करो निंदा को निवारी है
छोड्यो हो संसारी संग, ज्ञानी थाकी राख्यो रंग
सुमति को करो संग, बड़ो उपकारी है।
मुनि मन निर्मल, जैसा है, गंगा का जल
काटत कर्म बंध सप्त तत्व धारी है।
संयम की करे जप, बारह विधि धरे तप
ऐसे मुनि राज जी को वंदना हमारी है।

श्री मंगलाष्टकस्तोत्र

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमोगणी
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलं

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धीश्वराः।
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्रीसिद्धान्तसुपाठकाः मुनिवराः रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु ते मंगलम्॥1॥

अर्थ- इन्द्रों द्वारा जिनकी पूजा की गई, ऐसे अरिहन्त भगवान्, सिद्धि के स्वामी ऐसे सिद्ध भगवान्, जिन शासन को प्रकाशित करने वाले ऐसे आचार्य सिद्धांत को सुव्यवस्थित पढ़ाने वाले ऐसे पूज्य उपाध्याय, रत्नत्रय के आराधक ऐसे साधु, ये पाँचों परमेष्ठी प्रतिदिन तुम्हारे पापों को नष्ट करें और तुम्हें सुखी करें।

श्रीमन्नम्र - सुरा - सुरेन्द्र - मुकुट - प्रद्योत - रत्नप्रभा-
भास्वत्पादनखेन्दवः प्रवचनाम्भोधीन्दवः स्थायिनः।
ये सर्वे जिन-सिद्ध-सूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरवः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥1॥

अर्थ- शोभायुक्त और नमस्कार करते हुए देवेन्द्रों और असुरेन्द्रों के मुकुटों के चमकदार रत्नों की कांति से जिनके श्री चरणों के नखरूपी चन्द्रमा की ज्योति स्फुरायमान हो रही है। और जो प्रवचन रूप सागर की वृद्धि करने के लिए स्थायी चन्द्रमा हैं एवं योगिजन जिनकी स्तुति करते रहते हैं, ऐसे अरिहन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु ये पांचों परमेष्ठी पापों को क्षालित करें और तुम्हें सुखी करें॥1॥

सम्यग्दर्शन - बोध- वृत्तममलं रत्नत्रयं पावनं,
मुक्तिश्री नगराधिनाथ - जिनपत्युक्तोऽपवर्गप्रदः।
धर्मः सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयः श्र्यालयः,
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥2॥

अर्थ-निर्मल सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र यह पवित्र रत्नत्रय है। श्री सम्पन्न मुक्तिनगर के स्वामी भगवान् जिनदेव ने इसे अपवर्ग (मोक्ष) को देने वाला धर्म कहा है। इस प्रकार जो यह तीन प्रकार का धर्म कहा गया है वह तथा इसके साथ सूक्तिसुधा (जिनागम), समस्त जिन-प्रतिमा और लक्ष्मी का आकार भूत जिनालय मिलकर चार प्रकार का धरम कहा गया है वह तुम्हारे पापों का क्षय करें और तुम्हें सुखी करें ॥2॥

नाभेयादिजिनाः प्रशस्त-वदनाः ख्याताश्चतुर्विंशतिश्,
श्रीमन्तो भरतेश्वर-प्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश।
ये विष्णु-प्रतिविष्णु लाङ्गलधराः सप्तोत्तरा विंशतिस्,
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्टि-पुरुषाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥3॥

अर्थ- तीनों लोकों में विख्यात और बाह्य तथा आभ्यन्तर लक्ष्मी सम्पन्न ऋषभनाथ भगवान् आदि चौबीस तीर्थंकर, श्रीमान् भरतेश्वर आदि 12 चक्रवर्ती, नव नारायण नव, प्रतिनारायण और नव बलभद्र ये 63 शलाका महापुरुष पापों का क्षय करें और तुम्हें सुखी करें ॥3॥

ये सर्वौषधि-ऋद्धयः सुतपसां वृद्धिंगताः पञ्च ये,
ये चाष्टाङ्ग-महानिमित्तकुशलाश्चाष्टौ वियच्चारिणः।
पञ्चज्ञानधरास्त्रयोऽपि बलिनो ये बुद्धिऋद्धीश्वराः
सप्तैते सकलार्चिता मुनिवराः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥4॥

अर्थ- सभी औषधि ऋद्धिधारी, उत्तम तप ऋद्धिधारी, अवधृत क्षेत्र से भी दूरवर्ती विषय के आस्वादन, दर्शन, स्पर्शन, घ्राण और श्रवण की समर्थता की ऋद्धि के धारी, अष्टांग महानिमित्त विज्ञता की ऋद्धि के धारी, आठ प्रकार की चारण ऋद्धि के धारी, पाँच प्रकार के ज्ञान की ऋद्धि के धारी, तीन प्रकार के बलों की ऋद्धि के धारी और बुद्धि-ऋद्धीश्वर, ये सातों जगत्पूज्य गणनायक तुम्हारे पापों को क्षालित करें और तुम्हें सुखी बनावें। बुद्धि, क्रिया, विक्रिया, तप, बल, औषध रस और क्षेत्र के भेद से ऋद्धियों के आठ भेद हैं ॥4॥

ज्योतिर्व्यन्तर भावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ स्थिताः
जम्बूशाल्मलि-चैत्य-शाखिषु तथा वक्षार रूप्याद्रिषु।
इक्ष्वाकार-गिरौ च कुण्डल-नगे द्वीपे च नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिन-गृहाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥5 ॥

अर्थ- ज्योतिषी, व्यन्तर, भवनवासी और वैमानिकों के आवासों, के मेरुओं, कुलाचलों, जम्बू वृक्षों और शाल्मलिवृक्षों, वक्षारों, विजयार्धपर्वतों, इक्ष्वाकारपर्वतों, कुंडलपर्वत, नन्दीश्वरद्वीप, और मानुषोत्तरपर्वत (तथा रुचिकवर पर्वत) के सभी अकृत्रिम जिन चैत्यालय तुम्हारे पापों का क्षय करें और तुम्हें सुखी बनावें ॥5 ॥

कैलासे वृषभस्य निर्वृत्तिमही वीरस्य पावापुरे।
चम्पायां वसुपूज्यसज्जिनपतेः सम्मेदशैलेऽर्हताम्।
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे नेमीश्वरस्यार्हतो
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥6 ॥

अर्थ-भगवान् ऋषणभदेव की निर्वाणभूमि कैलाश पर्वत पर है। महावीरस्वामी की पावापुर में है । वासुपूज्य स्वामी की चम्पापुरी में है । नेमिनाथ स्वामी की ऊर्जयन्त पर्वत के शिखर पर और शेष बीस तीर्थंकरों की निर्वाणभूमि श्री सम्मेदशिखर पर्वत पर है, जिनका अतिशय और वैभव विख्यात है । ऐसी ये सभी निर्वाण भूमियाँ तुम्हें निष्पाप बना दें और तुम्हें सुखी करें ॥6 ॥

सर्पो हारलता भवत्यसिलता सत्पुष्पदामायते,
सम्पद्येत रसायनं विषमपि प्रीतिं विधत्ते रिपुः।
देवा यान्ति वशं प्रसन्नमनसः किं वा बहु ब्रूमहे,
धर्मादेव नभोऽपि वर्षति नगैः कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥7 ॥

अर्थ- धर्म के प्रभाव से सर्प माला बन जाता है, तलवार फूलों के समान कोमल बन जाती है, विष अमृत बन जाता है, शत्रु प्रेम करने वाला मित्र बन जाता है और देवता प्रसन्न मन से धर्मात्मा के वश में हो जाते हैं । अधिक क्या कहें धर्म से ही आकाश से रत्नों की वर्षा होने लगती हैं वही धर्म तुम सब का कल्याण करें ॥7 ॥

यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो,
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः केवलज्ञानभाक्।
यः कैवल्यपुर-प्रवेश-महिमा सम्पादितः स्वर्गिभिः
कल्याणानि च तानि पञ्च सततं कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥8॥

अर्थ- तीर्थंकरों के गर्भकल्याणक, जन्माभिषेक कल्याणक, दीक्षा कल्याणक, केवलज्ञान कल्याणक और कैवल्यपुर प्रवेश (निर्वाण) कल्याणक के देवों द्वारा सम्भावित महोत्सव तुम्हें सर्वदा माङ्गलिक रहें ॥8॥

इत्थं श्रीजिन-मङ्गलाष्टकमिदं सौभाग्य-सम्पत्करम्,
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थंकराणामुषः।
ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनै धर्मार्थ कामान्विता,
लक्ष्मीराश्रयते व्यपाय-रहिता निर्वाण लक्ष्मीरपि॥1॥

अर्थ- सौभाग्य सम्पत्ति को प्रदान करने वाले इस श्री जिनेन्द्र मंगलाष्टक को जो सुधी तीर्थंकरों के पंचकल्याणक के महोत्सवों के अवसर पर तथा प्रभातकाल में भावपूर्वक सुनते और पढ़ते हैं, वे सज्जन धर्म, अर्थ और काम से समन्वित लक्ष्मी के आश्रय बनते हैं और पश्चात् अविनश्वर मुक्तिलक्ष्मी को भी प्राप्त करते हैं।

कानों अन्ध धुन्ध टेंद, फुली आँख में सुजान,
कान कटे नाक कटी, भंग अंग ठानिये,
खोड़ों कुब्ज पंगु तोतुला सुभंग।
अंगुरी न होय मेद गाँठ गूंगा खांसी जु प्रमानिये।
फोड़ा कोढ़ कक्ष दाद बवेसी अदीठ जानिये
बहिरा भगंदर सुस्वेत दाग आनिये।
व्यसन जो सात लीन, श्वांस रोग, नाक बहै,
एते नर-नारिन को पूजा मनै जानिये॥

(समवशरण विधान)

जन्म जन्मकृतं पापं जन्म कोटिमुपार्जितम्।
जन्म मृत्यु जरा रोगं हन्यते जिन दर्शनात्॥१२॥

जन्म जन्म अर्थात् अनेक जन्मों के किये हुए पाप, करोड़ों जन्मों के उपार्जित कर्म, जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा आदि रोग, हे जिनेन्द्र भगवान आपके दर्शन से नष्ट हो जाते हैं।

अद्या भवत्सफलता नयन द्वयस्य,
देवत्वदीय चरणां बुज वीक्षणेन्।
अद्य त्रिलोक तिलक प्रतिभासते में,
संसार वारिधिरयं चुलुक प्रमाणः ॥१३॥

आज हे जिनेन्द्र भगवान आपके चरण कमल के देखने से हमारे दोनों नेत्र सफल हो गये हैं आज तीन लोक तिलक स्वरूप भगवान के दर्शन करने से हमारा संसार समुद्र अंजुलि के समान रह गया है।

गुणगणमणिमालाए जिणमयगयणे णिसायरमुणिंदो।
तारावलिपरिचरिओ पुण्णिमइं दुव्व पवणमहे॥१५८॥ भाव प्रा.

जिस प्रकार आकाश में ताराओं की पंक्ति से सहित पूर्ण चन्द्रमा सुशोभित होता है उसी प्रकार जिनमत रूपी आकाश में गुण समूह रूपी मणियों की माला से युक्त मुनि-रूपी चन्द्रमा सुशोभित होता है।

ध्रुवसिद्धी तित्थयरो चउणाणजुदो करेई तवयरणं।
णाऊण ध्रुवं कुज्जा तवयरणं णाणजुत्तो वि ॥६०॥ मोक्ष प्रा.॥

जो ध्रुव सिद्धि है—अर्थात् जिन्हें अवश्य ही मोक्ष प्राप्त होता है तथा जो चार ज्ञानों से सहित हैं ऐसे तीर्थंकर भगवान् भी तपश्चरण करते हैं ऐसा जानकर ज्ञान युक्त पुरुष को तपश्चरण करना चाहिये।

(आचार्य कुन्दकुन्द)

अभिषेक पाठ हिन्दी

श्री मत्स्याद्वाद के नायक तीन लोक से पूजित ईश।
चार अनंत चतुष्टय राजित श्री जिन भव्य नवावत शीश ॥
शुद्ध दृष्टि से गुण चिन्तन में कारण आतम रूप महान।
कायोत्सर्ग नवकार मंत्र-जप, करूँ त्रियोग कर्म की हान ॥

अथ पौर्वान्हिक/माध्यान्हिक/अपरान्हिक देव वन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल कर्म क्षयार्थं भाव पूजा वंदना स्तव समेतं श्रीपंच महागुरुभक्ति कायोत्सर्ग करोम्यऽहम्।

पावन शीतल केशर चन्दन सलिल संग दीजे घिसवाय।
नव स्थान पर तिलक लगावें तब जिनवर न्हवन को आय ॥
शिखा कण्ठ अरु हृदय भुजा शिर कान कुक्षि कर नाभिजाय।
तिलक लगा कर जिनवर पूंजे बने पुजारी भाग्य सु पाय ॥

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं हः मम सर्वांग शुद्धिं कुरु कुरु

शारद मुख से निर्गत श्री है, विघन विनाशक मंगल रूप।
सब जीवों को शान्ति प्रदाता, स्वस्तिक मय है आत्मस्वरूप ॥
भद्र पीठ पर लिखकर श्री को जिनवर की कर स्थापन।
विधि अभिषेक करूँ जिनवरका होवेगा तनमन पावन ॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री लेखनं करोमि।

श्री जिन के पद पंकज कोनमि नित्य सही विधि न्हौन प्रसारे।
ताहित सन्मुख तिष्ठत उज्जवल द्रव्य सुधार इहाँ विस्तारे ॥
कंचन पीठ पै लिख कर स्वस्तिक पुष्प सुगंधित धोकर डारे।
ता मधि तोय शिवालय नायक, हो अभिषेक हितार्थ सुधारे ॥

ओं ह्रीं श्री धर्म तीर्थाधिनाथ भगवन्निह स्नपन पीठे तिष्ठ तिष्ठ। इति प्रतिमा स्थापनम्।

रत्न स्वर्णमय कलश मनोहर क्षीरोदधि से लिए भराय।
केशर स्वस्तिक लिखकर सुन्दर-चार कौन पै चार धराय॥
भाग्य उदय मम आया प्रभुवर न्ह्वन करूँ जिनवर हर्षाय।
सम्यक् दर्शन साधन पाकर यह मिथ्यात्व कर्म नश जाय॥

ओं ह्रीं स्वस्ते चतुः कोणेषुचतुः कलश स्थापनं करोमि।

दिव्य मनोहर सुर तरु से ले हर्षित होकर सुरगण आय।
वादित्रों के अनुपम स्वर में श्री जिनवर के गुण को गाय॥
नीर गंध चरु पुष्पसु अक्षत दीप धूप फल अर्घ्य बनाय।
अर्चन करता प्रभु चरणों का अवसर आज मिला है आय॥

ओं ह्रीं स्नपन पीठ स्थित श्री जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वा० स्वाहा॥

मैं अनादि से जामन मरण बहु किये।
वह मिटाने को भगवान का न्ह्वन करूँ।

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तंतं पं पं झं झं щ्वीं इवीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्रतर जलेन जिनाभिषेचयामि स्वाहा।

कृत्रिम और अकृत्रिम बिंब सनातन राजित श्री जिन तेरे।
तासु तनी नित भव्य उपासन भानत ठानत कर्म करे रे।
क्षीरसमुद्र नदी नद तीरथ तासु तनो जल प्रासुक है रे।
कंचन कुम्भ भरे परिपूरित ल्याय यथा क्रम उत्थित टेरे।

ओं ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसंतं वृषभादि महावीर पर्यन्त चतुर्विंशांति तीर्थंकर परमदेवं मध्य लोके जम्बू द्वीपे भारत क्षेत्रे आर्य खण्डे .... देशे .... प्रान्ते .... नाम्नि नगरे .... जिनालये .... वीर निर्वाण। संवत्सरेमासानामुत्तमेमासे .... मासे .... पक्षे .... तिथौ........ शुभ दिने मुनि आर्यिका श्रावक श्राविकाणां सकल कर्म क्षयार्थं जलेनाभिषेचयामि।

कर्म जंजीर जुरो यह जीव शुभाशुभ भोगत ज्ञान न पायो।
पै अब काल सुलब्धि प्रसाद लह्यो तुम दर्शन आनंद पायो।

हो तुम कर्म कलंक विनाशक प्रेम तऊ इत प्रेरित आयो।
हो गुण कार करूँ अभिषेक वरूं शिव नार समय यह पायो ।।

ओं ह्रीं श्री वृषमादि वीरान्तान् सिद्ध यंत्र च जलेन स्नपयामि ।

यों कह दीप चहुंदिश जोय कियो बहु धूप सुधूपक केरौ।
बाजत ताल सुबीन मृदंग सु जिन गुण गावत भाव सुटेरौ।
जय जिनराज सु विरद उचार कियौ अभिषेक जिनेश्वर तेरौ।
तासम शक्ति प्रमाण इहाँ हमठानत मानत कर्म करेरौ।

ओं ह्रीं श्री मंन्तं भगवन्तं ....

अष्टादश दोष रहित तुम पावन अमल चिदानंद ज्योति स्वरूपी।
वीत राग सर्वज्ञ हितैषी शुद्धातम तन रहित अरूपी
मै आतम रूप नहिं जाना राग द्वेष की परिनति ठानी।
इसी मलिनता धोने को प्रभु करता न्ह्वन त्रिभुवन ज्ञानी।

ओं ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं..................

तन बिन सहज पवित्र प्रभुवर मज्जन तन विन बनता नाहीं।
तुम पवित्रता कारण भगवन न्ह्वन करने की विधि नाहीं ।।
मै मलीन रागादिक मल से दुःख उपजाया बन अज्ञानी।
मिले नाथसद् ज्ञान आत्म का, इसीलिए मज्ञन की विधि ठानी ।।

ओं ह्रीं श्रीमतं भगवन्तं...............

वीतानंतानंत काल नहिं शुचिता अब तक मन में आई।
पुण्य संयोग मिला यह नरतन भक्ति भावना आतम पाई ।।
जलाभिषेक मैं करूँ आपका पाप न कन मनमें रह जावै।
शरण आपका पाकर जिनवर जन्म मरण के दुःख नश जावै ।।

ओं ह्रीं श्री मन्तं भगवन्तं...............

यंत्राभिषेक

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय साधु मुनिवर है निज ज्ञानी ॥
जग में मंगलमय सुखदायक भविजन को शिवमारग दानी ॥
उत्तम जग को शर्न सदा ही जीवन में सब विधि सुखदानी ।
श्री विनायक सिद्ध यंत्र का न्हवन करते हैं भव प्रानी ॥

ओं ह्रीं भूर्भूवः स्वः विघ्नौध वारकं विनायक सिद्ध यंत्रं जलेनाभिषिंच यामि ।

(यहाँ शान्ति धारा करे)

नीर महा शुचि गंधित चन्दन पुष्प सुअक्षत लेअनियारे ।
व्यंजन संयुत लेचरू उत्तम दीप धूप फल अर्घ सुधारे ॥
यों बसु द्रव्य तनों कर अर्घ उतारि उतारि जजों पद थारे ॥
द्यो मोहि शीघ्र शिवालय वास सदा तुम भव्य उवारन हारे ॥

ओं ह्रीं अभिषेकान्ते वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो अर्घ्यं निर्वा० स्वाहा

ले शुचि उज्जवल स्वर्ग समुद्भव वस्त्र अलौकिक हाथ मंझारे ।
तव तन ऊपर नीर निहार सतत् परिमार्जन को विस्तारे ॥
पुलकित भक्ति भाव से भविजन निरखत पावन रूप तिहारे ।
धन्य धन्य जिन राज लोक मैं वसु विधि कर्म जलावन हारे ॥

ओं ह्रीं अमलां शुकेन जिन बिम्बं मार्जन करोम्यहम् ।

विनय सहित अभिषेककर धारा शान्ति कराय ।
प्रक्षालन कर बिम्ब को सिंहासन पधराय ॥

ओं ह्रीं सहस्त्रनाम स्त्रोतं तदशं व पठित्वा जिन विम्बंसिंहासने स्थापयामि ।

यो अभिषेक कियो अब पूरन पूजन के हित अर्घ सुधारों ।
तीरथ को जल प्रासुक चन्दन अक्षत अक्षित पुष्पसुधारो ॥
ले चरु उत्तम दीप सुधूप फलार्घ करौ वरमंत्र उचारौ ।
वार धरो तुम चरनन के ढिग हो जिन तारक मोहि उवारो ॥

ओं ह्रीं श्री सिंहासन स्थित जिनाय अर्घ्यं निर्वा० स्वाहा ।

जिन तन परस पवित्र भयो गन्धोदक जन जन शुचि कर तारो।
ले गंधोदक शीश धरो हम भीषण रोग व्यथा निरवारो॥
कर गुण गान नवावत मस्तक जन्म मरन के दुःख निरवारो।
जीवन मेरा धन्य हुआ प्रभु अर्चन कर सम्यक् निधि धारो॥

इति प्रदिक्षणां नमस्कारं चकृत्वा जिन चरणोदकं शिरसि धारयामि।

स्वाहा

स्वाहा = (सु + आ + ह्वे + ऽ) ह्वे धातु आवाहन करने, प्रार्थना करने, निमन्त्रित करने के अर्थ में है।

देवता विशेष को बिना किसी विचार (इच्छा) के दी जाने वाली आहुति।

आहुतिः = (आ+ हु + क्तिन्)

आह्वान करना पुण्यकृत्यों के उपलक्ष्य में किये जाने वाले विधान (यज्ञ) आदि में हवन सामग्री हवन कुण्ड में डालना।

(आ + ह्वे + क्तिन्) अथवा किसी देवता विशेष को उद्दिष्ट करके दी गई आहुति (हवन सामग्री/पूजन सामग्री)

संस्कृत हिन्दी शब्द कोश

आचार्य श्री का मन्तव्य—एक बार आ० श्री विद्यासागर जी ने अपना चिन्तन 'स्वाहा' पूजन, विधान के अवसर पर पूजन सामग्री अभिव्यक्त किया था कि स्वाहा समर्पण के समय मन्त्र के साथ उच्चारण किया जाने वाला शब्द विशेष है। अर्थात् द्रव्य चढ़ाते समय मन्त्र के साथ 'स्वाहा' शब्द का उच्चारण करना आवश्यक है। किन्तु जो बिना द्रव्य के पूजन करते हैं और मन्त्रोच्चारण करते हैं तो 'स्वाहा' न कहकर 'नमः' शब्द का प्रयोग कर सकते हैं। जैसे- ओं ह्रीं श्री देवशास्त्र गुरुभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय नमः।

पूज्य १०५ आर्यिका दृढ़मती माताजी

अथवा

स्वाहा, स्वधा अथवा और स्वस्ति के लिए मङ्गल अर्थ में रूप है देव के लिये मंत्रोंच्चारण के साथ मङ्गल कामना के लिये स्वाहा शब्द अन्य मत मैं पुरखों के लिये जो जल आदि दिया जाता है उसको अलग में स्वधा और परस्पर के व्यवहार में स्वस्ति शब्द का प्रयोग प्रचलित है।

(पं० डॉ० पन्नालाल जी साहित्याचार्य
सागर)

शान्ति धारा

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते ओं ह्रीं क्रौं अस्माकं पापं खण्ड खण्ड हन हन दह दह पच पच पाचय पाचय अर्हन् झं झ्वीं क्ष्वीं हं सः झं वं ह्वः पः हः क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षं क्षः क्ष्वीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रों ह्रौं ह्रौं ह्रं ह्रः द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते ठः ठः अस्माकं श्री रस्तु, वृद्धिरस्तु, तुष्टिरस्तु, पुष्टिरस्तु शान्ति रस्तु, कान्ति रस्तु, कल्याणमस्तु स्वाहा एवं अस्माकं कार्य सिद्धयर्थं सर्वविघ्न निवारणार्थं श्री मद् भगवदर्हत्सर्वज्ञ परमेष्ठि परम पवित्राय नमो नमः श्री शान्ति भट्टारक पाद पद्म प्रसादात अस्माकं सद्धर्म श्री वलायुरा रोग्यै श्वर्याभिवृद्धिरस्तु। स्वशिष्य पर शिष्य वर्गाः प्रसीदन्तु नः। ओं श्री वृषभादि वर्धमान पर्यन्ताश्च चतुर्विंशत्यर्हन्तों भगवन्तः सर्वज्ञाः परम मांगल्य नाम धेया इहामुत्र च सिद्धि तन्वन्तु सद् धर्म कार्येषु इहामुत्र च सिद्धि प्रयच्छन्तु नः।

ओं नमः सिद्धेभ्यः श्री वीतरागायनम : ओं नमोऽर्हते भगवते श्रीमते श्री पार्श्व तीर्थंकराय द्वादश गण परिवेष्ठिताय शुक्लध्यान पवित्राय, सर्वज्ञाय, स्वयं भुवे, सिद्धाय, बुद्धाय, परमात्मने, परम सुखाय, त्रैलोक्य मही व्याप्ताय, अनंत संसार चक्र परिमर्दनाय अनंत दर्शनाय अनंत ज्ञानाय अनंत वीर्याय अनंत सुखाय त्रैलोक्य वशंकराय सत्य ज्ञानाय, सत्य ब्रम्हणे, धरणेन्द्र फणा मण्डल मण्डिताय ऋष्यार्यिका श्रावक श्रविका चतुः संघोपसर्ग विनाशाय श्री जिन पूजन प्रसादत अस्माकं सेवकानां सर्व रोग शोक भयपीड़ा विनाशन भवतु। ओं नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणाशेष दोष कल्मषाय दिव्य तेजो मूर्तये श्री शान्तिनाथाय शान्ति कराय सर्व विघ्न प्रणाशनाय सर्व रोग अप मृत्यु विनाशनाय सर्व परकृत क्षुद्रोपद्रव विनाशनाय सर्वारिष्ट शान्ति कराय ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः मम सर्व विघ्न शान्तिं कुरू कुरू तुष्टि पुष्टिं कुरू कुरू स्वाहा। अपवादमस्मांक छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि मृत्यु छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि, क्रोधं पापं बैरंच छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि आग्नि वायु भयं छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि सर्व शत्रु विघ्नं छिन्धि 2 भिन्धि 2 सर्पोसर्गं छिन्धि 2 भिन्धि 2

सर्वराज्य छिन्धि 2 भिन्धि 2 सर्व पर मंत्र छिन्धि 2 भिन्धि 2, सर्वात्मघातं परघातं, छिन्धि 2 भिन्धि 2 सर्वशूल रोगं कुक्षि रोगं अक्षिरोगं शिरोरोगं ज्वर रोगं च छिन्धि 2 भिन्धि 2 भिन्धि 2 सर्व नरमारिं छिन्धि 2 भिन्धि 2 सर्व गजाश्व गो महिष अजमारिं छिन्धि 2 भिन्धि 2 सर्वासस्य धान्य वृक्षलता गुल्म पत्र पुष्प फल मारिं छिन्धि 2 भिन्धि 2 सर्व राष्ट्रमारिं छिन्धि 2 भिन्धि भिन्धि सर्वमोहनीयं छिन्धि भिन्धि अस्माकं अशुभ कर्म जनित दुःखानि छिन्धि 2 भिन्धि 2 परशत्रु कृत मारणोच्चाटन विद्वेषण मोहन वशी करणादि दोषन् छिन्धि 2 भिन्धि 2 सर्व दुष्ट देव दानव वीर नर नाहर सिंह योगिनी कृतदोषान छिन्धि 2 भिन्धि 2

ओं सुदर्शन महराज चक्र विक्रम तेजोबल शौर्य शान्ति कुरू कुरू सर्व भव्यानंदनं कुरु कुरु सर्व गो कुलानंदन कुरु कुरु सर्वग्राम नगर खेट खर्वट मटम्बन पत्तन द्रोणामुख संवाहनानंदनं कुरु कुरु सर्व लोकानंदन कुरु कुरु सर्व देशानंदनं कुरु कुरु सर्व यजमानानंदनं कुरु कुरु

शीधं व्याधि व्यसन वर्जितं अभय क्षेमारोग्यं स्वस्ति रस्तु शान्ति रस्तु शिवमस्तु कुलगौत्र धनं धान्यं सदास्तु चन्द्रप्रभ वासुपूज्य मल्लिनाथ वर्धमान पुष्पदंत शीतल मुनिसनव्रत नाथ पार्श्वनाथ परम देवा सदा शान्ति, कुर्वन्तु, कुर्वन्तु, कुर्वन्तु ।

अभिषेक आरती

जिनवर जगती के ईश, नवाते शीश, आत्महित काजा
अभिषेक करे जिन राजा ॥
नंदीश्वर अनुपम जिन मंदिर, जिन प्रतिमा हैं अतिशय सुन्दर।
भक्ति में झूमे इन्द्र बजावे बाजा, अभिषेक करे जिन राजा ॥1 ॥
जिन वर जगती....................
वर कलशों में जल ला करके, सुरभित सुर गंध मिला करके।
सौ धर्म इन्द्र सिर धार सिंधु सा साजा, अभिषेक करें जिन राजा ॥2 ॥
जिन वर जगती के ईश................
सब भक्त इन्द्र सहयोग करें इन्द्राणी मंगल पात्र धरें।
मुक्ता रत्नों की वृद्धि लखें अघ भाजा अभिषेक करे जिन राजा ॥3 ॥
जिन वर जगती......................
अभिषेक करें सुख मिलता है, भवि कर्म मैल सब धुलता है।
सन्मति इच्छित फल मिले आत्म सुख काजा अभिषेक करें जिन राजा ॥4 ॥
जिनवर जगती.....................

विनय पाठ

इह विधि ठाड़ो होयके, प्रथम पढ़ै जो पाठ।
धन्य जिनेश्वर देव तुम, नाशे कर्मजु आठ ॥1॥

भावार्थ—इह विधि अर्थात् पूजन के लिए खड़े होने की जो विधि आगम में वर्णित है उस विधि से विनय पूर्वक खड़े होकर जिनेन्द्र भगवान की विनय के लिये सर्वप्रथम विनय पाठ पढ़ता हूँ। हे जिनेन्द्र भगवान आप आठ कर्मों का नाश कर धन्य हो गये हो।

अनंत चतुष्टयके धनी, तुमही हो सिरताज।
मुक्ति-वधूके कंत तुम, तीन भुवन के राज॥2॥

भावार्थ—हे भगवान, आप अनंत सुख, अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, और अनंत वीर्य रूप अनंत चतुष्टय के स्वामी हो, तीनों लोकों में सर्व श्रेष्ठ हो, मोक्ष रूपी वधू के स्वामी (पति) हो एवं तीनों लोकों के राजा हो।

तिहुँ जगकी पीड़ा-हरन, भवदधि शोषणहार।
ज्ञायक हो तुम विश्वके, शिवसुख के करतार॥3॥

भावार्थ—हे जिनेन्द्र भगवान आप तीनों लोकों के जीवों के दुःखों को नष्ट करने वाले हो, संसार रूपी समुद्र को सुखा देने वाले हो विश्व को जानने वाले हो और मोक्ष सुख के करने वाले हो।

हरता अघ अंधियारके, करता धर्मप्रकाश।
थिरतापद दातार हो, धरता निजगुण रास॥4॥

भावार्थ—हे नाथ आप पापों के अंधकार को नाश करने वाले हो, धर्म रूपी प्रकाश के करने वाले हो, स्थिर पद अर्थात् मोक्ष पद (सिद्ध पद) के देने वाले हो, और आप अपने ही अनंत गुणों की राशि के स्वामी हो।

---

*पूजन के पूर्व विनय पाठ अवश्य पढ़ना चाहिए क्योंकि विनय के बिना पूजा में परिणाम निर्मल नहीं हो सकते और बिना परिणाम निर्मल हुए पूजा का समीचीनी फल प्राप्त नहीं होता, एवं जिनेन्द्र भगवान के प्रति बहुमान, आदरभाव और पूज्यपने का भाव प्रकट होता है अतः अपनी लघुता और जिनेन्द्र भगवान की गुरुता महानता प्रकट होती है। पूजक का मान का भाव कम होता है। और विनय प्रकट हो जाती है।

कित निगोद कित नारकी, कित तिर्यंच अज्ञान।
आज धन्य मानुष भयो, पायो जिनवर थान ।।15 ।।

भावार्थ—हे जिनेन्द्र भगवान मैंने कितनी पर्याय निगोद की, कितनी पर्याय नारकी की, कितनी पर्याय तिर्यंच की एवं कितनी पर्याय अज्ञानावस्था में व्यतीत की आज यह मनुष्य पर्याय धन्य हो गई जो हे जिनेन्द्र आपकी शरण प्राप्त कर ली।

तुमको पूजैं सुरपति, अहिपति नरपति देव।
धन्य भाग्य मेरी भयो, करन लग्यो तुम सेव ।।16 ।।

भावार्थ—हे जिनेन्द्र भगवान आपकी पूजा इन्द्र, नागेन्द्र, चक्रवर्ती आदि करते हैं आपकी सेवा पूजा करने से मेरा भाग्य भी धन्य हो गया है।

अशरण के तुम शरण हो, निराधार आधार।
मैं डूबत भवसिंधु में खेओ लगाओ पार ।।17 ।।

भावार्थ—हे जिनेन्द्र देव अशरण को शरण देने वाले हो। जिनके जीवन का कोई आधार नहीं है उन्हें आधार देने वाले हो। हे भगवान मैं भव रूपी समुद्र में डूब रहा हूँ। आप मेरी नाव चलाकर पार लगा दीजिए।

इन्द्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान्।
अपनो विरद निहारिकैं, कीजै आप समान ।।18 ।।

भावार्थ—हे जिनेन्द्र भगवान आपकी स्तुति विनती करते, करते गणधर, और इन्द्र आदि भी थक गये हैं तब मैं कैसे आपकी विनती कर सकता हूँ। आप अपने यश को देखकर मुझे अपने समान बना लीजिए।

तुमरी नेक सुदृष्टितैं, जग उतरत है पार।
हाहा डूबो जात हों, नेक निहार निकार ।।19 ।।

भावार्थ—हे नाथ आपकी एक अच्छी दृष्टि से ही जीव संसार समुद्र के पार हो जाता है। हाय, हाय मैं संसार समुद्र में डूब रहा हूँ एक बार सुदृष्टि से निहार कर (देखकर) मुझे निकाल लीजिए।

जो मैं कहहूँ औरसों, तो न मिटै उर भार।
⊕मेरी तो तोसों बनी, तातैं करौं पुकार ॥20॥

भावार्थ—हे भगवान यदि मैं अपने अन्तर्मन की वेदना किसी और से कहूँ तो वह वेदना मिटने वाली नहीं है, मेरी बिगड़ी तो आप ही बना सकते हो अतः मैं आप ही से अपने दुःखों को मिटाने की पुकार कर रहा हूँ।

बंदों पांचौं परमगुरु, सुरगुरु बंदत जास।
विघनहरन मंगलकरन, पूरन परम प्रकाश ॥21॥

भावार्थ—गणधर भी जिनकी वंदना करते हैं उन पांचों परमेष्ठी (पंच परमगुरु) की वंदना करता हूँ। आप पूर्ण उत्कृष्ठ आत्म ज्योति (ज्ञान ज्योति) से प्रकाशित हो, आप विघ्नों का नाश करने वाले हो, और मंगल के करने वाले हो।

चौबीसों जिनपद नमों, नमों शारदा माय।
शिवमग साधक साधु नमि, रच्यो पाठ सुखदाय ॥22॥

चौबीसों तीर्थंकरों को नमन करता हूँ, जिनवाणी माता को नमन करता हूँ और मोक्ष मार्ग की साधना करने वाले सर्व साधु को नमन कर सुख को देने वाले इस पाठ की रचना करता हूँ।

मंगल मूर्ति परम पद, पंच धरो नित ध्यान।
हरो अमंगल विश्व का, मंगलमय भगवान ॥23॥

भावार्थ—परम पद को धारण करने वाले पंच परमेष्ठी मंगल स्वरूप है (मंगल की मूर्ती है) मैं इनका सदा ध्यान करता हूँ। हे मंगलमय भगवान आप संसार के सभी अमंगलों का नाश कर दीजिए।

मंगल जिनवर पदनमों, मंगल अर्हंत देव।
मंगलकारी सिद्ध पद, सो वन्दों स्वयमेव ॥24॥

भावार्थ—हे जिनेन्द्र भगवान आपके मंगलकारी चरणों को नमन करता हूँ। अर्हन्त भगवान मंगलकारी हैं। सिद्ध भगवान (सिद्धपद) मंगलकारी हैं अतः मैं इनकी अपने मंगल के लिए वन्दना करता हूँ।

⊕ मेरी तो मोपे बने। ऐसा पाठ भी मिलता है। इस का भावार्थ है कि हे भगवान आपकी विनती अपने दुःखों का कथन मुझसे ही बनेगा अतः मैं दुःखों से छूटने के लिए पुकार कर रहा हूँ।

मंगल आचार्य मुनि, मंगल गुरु उवझाय।
सर्व साधु मंगल करो, बन्दों मन वच काय ॥25॥

भावार्थ—दिगम्बर आचार्य मंगल स्वरूप हैं, उपाध्याय गुरु मंगल स्वरूप है एवं सभी साधु मंगल के करने वाले हैं मैं इनकी मन वचन काय से वन्दना करता हूँ।

मंगल सरस्वती मात का, मंगल जिनवर धर्म।
मंगल मय मंगल करो, हरो असाता कर्म ॥26॥

जिनवाणी माता मंगल स्वरूप हैं जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा गया धर्म मंगलकारी है हे मंगलमय जिनेन्द्र भगवान मेरे असाता कर्म का क्षय करके मुझे मंगलमय कीजिए।

या विधि मंगल से सदा, जग में मंगल होत।
मंगल नाथूराम यह, भव सागर दृढ़ पोत ॥27॥

इस प्रकार मंगल करने से संसार में मंगल होता है। श्री नाथूराम जी कवि कहते हैं कि यह मंगल पाठ (विनयपाठ) भवरूपी समुद्र को पार करने के लिए मजबूत नाव के समान है।

पढ़ै ग्रन्थ, सामायिक विधिकर, पाप समूहन को जु हरे।
छहों काय के जीव विचारे, तिन पर करुणा भाव धरे॥
उज्ज्वल चीर पहिर आभूषण, भाव-भक्ति सों नाहिं टरे।
मन वच काय लाय चरनन चित, पूजा श्री जिनराज करे॥

पूजा प्रारम्भ

पूजन पीठिका

ओं जय जय जय। नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥

ओं ह्रीं अनादि-मूल-मंत्रेभ्यो नमः। (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

हे परमेष्ठि भगवान आप जयवन्त होओ, जयवन्त होओ, जयवन्त होओ आपके लिए, हमारा नमस्कार हो नमस्कार हो, नमस्कार हो।*

मैं अरिहंतों को नमस्कार करता हूँ, सिद्धों को नमस्कार करता हूँ, आचार्य परमेष्ठी को नमस्कार करता हूँ, उपाध्याय परमेष्ठी को नमस्कार करता हूँ और लोक में सभी साधुओं को नमस्कार करता हूँ।*

ओं ह्रीं मैं इस अनादि निधन मूल मंत्र को नमस्कार करता हूँ।

चत्तारि मंगलं–अरिहंता मंगलं

सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा-अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा

---

*जयवन्त को तीन बार उच्चारण करने से जिनेन्द्र भगवान की सर्वोत्तमता तथा उनके लिए अपना उच्च आदर भाव प्रकट होता है। और नमस्कार को तीन वार करने से अन्तरंग विनय के साथ-साथ मन वचन काय की बहिरंग विनय भी प्रकट होती है और यह भी प्रकट होता है कि हमारे बन्दनीय पूज्यनीय आप ही हैं अन्य कोई नहीं है।

***अरहंत**-ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मों को नष्ट करके वीतराग, सर्वज्ञ, तथा हितोपदेशक पद पाने वाले परमेष्ठी है।

सिद्ध- चार घातिया एवं चार अघातिया आठों कर्मों को नष्ट करने वाले एवं सिद्धालय में विराजमान सिद्ध परमेष्ठी है।

आचार्य-मुनियो के संघ की ठीक व्यवस्था रखने वाले मुनियों को आचार संबंधी सर्व दोषों का प्रायश्चित देने वाले आचार्य है।

उपाध्याय- मुनियों को पढ़ाने वाले एवं धर्मोपदेश देने वाले उपाध्यायय परमेष्ठी है।

साधु-उपदेशादि कार्यों को न करते हुए केवल मोक्ष मार्ग को साधने वाले साधु परमेष्ठी है।

साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णतो धम्मो लोगुत्तमो ॥
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि,
केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ॥

ओं नमोऽर्हते स्वाहा, पुष्पांजलिं क्षिपामि

लोक में चार पदार्थ मंगल स्वरूप हैं- अरिहंत भगवान मंगल है सिद्ध भगवान मंगल है साधु परमेष्ठी (आचार्य उपाध्याय साधु) मंगल कारक है । और केवली प्रणीत धर्म मंगल स्वरूप है ।

लोक में चार पदार्थ सर्वोत्तम हैं अरिहंत परमेष्ठी सर्वोत्तम हैं, सिद्ध परमेष्ठी सर्वोत्तम हैं, साधु परमेष्ठी सर्वोत्तम हैं, केवली प्रणीतधर्म सर्वोत्तम है ।

सांसारिक दुःखों से बचने के लिए लोक में चार की शरण जाता हूँ । अरिहंत भगवान की शरण जाता हूँ । सिद्ध भगवान की शरण लेता हूँ । साधु परमेष्ठी की शरण जाता हूँ तथा केवली प्रणीत धर्म की शरण जाता हूँ ।

(अरिहंतादि परमेष्ठी भगवान हमारे लिए कल्याणकारी होवे) पुष्पांजलि क्षेपण करना ।

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा ।
ध्यायेत्पंच-नमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१ ॥

पंच नमस्कार मंत्र का ध्यान करने से पुरुष सब पापों से छूट जाता है चाहे ध्यान करते समय वह पवित्र हो अपवित्र हो या अच्छी जगह हो या बुरी जगह हो ।

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यंतरे शुचिः ॥२ ॥

शरीर चाहे स्नानादिक से पवित्र हो अथवा किसी अशुचि पदार्थ के स्पर्श से अपवित्र हो तथा सोती जागती उठती बैठती चलती आदि कोई भी दशा हो इन

सभी दशाओं में जो पुरुष परमात्मा का (पंच परमेष्ठी) स्मरण करता है वह उस समय बाह्य* और अभ्यतन्तर से (शरीर और मन) पवित्र है।

अपराजित-मंत्रोऽयं सर्व-विघ्न-विनाशनः।
मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः ॥३॥

यह नमस्कार मंत्र किसी मंत्र से पराजित नहीं हो सकता इसलिए यह मंत्र अपराजित मंत्र है यह मंत्र सभी विघ्नों को नष्ट करने वाला है एवं सर्व मंगलों में यह प्रधान मंगल है।

एसो पंच-णमोयारो सव्व-पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं ॥४॥

यह पंच नमस्कार मंत्र सब पापों का नाश करने वाला है यह सब कार्यों के लिए मंगल रूप है और सब मंगलों में पहला मंगल है।

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहं ॥५॥

अर्हं ये अक्षर परब्रह्म परमेष्ठी के वाचक हैं और सिद्ध समूह के सुन्दर बीजाक्षर है मैं इनको मन वचन काय से नमस्कार करता हूँ।

कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं मोक्ष-लक्ष्मी-निकेतनं।
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहं ॥६॥

आठ कर्मों से रहित तथा मोक्ष रूपी लक्ष्मी के मंदिर और सम्यक्, दर्शन, ज्ञान, अगुरुलघु, अवगाहना सूक्ष्मत्व अव्याबाध वीर्यत्वइन आठ गुणों से सहित सिद्ध भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ।

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनी-भूत-पन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥७॥

अरिहंता दि पंच परमेष्ठी भगवान का स्तवन करने से विघ्नों के समूह नष्ट हो जाते हैं एवं शाकनि, डाकनी, भूत, पिशाच, सर्प सिंह अग्नि आदि का भय नहीं

* शरीर तो सर्वथा अपवित्र ही है उसकी पवित्रता किसी प्रकार नहीं हो सकती आत्मा की पवित्रता शुभ परिणामो से ही होती है पंच परमेष्ठी को स्मरण करते समय परिणामों में विशुद्धता अवश्य ही होती है।

रहता और बड़े हलाहल विष भी अपना असर त्याग देते हैं।

(पुष्पांजलि समर्पित करें)

यदि अवकाश हो तो यहाँ पर सहस्त्रनाम पढ़कर दश अर्घ्य देना चाहिए अन्यथा निम्नलिखित श्लोक पढ़कर अर्घ्य चढ़ाना चाहिए।

पंचकल्याणक अर्घ्य

उदक-चंदन-तंदुल- पुष्पकैश्चरु - सुदीप - सुधूप - फलार्घकैः।
धवल-मंगल-गान-रवाकुले जिनगृहे कल्याणमहं यजे ॥१॥

ओं ह्रीं श्रीभगवतो गर्भजन्मतपज्ञाननिर्वाणपंचकल्याणाकेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

मैं निर्मल अथवा प्रशस्त मंगल गान (मंगलीक जिनेन्द्र स्तवन पूजनादि) के शब्दों से गुंजाय मान जिन मंदिर में जिनेन्द्र देव की जल चन्दन अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप फल तथा अर्घ्य से पूजन करता हूँ।

पंचमरमेष्ठी अर्घ्य,

उदक..............................

ओं ह्रीं श्री अर्हंत् सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधुभ्यो अर्घ्यं नि० स्वाहा।

जिन सहस्त्रनाम अर्घ्य,

उदक......................

ओं ह्रीं भगवज्जि सहस्त्रनामेभ्यो अर्घ्यं नि० स्वाहा।

जिनवाणी अर्घ्य

उदक ....

ओं ह्रीं द्वादशांग श्रुत ज्ञानेभ्यो अर्घ्यं नि० स्वाहा।

(स्वस्ति मंगल)

श्रीमज्जिनेंद्रमभिवंद्य जगत्त्रयेशं,
स्याद्वाद - नायक - मनंत - चतुष्टयार्हम्।
श्रीमूलसंघ-सुदृशां सुकृतैकहेतुर,
जैनेन्द्र-यज्ञ-विधिरेष मयाऽभ्यधायि ॥१॥

मैं तीन लोक के स्वामी स्याद्वाद विद्या के नायक पदार्थों के अनेकान्त (अनेक धर्मों) को प्रकट करने में अग्रसर अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्यादि, अनंत चतुष्टायादि अन्तरंग लक्ष्मी एवं अष्ट प्रातिहार्य समवशरणादि बहिरंग लक्ष्मी से युक्त जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार करके मूलसंघ (श्री कुन्द कुन्द स्वामी की परम्परा के अनुसार) सम्यक् दृष्टि पुरुषों के लिए पुण्य बंध का प्रधान कारण ऐसी जिन पूजा की विधि को कहता हूँ।

स्वस्ति त्रिलोक-गुरवे जिन-पुंगवाय,
स्वस्ति स्वभाव-महिमोदय-सुस्थिताय।
स्वस्ति प्रकाश-सहजोर्ज्जित-दृङ्मयाय,
स्वस्ति प्रसन्न-ललिताद्भुत-वैभवाय ॥२॥

तीन लोक के गुरु जिन प्रधान (कषायों को जीतने वाले मुनीश्वरों के स्वामी) के लिए कल्याण होवे।* स्वाभाविक महिमा अर्थात् अनंत चतुष्टयादि में भले प्रकार ठहरे हुए भगवान के लिए मंगल होवे। स्वाभाविक प्रकाश अर्थात् केवल ज्ञान रूपी प्रकाश से बढ़े हुए केवल दर्शन से सहित जिनेन्द्र भगवान के लिए क्षेम होवे। उज्ज्वल सुन्दर एवं अद्भुत समवशरणादि वैभव के धारक जिनेन्द्र भगवान के लिए मंगलकारी होवें।

स्वस्त्युच्छलद्विमल - बोध - सुधा - प्लवाय,
स्वस्ति स्वभाव-परभाव-विभासकाय।
स्वस्ति त्रिलोक-विततैक-चिदुद्गमाय,
स्वस्ति त्रिकाल-सकलायत-विस्तृताय ॥३॥

उछलते हुए निर्मल केवल ज्ञान रूपी अमृत के प्रवाह वाले जिनेन्द्र भगवान के लिए कल्याण होवे। स्वभाव और परभाव के प्रकाशक जिनेन्द्र भगवान के लिए मंगल होवे। तीनों लोकों को जानने वाले केवल ज्ञान के स्वामी जिनेन्द्र भगवान के लिए क्षेम होवे। त्रिकालवर्ती सर्व पदार्थों में ज्ञान के द्वारा फैले हुए जिनेन्द्र भगवान के लिए कल्याणकारी होवें।

*नमस्कार तीन प्रकार का होता है। एक स्तवनात्मक जैसे विनती स्तुति आदि रीति से नमस्कार दूसरा आशीर्वादात्मक जैसे तुम्हारी जय हो आपकी बृद्धि हो आदि। तीसरा स्वरूप कथनात्मक जैसे तत्वार्थ सूत्र परीक्षामुख का मंगलाचरण यहाँ आशीर्वादात्मक नमस्कार है।

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं,
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगंतुकामः।
आलंबनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्,
भूतार्थ-यज्ञ-पुरुषस्य करोमि यज्ञं ॥४॥

अपने भावों की परम शुद्धता को पाने का अभिलाषी मैं देशकाल के अनुरूप जल चन्दनादि की शुद्धता को पाकर जिन स्तवन, जिन बिम्ब दर्शन, ध्यान आदि अवलम्बनों का आश्रय लेकर सच्चे पूज्य पुरुष अरहंतादिक की पूजा करता हूँ।

अर्हत्पुराण - पुरुषोत्तम - पावनानि,
वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव।
अस्मिन् ज्वलद्विमल-केवल-बोधवह्नौ,
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥५॥

ओं विधियज्ञप्रतिज्ञानाय जिनप्रतिमाग्रे पुष्पांजलि क्षिपामि।

हे अर्हन्! हे पुराण पुरुष। हे उत्तम पुरुष यह असहाय मैं इन पवित्र समस्त जलादिक द्रव्यों का आलम्बन लेकर अपने समस्त पुण्य को इस दैदीप्यमान निर्मल केवल ज्ञान रूपी अग्नि में एकाग्र चित्त होकर हवन करता हूँ।

ओं ह्रीं अरहंत भगवान की प्रतिमा के आगे विधि पूर्वक पूजन की प्रतिज्ञा के निमित्त पुष्पांजलि क्षेपण करता हूँ।

श्री वृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजितः।
श्री संभवः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअभिनंदनः।
श्रीसुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः।
श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीचन्द्रप्रभः।
श्रीपुष्पदंतः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतलः।
श्रीश्रेयान् स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवासुपूज्यः।
श्रीविमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअनंतः।
श्रीधर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशान्तिः।

श्रीकुंथुः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरनाथः।
श्रीमल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रतः।
श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथः।
श्रीपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवर्द्धमानः।

इति जिनेन्द्र स्वस्तिमङ्गलविधानं।
(पुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्री ऋषभ जिनेन्द्र हम सबके लिए मंगलकारी हों। श्री अजित जिनेन्द्र हम सबके लिए मंगल स्वरूप हों। श्री सम्भव जिन हम सबके लिए मंगलकारी हों श्री अभिनंदन जिनेन्द्र हम सबके लिए मंगल स्वरूप हों। श्री सुमति जिनेन्द्र हम सबको मंगलकारी हो। श्री पद्म प्रभ जिनेन्द्र हम सबके लिए मंगलकारी हों। श्री सुपार्श्व जिनेन्द्र हम सबके लिए मंगल स्वरूप हो। श्री चन्द्र प्रभ जिनेन्द्र हम सबके लिए मंगलकारी हों। श्री पुष्प दंत जिनेन्द्र हम सबके लिए मंगल स्वरूप हो। श्री शीतलनाथ जिनेन्द्र हम सबके लिए मंगल स्वरूप हों। श्री श्रेयान्सनाथ जिनेन्द्र हम सबके लिए मंगल स्वरूप हों। श्री वासुपूज्य जिन हम सबके लिए मंगलकारी हों। श्रीविमलनाथ जिनेन्द्र हम सबके लिए मंगलकारी हो। श्री अनंत नाथ जिनेन्द्र हम सबके लिए मंगल स्वरूप हों। श्री धर्मनाथ जिनेन्द्र हम सबके लिए मंगलकारी हों। श्री शान्ति नाथ जिनेन्द्र हम सबके लिए मंगलकारी हों। श्री कुन्थु नाथ जिनेन्द्र हम सबके लिए मंगलकारी हों। श्री अरनाथ जिनेन्द्र हम सबके लिए मंगल स्वरूप हों। श्रीमल्लिनाथ जिनेन्द्र हम सबके लिए मंगलकारी हों। श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्र हमारे लिए मंगल कारी हों। श्री नमिनाथ जिनेन्द्र हम सबके लिए मंगल स्वरूप हों। श्री नेमीनाथ जिनेन्द्र हम सबके लिए

* ऋद्धि का अर्थ शक्ति है ये शक्तियां आत्मा में अनंत है उनमें से मुनिश्वरों में तप के बल से कर्मों का क्षयोपशम होने के कारण ये ऋद्धियाँ प्रकट होती हैं।

१. **केवल ज्ञान बुद्धि ऋद्धि-** सकल द्रव्यों की गुण पर्याय एक साथ देखने जानने वाले केवल ज्ञान को केवल ज्ञान बुद्धि ऋद्धि कहते हैं।

२. **मनः पर्यय ज्ञान बुद्धि ऋद्धि-** ढाई द्वीप के सब जीवों के मन की बात जानने वाले मनः पर्यय ज्ञान को मनः पर्यय ज्ञान बुद्धि-ऋद्धि कहते हैं।

३. **अवधि ज्ञान बुद्धि ऋद्धि-** द्रव्य, क्षेत्र, काल, की मर्यादा लिए रूपी पदार्थ को जानने वाले अवधि ज्ञान को अवधि ज्ञान बुद्धि ऋद्धि कहते हैं।

मंगलकारी हों। श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र हम सबके लिए मंगल स्वरूप हों। श्री वर्धमान जिनेन्द्र हम सबके लिए मंगलकारी हों।

(मैं पुष्पांजलि क्षेपण करता हूँ।)

नित्याप्रकंपाद्भुत-केवलौघाः स्फुरन्मनः पर्यय-शुद्धबोधाः।
दिव्यावधिज्ञान-बलप्रबोधाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयोनः।१।

(यहां से प्रत्येक श्लोक के अंत में पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिए।

अविनाशी अचल अद्भुत केवल[१] ज्ञान के धारक मुनिराज, देदीप्यमान मनः पर्याय[२] ज्ञान रूप शुद्ध ज्ञान वाले मुनिराज और दिव्य अवधि[३] ज्ञान के बल से प्रबुद्ध महा ऋद्धि* धारी ऋषि हमारा कल्याण करे।

कोष्ठस्थ-धान्योपममेकबीजं संभिन्न-संश्रोतृ-पदानुसारि।
चतुर्विधं बुद्धिबलं दधानाः स्वस्ति-क्रियासुः परमर्षयो नः।२।

---

४. **कोष्ठस्थधान्योपम बुद्धि ऋद्धि-** जिस प्रकार भंडार में हीरा, पन्ना पुखराज चाँदी सोना धान्यआदि पदार्थ जहाँ जैसे रख दिए जावे बहुत समय बीत जाने पर यदि वे निकाले जावे तो जैसे के तैसे न कम न अधिक भिन्न भिन्न उसी स्थान पर रखे मिलते हैं तैसे ही सिद्धान्त न्याय व्याकरणादि के सूत्र गद्य पद्य ग्रन्थ जिस प्रकार पढ़े थे सुने थे पढ़ाये अथवा मनन किए थे बहुत समय बीत जाने पर भी यदि पूछा जाए तो न एक भी अक्षर घट कर, न बढ़कर, न पलट कर, भिन्न-भिन्न ग्रन्थों को सुना दे ऐसी शक्ति का नाम कोष्ठस्थ धान्योपम बुद्धि ऋद्धि है।

५. **एक बीज ऋद्धि-**ग्रन्थों के एक बीज अर्थात् मूल पद के द्वारा उसके अनेक प्रकार के अर्थों को जान लेना एक बीज ऋद्धि है।

६. **संभिन्न संश्रोतृत्व ऋद्धि-**बारह योजन लम्बे नौ योजन चौड़े क्षेत्र में ठहरने वाली चक्रवर्ती की सेना के हाथी घोड़ा ऊँट बैल पक्षी मनुष्य आदि सभी के अक्षर अनक्षर रूप नाना प्रकार के शब्दों को एक साथ अलग अलग सुनने की शक्ति को संभिन्न संश्रोतृत्व ऋद्धि कहते हैं।

७. **पादानुसारणी**-ग्रन्थ के आदि के मध्य के या अन्त के एक पद को सुनकर सम्पूर्ण ग्रन्थ को कह देने की शक्ति को पादानुसारणी ऋद्धि कहते हैं।

८. **दूरस्पर्शन ऋद्धि-**मनुष्य यदि दूर से स्पर्शन करना चाहे तो अधिक से अधिक नौ योजन दूरी के पदार्थों का स्पर्शन जान सकता है। किन्तु मुनिराज दिव्य मतिज्ञानादि के बल से संख्यात योजन दूरवर्ती पदार्थ का स्पर्शन कर लेते हैं, उसे दूर स्पर्शन ऋद्धि कहते हैं।

कोष्ठस्थ[४] धान्योपम, एक बीज[५], सभिन्न[६] संश्रोतृत्व और पदानुसारित्व इन चार प्रकार की बुद्धि ऋद्धि को धारण करने वाले ऋषीराज हम सबका मंगल करे।

संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरादास्वादन-घ्राण-विलोकनानि।
दिव्यान् मतिज्ञान-बलाद्वहंतः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।३।

---

९. **दूर श्रवण ऋद्धि**-मनुष्य यदि दूरवर्ती शब्द को सुनना चाहे तो बारह योजन तक के दूरवर्ती शब्द सुन सकता है अधिक नहीं, किन्तु मुनिराज दिव्य मतिज्ञादि के बल से संख्यात योजन दूरवर्ती शब्द सुन लेते हैं उसे दूर श्रवण ऋद्धि कहते हैं।

१०. **दूर आस्वादन ऋद्धि**- मनुष्य अधिक से अधिक नौ योजन दूर स्थित पदार्थों का रस जान सकता है किन्तु मुनिराज दिव्य मतिज्ञानादि के बल से संख्यात योजन दूर स्थित पदार्थ का रस जान लेते हैं उसे दूर आस्वादन ऋद्धि कहते हैं।

११. **दूर घ्राण ऋद्धि**-मनुष्य अधिक से अधिक नौ योजन दूर स्थित पदार्थ की गंध ले सकता है किन्तु मुनिराज दिव्य मतिज्ञानादि के बल से संख्यात योजन दूर स्थित पदार्थों की गंध जान लेते हैं उसे दूर घ्राण ऋद्धि कहते हैं।

१२. **दूर अवलोक ऋद्धि**- मनुष्य अधिकतम सैतालीस हजार दो सौ त्रेसठ योजन दूर स्थित पदार्थ को देख सकता है, किन्तु मुनिराज दिव्य मतिज्ञानादि के बल से हजारों योजन दूर स्थित पदार्थों को देख लेते हैं उसे दूर अवलोकन ऋद्धि कहते हैं।

१३. **प्रज्ञा श्रमणत्व ऋद्धि**-जिस ऋद्धि के बल से पदार्थों के अत्यन्त सूक्ष्म तत्वों को जिनको की केवली एवं श्रुत केवली ही बतला सकते हैं, द्वादशांग चौदहपूर्व पढ़े बिना ही बतला देते हैं उस ऋद्धि को प्रज्ञा श्रमणत्व ऋद्धि कहते हैं।

१४. **प्रत्येक बुद्ध ऋद्धि**-अन्य किसी के उपदेश के बिना ही जिस शक्ति के द्वारा ज्ञान संयम व्रत का विधान निरुपण किया जाता है उसे प्रत्येक बुद्ध-ऋद्धि कहते हैं।

१५. **दशपूर्वित्व ऋद्धि**-दसवाँ पूर्व पढ़ने से अनेक महा विद्याओं के प्रकट होने पर भी चारित्र से चलायमान नहीं होना दशपूर्वित्व ऋद्धि है।

१६. **चतुर्दशपूर्वित्व ऋद्धि**- सम्पूर्ण श्रुत ज्ञान प्राप्त हो जाना चतुर्दशपूर्वित्व ऋद्धि है।

१७. **प्रवादित्व ऋद्धि**-जिस शक्ति के द्वारा क्षुद्रवादियों की तो क्या यदि इन्द्र भी शास्त्रार्थ करने आए तो उसे भी निरुत्तर कर दे उसे प्रवादित्व ऋद्धि कहते हैं।

१८. **अष्टांग महानिमित्त ऋद्धि**-अन्तरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, व्यञ्जन लक्षण छिन्न स्वप्न इन आठ महा निमित्तों को जानने को अष्टांग महा निमित्त ऋद्धि कहते हैं।

दिव्य मति ज्ञान के बल से दूर से ही स्पर्शन[८], श्रवण[९], आस्वादन[१०], घ्राण[११] और अवलोकन [१२] रूप पाँच इन्द्रियों के विषयों धारण करने वाले ऋषीराज हम लोगों का कल्याण करें।

प्रज्ञा-प्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः प्रत्येकबुद्धा दशसर्वपूर्वैः।
प्रवादिनोऽष्टांग-निमित्त-विज्ञाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।४।

प्रज्ञा[१३] श्रमण, प्रत्येकबुद्ध[१४], अभिन्न दशपूर्वी[१५], चतुर्दशपूर्वी[१६], प्रवादित्व [१७], अष्टांग महानिमित्त[१८] के ज्ञाता मुनिवर हमारा कल्याण करें।

ये अठारह बुद्धि ऋद्धियाँ हैं।

जंघानल-श्रेणी-फलांबु-तंतु - प्रसून - बीजांकुर - चारणाह्वाः।
नभोऽङ्गण-स्वैर-विहारिणश्च-स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।५।

---

१९. **जंघा चारण ऋद्धि-** पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर आकाश में जंघा को बिना उठाये सैकड़ो योजन गमन करने की शक्ति को जंघा चारण ऋद्धि कहते हैं।

२०. **अग्नि शिखाचारण ऋद्धि-** अग्नि शिखा पर गमन करने से अग्नि शिखाओं में स्थित जीवों की विराधना नहीं होती उसे अग्नि शिखा चारण ऋद्धि कहते हैं।

२१. **श्रेणी चारण ऋद्धि-** आकाश श्रेणी में गमन करते हुए सब जाति के जीव की रक्षा करने को श्रेणी चारण ऋद्धि कहते हैं।

२२. **फल चारण ऋद्धि-** आकाश में गमन करते हुए फलों पर भी चले तो भी किसी प्रकार जीवों की हानि नहीं होती उसे फल चारण ऋद्धि कहते हैं।

२३. **जल चारण ऋद्धि-**जल पर गमन करने से भी जीवों की हिंसा न हो उसे जल चारण ऋद्धि कहते हैं।

२४. **तन्तु चारण ऋद्धि-**तन्तु अर्थात् मकड़ी के जाले के समान तन्तुओं पर भी चले तो वे टूटते नहीं उसे तन्तु चारण ऋद्धि कहते हैं।

२५. **पुष्प चारण ऋद्धि-** फूलों पर गमन करने से उनमें स्थित जीवों की विराधना नहीं होती उसे पुष्प चारण ऋद्धि कहते है।

२६. **बीजांकुर चारण ऋद्धि-** बीजरूप पदार्थों एवं अंकुरों पर गमन करने से उन्हें किसी प्रकार हानि नहीं होती उसे बीजांकुर चारण ऋद्धि कहते हैं।

२७. **नभ चारण ऋद्धि-**कार्योत्सर्ग की मुद्रा में पद्मासन या खड़गासन में गमन करने को नभ चारण ऋद्धि कहते हैं।

जंघा[१९], अग्नि शिखा[२०], श्रेणी[२१], फल[२२], जल[२३], तन्तु[२४], पुष्प[२५], बीज[२६], और अंकुर[२७] पर चलने वाले चारण बुद्धि के धारक तथा आकाश में स्वच्छ विहार करने वाले मुनिराज हमारा कल्याण करें।

ये ९ चारण ऋद्धियाँ हैं

अणिम्नि दक्षाः कुशला महिम्नि लघिम्नि शक्ताः कृतिनो गरिम्णि।
मनो-वपुर्वाग्बलिनश्च नित्यं, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥६ ॥

---

२८. **अणिमा ऋद्धि**-परमाणु के समान अपने शरीर को छोटा बना लेना अणिमा ऋद्धि है।

२९. **महिमा ऋद्धि**-सुमेरु पर्वत से भी बड़ा शरीर बना लेना महिमा ऋद्धि है।

३०. **लघिमा ऋद्धि**- वायु से भी हल्का शरीर बना लेना लघिमा ऋद्धि है।

३१. **गरिमा ऋद्धि**- वज्र से भी भारी शरीर बना लेना गरिमा ऋद्धि है।

३९. **मन बल ऋद्धि**- अन्तर्मुहूर्त में ही समस्त द्वादशांग के पदार्थों को विचार लेना मन बल ऋद्धि है।

४०. **वचन बल ऋद्धि**-सम्पूर्ण श्रुत का अन्तर्मूहुर्त में पाठ कर लेना फिर जिव्हा कंठ आदि में शुष्कता एवं थकावट न होना वचन बल ऋद्धि है।

४१. **कायबल ऋद्धि**- एक मास चातुर्मासिक आदि बहुत समय तक कायोत्सर्ग करने पर भी शरीर का बल कान्ति आदि थोड़ा भी कम न होना एवं तीनों लोकों को कनिष्ठ अंगुली पर उठाने की सामर्थ्य का होना काय बल ऋद्धि है।

३२. **कामरुपित्व ऋद्धि**- एक साथ अनेक आकार वाले अनेक शरीरों को बना लेना कामरुपित्व ऋद्धि है।

३३. **वशित्व ऋद्धि**-तप बल से सभी जीवों को अपने वश में कर लेना वशित्व ऋद्धि है।

३४. **ईशित्व ऋद्धि**-तीन लोक की प्रभुता होना ईशित्व ऋद्धि है।

३५. **प्राकम्य ऋद्धि**-जल में पृथ्वी की तरह और पृथ्वी में जल की तरह चलना प्राकम्य ऋद्धि है।

३६. **अन्तर्धान ऋद्धि**-तुरन्त अदृश्य होने की शक्ति को अन्तर्धान ऋद्धि कहते हैं।

३७. **आप्ति ऋद्धि**- भूमि पर बैठे हुए ही अंगुली से सुमेरू पर्वत की चोटी सूर्य और चन्द्रमा को छू लेना आप्ति ऋद्धि है।

३८. **अप्रतिघात ऋद्धि**-पर्वतों के मध्य से खुले मैदान के समान आना-जाना रुकावट न आना अप्रतिघात ऋद्धि है।

अणिमा[२८], महिमा[२९], लघिमा[३०], और गरिमा[३१] ऋद्धि में कुशल तथा मन[३९], वचन[४०], काय[४१] बल ऋद्धि के धारक मुनिराज हमारा कल्याण करें।

ये तीन बल ऋद्धि हैं।

सकामरूपित्व-वशित्वमैश्यं प्राकाम्यमन्तर्द्धिमथाप्तिमाप्ताः।
तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥७॥

कामरुपित्वः[३२], वशित्व[३३], ईशित्व[३४], प्राकम्य[३५], अन्तर्धान[३६], आप्ति[३७] तथा अप्रतिघात[३८], ऋद्धि से सम्पन्न मुनिराज हमारा कुशल करे।

ये ग्यारह विक्रिया ऋद्धि है।

दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं घोरं तपो घोरपराक्रमस्थाः।
ब्रह्मापरं घोर-गुणाश्चरन्तः-स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ।८।

---

४२. **दीप्ति ऋद्धि**- बड़े-बड़े उपवास करते हुए भी मनोबल, वचन बल का यवल का बढ़ना शरीर में सुगंधि आना, सुगंधित निश्वास निकलना, तथा शरीर में म्लानता न होकर महा कान्ति का होना दीप्ति ऋद्धि है।

४३. **तप्त ऋद्धि**- भोजन से मलमूत्र रक्त मांस आदि का न बनना गरम कढ़ाही में पानी की तरह सूख जाना तप्त ऋद्धि है।

४४. **महा उग्र ऋद्धि**-एक दो चार छह पक्ष मास उपवास आदि में से किसी एक को धारण करके मरण पर्यन्त न छोड़ना महाउग्र ऋद्धि है।

४५. **घोर तप ऋद्धि**- भयानक रोगों से पीड़ित होने पर भी उपवास व काय क्लेश आदि से नहीं हटने वाले मुनिराज घोर तप ऋद्धि के धारी है।

४६. **घोर पराक्रम ऋद्धि**-दुष्ट राक्षस पिशाच के निवास स्थान भयानक जानवरों से व्याप्त पर्वत, गुफा श्मशान सूनें गाँव में निवास करने वाले समुद्र के जल को सुखा देना एवं तीनों लोकों को उठाके फैंक देने की सामर्थ्य वाले मुनिराज को घोर पराक्रम ऋद्धि होती है।

४७. **महाघोर ऋद्धि**- सिंह निक्रीडित आदि महा उपवासों को करते रहना महाघोर ऋद्धि है।

४८. **अघोर ब्रह्मचर्य ऋद्धि**-चिरकाल तक तपश्चरण करने के कारण स्वप्न में भी ब्रह्मचर्य से न डिगना आदि विकार परिस्थिति मिलने पर भी ब्रह्मचर्य में दृढ़ रहना अघोर ब्रह्मचर्य ऋद्धि है।

दीप्ति[४२], तप्त[४३], महाउग्र[४४], घोर[४५], और घोर[४६] पराक्रम, तप के तथा अघोर[४७] ब्रह्मचर्य[४८] ऋद्धि के धारी मुनिराज हमारा कल्याण करें।

ये सात तप ऋद्धियाँ हैं।

आमर्ष-सर्वोषधयस्तथाशीर्विषाविषा दृष्टिविषाविषाश्च। सखिल्ल-विड्जल्ल-मलौषधीशाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।९।

आमर्षोषधि[४९], सर्वोषधि[५०], आशीर्विषाविष,[५१] दृष्टि[५२] विषा[५७] विष[५८] क्ष्वेलौषधि[५३] विडौषधि[५४] जल्लौषधि[५५] और मलौषधि[५६] ऋद्धि के धारी परम ऋषि हमारा कल्याण करें।

---

४९ **आमर्शौषधि**-जिनके हाथ पैर आदि को छूने से एवं समीप आने मात्र से ही सब रोग दूर हो जाए वह आमर्शोषधि ऋद्धि है।

५०. **सर्वौषधि ऋद्धि**-जिनके समस्त शरीर के स्पर्श करने वाली वायु ही समस्त रोगो को दूर कर देती है उसे सर्वोषधि ऋद्धि कहते हैं।

५१. **आशीअविष ऋद्धि**- महाविष व्याप्त पुरुष भी जिनके आशीर्वाद रूप शब्द सुनने से निरोग या निर्विष हो जाता है उसे आशीअविष ऋद्धि कहते हैं।

५२. **दृष्टि (दृष्टिनिर्विष) विष ऋद्धि**-महाविष व्याप्त पुरुष भी जिनकी दृष्टि से निर्विष हो जाए उसे दृष्टि विष ऋद्धि कहते हैं।

५३. **क्ष्वेलौषधि ऋद्धि**-जिनके थूक, कफ आदि से लगी हुई हवा के स्पर्श से ही रोग दूर हो जावे उसे क्ष्वेलौषधि ऋद्धि कहते हैं।

५४. **विडौषधि ऋद्धि**-जिनके मल (विष्ठा) से स्पर्श की हुई वायु ही रोग नाशक हो उसे विडौषधि ऋद्धि कहते हैं।

५५. **जल्लौषधि ऋद्धि**-जिनके शरीर के पसीना में लगी हुई धूल महारोग नाशक होती है उसे जल्लौषधि ऋद्धि कहते हैं।

५६. **मलौषधि ऋद्धि**-जिनके दांत, कान नाक नेत्र आदि का मैल सर्व रोग नाशक होता है उसे मलौषधि ऋद्धि कहते हैं।

५७. **आशीविष रस ऋद्धि**-जिन मुनि के कर्म उदय से क्रोधपूर्वक मर जाओ शब्द निकल जाय तो वह व्यक्ति तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो जाता है उसे आशीविष रस ऋद्धि कहते हैं।

५८. **दृष्टि विष रस ऋद्धि**-क्रोध पूर्ण दृष्टि जिस व्यक्ति पर पड़ जाये वह तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो जाता है उसे दृष्टि विष रस ऋद्धि कहते हैं।

क्षीरं स्रवंतोऽत्र घृतं स्रवंतो मधु स्रवंतोऽप्यमृतं स्रवंतः। अक्षीणसंवास-महानसाश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥१० ॥

इति परमर्षिस्वस्तिमंगल-विधानं।

क्षीरस्रावी[५९], घृतस्रावी[६०], मधुस्रावी[६१] अमृतस्रावी[६२] तथा अक्षीण[६३] संवास और अक्षीण[६४] महानस ऋद्धि धारी मुनिवर हमारे लिए मंगल करें।

प्रत्येक श्लोक की समाप्ति पर पुष्पांजलि क्षेपण करें।

---

५९. **क्षीरस्रावी ऋद्धि**-नीरस भोजन भी जिनके हाथों में आते ही दूध के समान गुणकारी हो जावे अथवा जिनके वचन सुनने से क्षीण पुरुष भी दूध के समान बल को प्राप्त करे उसे क्षीरस्रावी ऋद्धि कहते हैं।

६०. **घृत स्रावी ऋद्धि**– नीरस भोजन भी जिनके हाथों में आते ही घी के समान बलवर्धक हो जाए एवं जिनके वचन घृत के समान तृप्ति करे। उसे घृतस्रावि ऋद्धि कहते हैं।

६१. **मधुस्रावि**-नीरस भोजन भी जिनके हाथों में आते ही मधुर हो जाए अथवा जिनके वचन सुनकर दुःखी प्राणी भी साता का अनुभव करे उसे मधु स्रारिव ऋद्धि कहते हैं।

६२. **अमृत स्रावि ऋद्धि**-नीरस भोजन भी जिनके हाथों में आते ही अमृत के समान पुष्टि कारक हो जाए अथवा जिनके वचन अमृत के समान आरोग्य कारी हो उसे अमृत स्रावि ऋद्धि कहते हैं।

ये छः रस ऋद्धियाँ हैं।

६३. **अक्षीण संवास ऋद्धि**-जिनके निवास स्थान में इन्द्र देव चक्रवर्ती की सेना भी बिना किसी परस्पर विरोध के ठहर सके उसे अक्षीण संवास ऋद्धि कहते हैं।

६४. **अक्षीण महानस ऋद्धि**-ऋद्धिधारी मुनिराज जिस पात्र आहार करे उस दिन उस पात्र में बचा हुआ आहार चक्रवर्ती की सेना भी कर जाये तब भी आहार कम नहीं पड़े उसे अक्षीण महानस ऋद्धि कहते हैं।

ये दो अक्षीण ऋद्धियाँ हैं।

अथ देव-शास्त्र-गुरु पूजा

अडिल्ल छन्द

प्रथम देव अरहंत सुश्रुत सिद्धांत जू,
गुरु निर्ग्रन्थ महन्त मुकतिपुर पन्थ जू,
तीन रतन जग मांहि सो ये भवि ध्याइये,
तिनकी भक्तिप्रसाद परमपद पाइये ॥

दोहा

पूजों पद अरहंत के पूजों गुरुपद सार,
पूजों वाणी सरस्वती, नितप्रति अष्टप्रकार ।१ ।

ओं ह्रीं देव-शास्त्र-गुरु-समूह ! अत्र अवतर अवतर, संवौषट् आह्वाननं ।
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ, ठः ठः स्थापनं ।
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

भावार्थ–सर्वप्रथम पूज्य, जिनके चार छातिया कर्म नष्ट हो गये हैं ऐसे अर्हंत् भगवान वीतराग सर्वज्ञ और हितोपदेशी भगवान द्वारा प्रणीत सम्पूर्ण जिनागम एवं निर्ग्रन्थ दिगम्बर गुरु पूज्य है और मोक्ष रूपी नगर के मार्ग को प्रकाशित करने वाले हैं। संसार में देवशास्त्र गुरु ही श्रेष्ठ रत्न है। हे भव्य जीव इनकी पूजा भक्ति करो इनका ध्यान करने से उत्कृष्ट पद अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है।

मैं अरहंत देव निर्ग्रन्थ गुरुओं के चरण एवं जिनवर प्रणीत जिनवाणी की अष्ट द्रव्य से प्रतिदिन पूजन करता हूँ।

ओं ह्रीं देव शास्त्र, गुरु यहाँ आइये आइये
ओं ह्रीं देव शास्त्र गुरु यहाँ ठहरिये ठहरिये
ओं ह्रीं देव शास्त्र गुरु यहाँ मेरे समीप होइये होइये।

गीता छन्द

सुरपति उरग नरनाथ तिनकर, वन्दनीक सुपद-प्रभा।
अति शोभनीक सुवरण उज्ज्वल, देख छवि मोहित सभा॥
वर नीर क्षीरसमुद्र घट भरि अग्र तसु बहुविधि नचूं।
अरहंत श्रुत-सिद्धांत गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं॥

दोहा

मलिन वस्तु हर लेत सब, जल स्वभाव मलछीन।
जासों पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन।१।

ओं ह्रीं देव-शास्त्र-गुरुभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्व० स्वाहा॥

जिनके चरण कमलों की प्रभा इन्द्र नागेन्द्र, चक्रवर्ती के द्वारा वन्दनीय है जिसे देखकर समोशरण की सभायें मोहित हो रही हैं, जिन भगवान की वीतराग छवि सुन्दर वर्ण से अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो रही है, उन अरहंत भगवान जिन वाणी और निर्ग्रन्थ साधुओं की प्रतिदिन क्षीर समुद्र के उत्कृष्ट जल से बहुत प्रकार नृत्य भक्ति करके पूजा करता हूँ।

जिस प्रकार जल मलिन वस्तु को निर्मल करता है उसी प्रकार मैं अपनी मिथ्यात्व आदि से मलिन आत्मा को निर्मल करने एवं परम पद अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने के लिए देव शास्त्र गुरु इन तीनों की जल से पूजन करता हूँ।

ओं ह्रीं देव शास्त्र गुरु को जन्म जरा और मृत्यु को नष्ट करने के लिए जल समर्पण करता हूँ।

जे त्रिजग उदर मँझार प्राणी तपत अति दुद्धर खरे।
तिन अहित-हरन सुवचन जिनके, परम शीतलता भरे॥
तसु भ्रमर-लोभित घ्राण पावन सरस चंदन घिसि सचूं।
अरहंत श्रुत-सिद्धांत गुरु निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं॥

दोहा

चंदन शीतलता करै, तपत वस्तु परवीन।
जासों पूजौं परमपद, देवशास्त्र गुरु तीन।२।

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः संसार-ताप-विनाशनाय चंदनं निर्व० स्वाहा॥२॥

तीनों लोकों में सभी जीव अत्यन्त दुःख की वेदना से तप रहे हैं उनके अहित अर्थात् दुःख को नष्ट करने के लिए संसार ताप से परम सर्वोत्कृष्ट शीतलता प्रदान करने के लिए आपके वचन ही कारण है अर्थात् अरहंत भगवान जिनवाणी और सर्व साधुओं की मैं जिस चन्दन पर भौरें सुगंधि लेने के लोभ से आ रहे हैं ऐसे नासिका को पवित्र करने वाले सुन्दर सरस चन्दन से पूजा करता हूँ।

जिस प्रकार शारीरिक ताप का नाश करने के लिए चन्दन शीतलता देता है उसी प्रकार सांसारिक ताप से शीतलता प्राप्त कर परम पद को प्राप्त करने के लिए परमपद में स्थित देव शास्त्र और गुरु की चन्दन से पूजन करता हूँ।

ओं ह्रीं देव शास्त्र गुरु के लिए संसार ताप नाश करने के लिए चंदन समर्पण करता हूँ।

यह भवसमुद्र अपार तारण के निमित्त सुविधि ठई।
अति दृढ़ परमपावन जथारथ भक्ति वर नौका सही॥
उज्ज्वल अखंडित सालि तंदुल पुंज धरि त्रयगुण जचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धांत गुरु निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥

दोहा

तंदुल सालि सुगंध अति, परम अखंडित बीन।
जासों पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन।३।

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपा० स्वाहा॥

यह भव रूपी समुद्र बहुत असीम है इस संसार से पार करने के लिए हे भगवान आपकी दृढ़ता पूर्वक उत्कृष्ट निर्मल यर्थाथ भक्ति रूपी श्रेष्ठ नौका ही समर्थ है अतः उज्ज्वल अखंडित उत्तम जाति (शालिधान) के चावलों के पुंज से रत्नत्रय सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की प्राप्ति के लिए देव शास्त्र गुरु की पूजा करता हूँ।

मोक्ष को प्राप्त करने वाले देव शास्त्र गुरु की उत्तम शालिधान के सुगंधित अखंडित एक-एक कर बीने गये चावलों से पूजन करता हूँ।

ओं ह्रीं देव शास्त्र गुरु को अक्षय पद प्राप्त करने के लिए अक्षत समर्पण करता हूँ।

जे विनयवंत सुभव्य-उर-अंबुजप्रकाशन भान हैं।
जे एक मुख चारित्र भाषत त्रिजगमाहिं प्रधान हैं॥
लहि कुंद कमलादिक पहुप, भव भव कुवेदनसों बचूं।
अरहंत श्रुत-सिद्धांत गुरु निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं॥

दोहा

विविध भांति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन।
जासों पूजौं परमपद देव शास्त्र गुरु तीन।४।

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्व० स्वाहा ॥४॥

अरहंत भगवान विनयवान भव्य जीवों के हृदयरूपी कमल को विकसित करने के लिए सूर्य के समान है। भगवान की दिव्य ध्वनि में मुख्य रूप से चारित्र का ही कथन किया है जो तीनों लोकों में प्रधान है उन देव शास्त्र गुरु की भव भव के असह्य दुःखों से बचने के लिए कुन्द कमल आदि फूलों से पूजन करता हूँ।

नाना प्रकार के अतिशय सुंगधित जिनकी सुगंधि के वश में भौंरें भी हैं ऐसे फूलों से मोक्ष पद को प्राप्त करने केलिए परम पद में स्थित देव शास्त्र गुरु की पूजन करता हूँ।

ओं ह्रीं देव शास्त्र गुरु को काम बाण के नाश करने के लिए पुष्प समर्पण करता हूँ।

अति सबल मद-कंदर्प जाको क्षुधा-उरग अमान है।
दुस्सह भयानक तासु नाशन को सु गरुड़ समान है॥
उत्तम छहों रसयुक्त नित, नैवेद्य करि घृत में पचूं।
अरहंत श्रुत-सिद्धांत गुरु निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं॥

दोहा

नानाविधि संयुक्तरस, व्यंजन सरस नवीन।
जासों पूजौं परमपद, देवशास्त्र गुरु तीन।५।

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधा-रोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्व० स्वाहा ॥५॥

जिसका ओज, तेज साहस बहुत है बलवान है वह क्षुधा (भूख) सर्प के समान है वह बहुत दुःसाहसी है भयानक है आप उसे नाश करने के लिए गरुड़ के समान हैं इस क्षुधा को नाश करने के लिए उत्तम छहों रसों से युक्त घृत में पके हुए नैवेद्य (पकवानों से) देवशास्त्र गुरु की पूजा करता हूँ।

तरह-तरह के रसीले व्यंजनों से परम पद की प्राप्ति के लिए परम पद में स्थित देव शास्त्र गुरु की पूजन करता हूँ।

ओं ह्रीं देव शास्त्र गुरु को क्षुधा रोग के नाश करने के लिए नैवेद्य समर्पण करता हूँ।

जे त्रिजगउद्यम नाश कीने, मोहतिमिर महाबली।
तिहि कर्मघाती ज्ञानदीप प्रकाश जोति प्रभावली॥
इह भाँति दीप प्रजाल कंचन के सुभाजन में खचूं।
अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरु निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं॥

दोहा

स्वपरप्रकाशक ज्योति अति, दीपक तमकरि हीन।
जासों पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन।६।

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्व० स्वाहा ॥६॥

मोहनीयकर्म जगत में बहुत बलवान हैं जो तीनों लोकों में जीवों के कल्याणकारी पुरुषार्थ का नाश करता है। हे भगवान आपने उस महा बलवान मोह को नष्ट कर तीनों लोकों को प्रकाशित करने वाली ज्ञान ज्योति को प्राप्त किया है उस ज्ञान ज्योति को प्रगट करने के लिए सोने का दीपक जलाकर देव शास्त्र गुरु की पूजा करता हूँ।

हे भगवान् आपकी स्व और पर को प्रकाशित करने वाली ज्ञान ज्योति को जो मोहरूपी अन्धकार नष्ट करने वाली है उसे और मोक्ष पद प्राप्त करने के लिए परम पद में स्थित देवशास्त्र गुरु की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं देव शास्त्र गुरु को मोह अंधकार के नाश करने के लिए दीपक समर्पण करता हूँ।

जो कर्म-ईंधन दहन अग्निसमूह सम उद्धत लसै।
वर धूप तासु सुगन्धता करि, सकल परिमलता हंसै॥

इह भाँति धूप चढ़ाय नित भव ज्वलनमाहिं नहीं पचूं।
अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरु निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं।।

दोहा

अग्निमांहि परिमल दहन, चंदनादि गुणलीन।
जासों पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन।७।

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्व० स्वाहा ।।७।।

हे भगवान आप संसार में दुःखों को देने वाले कर्मों के समूह को नष्ट करने के लिए (जलाने के लिए) अग्नि के समान हैं जिस प्रकार अच्छी सुगंधित धूप की गंध से अन्य सभी सुगंधियां मंद पड़ जाती हैं। उसी प्रकार सांसारिक दुःखों की ज्वाला में बार-बार जलकर नष्ट न होऊँ अतः यह उत्तम धूप चढ़ाकर देव शास्त्र गुरु की नित्य पूजा करता हूँ।

चंदन आदि सुगंधित द्रव्यों के गुणों सहित धूप को अग्नि में जलाकर हे भगवान मोक्ष पद को प्राप्त करने के लिए धूप से परमपद में स्थित देवशास्त्र गुरु की मन वचन काय से पूजन करते हैं।

ओं ह्रीं देव शास्त्र गुरु को आठ कर्म नाश करने के लिए धूप समर्पण करता हूँ।

लोचन सुरसना घ्राण उर, उत्साह के करतार हैं।
मोपै न उपमा जाय वरणी, सकल फल गुणसार हैं।।
सो फल चढ़ावत अर्थपूरन, परम अमृतरस सचूँ।
अरहंत श्रुतसिद्धाँत गुरु निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।

दोहा

जे प्रधान फल फलविषैं, पंचकरण-रस लीन।
जासों पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन।८।

ओं ह्रीं देवशास्त्र गुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जिस फल को देखकर आंखें, चखकर रसना सूंघकर घ्राण और मन चिन्तनकर उत्साह को प्राप्त हो अर्थात् आँखों को रसना घ्राण और मन को उत्साहित करने वाला अनुपम (जिसकी उपमा का वर्णन करना अशक्य है) ऐसे सर्वगुणों से सम्पन्न फल चढ़ाकर अपने मोक्ष रूपी प्रयोजन को पूर्ण करने को

एवं परम स्वात्म रस की प्राप्ति के लिए देवशास्त्र गुरु की पूजा करता हूँ।

सब फलों में श्रेष्ठ इन्द्रियों को प्रसन्न करने वाले फल से करण लब्धि की प्राप्ति के लिए मोक्ष पद को देने वाले देव शास्त्रगुरु की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं देव शास्त्र गुरु को मोक्ष फल की प्राप्ति के लिए फल समर्पण करता हूँ।

जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूं।
वर धूप निरमल फल विविध, बहु जनम के पातक हरूं॥
इहि भाँति अर्घ चढ़ाय नित भवि करत शिवपंकति मचूं।
अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरु निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं॥

वसुविधि अर्घ संजोयके, अति उछाह मन कीन।
जासों पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥९॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

परम निर्मल उज्जवल जल, सुगंध, अक्षत, पुष्प, नैवैद्य, दीप, श्रेष्ठ धूप, नाना प्रकार के फल तथा अर्घ से बहुत जन्म अर्थात् जन्म-जन्म के पापों को नष्ट करने के लिए भव्य जीवों को मुक्ति प्राप्ति के कारण श्री देवशास्त्र गुरु की प्रति दिन पूजन करता हूँ।

आठों द्रव्यों का अर्घ वना कर अत्यन्त उत्साह पूर्वक परमपद अर्थात् मोक्षपद की प्राप्ति के लिए परम पद में स्थित श्रीदेवशास्त्र गुरु की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं देवशास्त्र गुरु को अनर्घपद की प्राप्ति के लिए अर्घ समर्पण करता हूँ।

जयमाला

देवशास्त्रगुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार।
भिन्न भिन्न कहूँ आरती, अल्प सुगुण विस्तार।१।

तीनों लोकों में शुभरत्न देवशास्त्र गुरु हैं। ये तीनों रत्न सम्यग्दर्शन, सम्यक्ग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र रूपी रत्नों को करने वाले हैं। अर्थात् सम्यक् दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र रूपी रत्न अन्तर में प्रकटाने में कारण है अतः अब मैं अल्प बुद्धि आत्म हित के लिए देव शास्त्र गुरु के अलग-अलग गुणों का कथन करता हूँ।

⊕चउ कर्मसु त्रेसठ प्रकृति नाशि,
जीते अष्टादश दोषराशि।
जे परम सुगुण हैं अनंत धीर,
कहवत के छयालिस गुण गंभीर।२।

चार घातिया कर्म की ४७ नाम कर्म की १३ और आयु कर्म की ३ इस प्रकार त्रेसठ प्रकृतियों को नाश कर आपने जन्म जरा आदि अठारह दोषों को जीतकर अनंत सुगुणों को धारण किए हुए हो कहने में छयालीस गुण ही आते हैं।

शुभ समवशरण शोभा अपार,
शत इंद्र नमत कर सीस धार।
देवाधिदेव अरहंत देव,
बंदौं मन-वच-तन करि सु सेव।३।

शुभ मंगलों को देने वाले समवशरण की शोभा अकथनीय है असीम है अगाध है अपार है आपको सौ इन्द्र शिरनवाकर नमस्कार करते हैं हे देवों के देव अरिहंत भगवान मैं आपकी मन वचन काय से सेवा कर वन्दना करता हूँ।

जिनकी ध्वनि ह्वै ओंकाररूप,
निर-अक्षरमय महिमा अनूप।
दश अष्ट महाभाषा समेत,
लघुभाषा सात शतक सुचेत।४।

⊕(१) जीव विपा की, (२) क्षेत्र विपा की, (३) पुद्गल विपा की, (४) भव विपा की।

दर्शनावरण–९ ज्ञानावरण, ५ मोहनीय २८ अंतराप-५ = ४७ घातियां कर्म की प्रकृतियां और नामकर्म की– नरकगति तिर्यञ्चगति, स्थावर, एकेन्द्रीय जाति आदि ४ प्रकृतियां।

नरकगत्यानुपूर्वी आतप, नामकर्म नरकायु तिर्यञ्च, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी उद्योत नामकर्म आयु देवायु साधारण नामकर्म प्रत्येक नामकर्म।

नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगत्याउपूर्वा आतप उद्योत साधारण प्रत्येक नामक्रम की १३ नरकायु, तिर्यञ्चायु और देवायु।

हे जिनेन्द्र भगवान आपकी दिव्य ध्वनि ओंकार रूप है निरक्षरी है महिमावान है अनुपमेय है अठारह महाभाषाओं एवं सात सौ लघुभाषाओं से गर्भित है।

सो स्याद्वादमय सप्तभंग,
गणधर गूँथे बारह सुअंग।
रवि शशि न हरै सो तम हराय,
सो शास्त्र नमों बहु प्रीति ल्याय।५।

वह ओंकाररूप दिव्य ध्वनि स्याद्वादमय है जिसके सात भंग है। जिसे गणधरों ने बारह अंगों में निबद्ध किया है जिस महाअंधकार (अज्ञानान्धकार) को सूर्य चन्द्रमा भी नष्ट नहीं कर सकते उसे हे जिनवाणी आप सहज ही नष्ट कर देती हो ऐसी जिनवाणी माता को मन वचन काय की एकाग्रता से प्रीतिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

गुरु आचारज उवझाय साध,
तन नगन रतनत्रय-निधि अगाध।
संसारदेह वैराग्य धार,
निरवांछि तपैं शिवपद निहार।६।

श्री आचार्य जी, श्री उपाध्याय जी, श्री साधु जी, ये तीन गुरु हैं। इनका शरीर वस्त्रादि से रहित है, किन्तु ये सम्यक्, दर्शन सम्यज्ञान, और सम्यक् चारित्र रूपी रत्नों के भंडार हैं। ये संसार, शरीर और भोगों से वैराग्य धारण कर विषय भोगों की इच्छा के बिना मोक्ष को लक्ष्य बनाकर तपस्या करते हैं।

गुण छत्तिस पच्चिस आठबीस,
भवतारन तरन जिहाज ईस।
गुरु की महिमा वरनी न जाय,
गुरु-नाम जपों मन-वचन-काय।७।

आचार्य ३६ मूल गुणों को उपाध्याय २५ मूल गुणों को और साधु २८ मूल गुणों को धारण करने वाले हैं हम संसारी जीवों को भवसागर से पार होने के

लिए श्रेष्ठ जहाज के समान है गुरु की महिमा कहां तक कहें, जिव्हा से वर्णन करने में हम असमर्थ हैं अतः मन वचन काय से गुरु के नाम और गुणों का स्तवन करते हैं।

सोरठा

कीजै शक्ति प्रमान, शक्ति बिना सरधा धरै।
द्यानत सरधावान, अजर अमरपद भोगवै।८।

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

कोई भी कार्य क्षयोपशम और शरीर की शक्ति को देखकर ही करना चाहिए यदि शरीर क्षीण है तो आगम को तोड़-मरोड़ नहीं करना चाहिए बल्कि श्रद्धा धारण कर अपनी हीनता स्वीकार करनी चाहिए श्री द्यानत राय जी कहते हैं यदि सम्यक् श्रद्धा है तो वह अवश्य ही बुढ़ापा और मृत्यु से रहित मुक्ति पद प्राप्त करेगा।

ओं ह्रीं देव शास्त्रगुरु को अनर्घ पद प्राप्त करने के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

श्री जिनके परसाद तैं सुखी रहैं सब जीव।
यातैं तन मन वचन तैं सेवो भव्य सदीव।९।

इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

श्री जिनेन्द्र भगवान् की पूजा भक्ति के प्रसाद से संसार के सभी जीव सुखी होते हैं अतः हे भव्य जीवों मन वचन काय से सदा जिनेन्द्र भगवान की पूजन भक्ति कीजिए।

इत्याशीर्वादः

श्री देव शास्त्र गुरु, विदेह क्षेत्र विद्यमान बीस तीर्थंकर तथा श्रीअनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठी की समुच्चय पूजा

दोहा-देव शास्त्र गुरु नमन करि, बीस तीर्थंकर ध्याय।
सिद्ध शुद्ध राजत सदा, नमूं चित्त हुलसाय॥

ओं ह्रीं श्री देवशास्त्र गुरु समूह ! श्री विद्यमान विंशति तीर्थंकर समूह ! श्री अनंतानंत सिद्ध परमेष्ठी समूह ! अत्रावतरावतर संवौषट् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि-करणम् ।

श्री देव शास्त्र गुरु को नमस्कार करता हूँ। श्री विदेहक्षेत्र स्थित बीस तीर्थंकर भगवानों का ध्यान करता हूँ। जो शाश्वत, शुद्ध, सदा विराजमान हैं उन अनंतानंत सिद्ध भगवान को मन में उत्साह धारण कर नमसस्कार करता हूँ।

ओं ह्रीं देवशास्त्र गुरु विदेह क्षेत्र स्थित बीसतीर्थंकर और अनतांनत सिद्ध भगवान यहाँ आइए आइए।

ओं ह्रीं देव शास्त्र गुरु विदेह क्षेत्र स्थित बीसतीर्थंकर और अनंतानंत सिद्ध भगवान यहाँ ठहरिए ठहरिए

ओं ह्रीं देव शास्त्र गुरु विदेह क्षेत्र स्थित बीस तीर्थंकर और अनंतानंत सिद्धभगवान यहाँ मेरे समीप होइये होइये।

अष्टक

चाल-करले करले तू नित प्राणी, श्रीजिन पूजन करले रे।

अनादिकाल से जग में स्वामिन्, जल से शुचिता को माना।
शुद्ध निजातम सम्यक् रत्नत्रय, निधिको नहिं पहिचाना।

अब निर्मल रत्नत्रय जल ले, देव शास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभू के गुण गाऊँ॥

ओं ह्रीं देव शास्त्र-गुरुभ्यः श्री विद्यमान विंशति-तीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानंत सिद्ध परमेष्ठिभ्यो, जन्मजरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१ ॥

हे भगवान् अनादिकाल से मैंने जल से ही पवित्रता मानी थी आत्मा के शुद्ध स्वरूप सम्यक् ज्ञान सम्यग्चारित्र रूप अपने स्वभाव की पहचान नहीं की थी अब मिथ्यात्व रूपी मैल को धोने के लिए सम्यकत्व रूपी जल लेकर श्री देव शास्त्र गुरु विदेह क्षेत्र स्थित बीस तीर्थंकर और अनंतानंत सिद्ध भगवान का ध्यान एवं गुणस्तवन कर पूजन करता हूँ।

ओं ह्रीं देवशास्त्र गुरु विद्यमान बीसतीर्थंकर और अनंतानंत सिद्ध भगवान के लिए जन्म जरा मृत्यु के नाश करने को जल समर्पित करता हूँ।

भव आताप मिटावन की, निज में ही क्षमता समता है।
अनजाने अब तक मैंने, परमें की झूठी ममता है॥
चन्दन सम शीतलता पाने, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊं।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभू के गुण गाऊँ॥

ओं ह्रीं देव शास्त्र-गुरुभ्यः श्री विद्यमान विंशति-तीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानंत सिद्ध परमेष्टिभ्यो, संसार ताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥२ ॥

अभी तक अज्ञानता के कारण मैंने पर पदार्थों को सुख का कारण मानकर उनसे ममत्व किया और संसार के ताप को सहन किया है संसार ताप को मिटाने के लिए निज में ही शक्ति है जो परिणामों की समता पूर्वक शान्ति प्रदान करती है चन्दन के समान शीतलता प्राप्त करने को श्री देव शास्त्र गुरु विदेह क्षेत्र विद्यमान बीसतीर्थंकर और अनंतांनत सिद्ध भगवान का ध्यान एवं गुण स्तवन कर चन्दन से पूजन करता हूँ।

ओं ह्रीं देवशास्त्र गुरु विदेह क्षेत्र स्थिति बीसतीर्थंकर और अनंतानंत सिद्ध परमेष्ठी के लिए भवाताप मिटाने को चंदन समर्पित करता हूँ।

अक्षय पदके बिन फिरा जगत की लख चौरासी योनी में।
अष्ट कर्म के नाश करने को, अक्षत तुम ढिंग लाया मैं।

अक्षय निधि निज की पाने अब देव शास्त्र गुरु को ध्याऊं।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभू के गुण गाऊँ।।

ओं ह्रीं देव शास्त्र-गुरुभ्यः श्री विद्यमान विंशति-तीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानंत सिद्ध परमेष्ठिभ्यो, अक्षय पद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥३ ॥

जिस परमपद को प्राप्त करने के बाद फिर संसार में आना नहीं होता दुःख कभी नहीं होते ऐसे अक्षय पद की प्राप्ति के बिना संसार की चौरासी लाख योनियों में भ्रमण किया और अनादिकाल से संसार में जनममरण के दुःखों को भोग रहे हैं, उन आठ कर्मों को (जो दुःखों के मूल कारण है) नष्ट करने के लिए अक्षत आपके चरणों में लाया हूँ। जनम-मरण से छूटने के लिए एवं अक्षय निधि अथति अनंत चतुष्टय प्राप्त करने को स्वयं में आत्मानुभूति रूपी सुख प्राप्त करने के लिए श्री देवशास्त्र गुरु विद्यमान बीसतीर्थंकर और अनंतानंत सिद्ध भगवान का ध्यान और उनके गुणगान करता हूँ।

ओं ह्रीं श्री देवशास्त्र गुरु विदेह क्षेत्र स्थित बीसतीर्थंकर और अनंतानंता सिद्ध परमेष्ठि के लिए अक्षय पद की प्राप्ति को अक्षतसमर्पित करता हूँ।

पुष्प सुगन्धी से आतम ने, शील स्वभाव नशाया है।
मन्मथ वाणों से बिंध करके, चहुं गति दुःख उपजाया है।
स्थिरता निज में पाने को, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊं।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभू के गुण गाऊँ।।

ओं ह्रीं देव शास्त्र-गुरुभ्यः श्री विद्यमान विंशति-तीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानंत सिद्ध परमेष्ठिभ्यो, कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥४ ॥

सांसारिक सुन्दरता, फूलों की सुगंधि आदि से मोहित होकर हमने आत्मिक स्वाभाविक शीलादि गुणों का घात किया है और काम भोग में फँस करके नाना प्रकार के कर्मों को बाँधकर अनंत काल से संसार में ही चारों गतियों के महा दुःख उठा रहे हैं अब भावों की स्थिरता प्राप्त करने के लिए श्री देव शास्त्र गुरु विदेह क्षेत्र विद्यमान बीसतीर्थंकर और अनंतानंत सिद्ध भगवान का ध्यान और गुणगान करता हूँ।

ओं ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरु विदेह क्षेत्र स्थित विद्यमान बीसतीर्थंकर और अनंतांनत सिद्ध भगवान के लिए काम दाह को नष्ट करने को पुष्प समर्पित करता हूँ।

षट रस मिश्रित भोजन से, ये भूख न मेरी शांत हुई।
आतम रस अनुपम चखने से, इन्द्रिय मन इच्छा शमन हुई।
सर्वथा भूख के मेटन को, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभू के गुण गाऊँ।।

ओं ह्रीं देव शास्त्र-गुरुभ्यः श्री विद्यमान विंशति-तीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानंत सिद्ध परमेष्ठिभ्यो, क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।५ ।।

मैंने संसार में उत्कृष्ट से उत्कृष्ट छहों रसो से युक्त नाना प्रकार के मन मोहक पदार्थों का सेवन किया फिर भी अनंत काल बीत जाने पर यह भूख समाप्त नहीं हुई, पाँचों इन्द्रियों के विषयों की पूर्ति नहीं कर पाई आपने अपने स्वरूप का चिन्तन करने से स्वानुभूति के द्वारा स्वानुभव रूपसरस रस का अनुभव आने से इन्द्रियों के विषयों की इच्छा का शमन किया है अतः भूख को समूल नष्ट करने केलिए श्री देव शास्त्र गुरु विद्यमान बीस तीर्थंकर एवं सिद्ध भगवान का ध्यान और गुणगान करता हूँ।

जड़ दीप विनश्वर को अबतक, समझा था मैंने उजियारा।
निज गुण दरशायक ज्ञान दीप से, मिटा मोह का अंधियारा।
ये दीप समर्पित करके मैं, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभू के गुण गाऊँ।।

ओं ह्रीं देव शास्त्र-गुरुभ्यः श्री विद्यमान विंशति-तीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानंत सिद्ध परमेष्ठिभ्यो, मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।।६ ।।

सांसारिक जड़ विनश्वर दीपक को जो घट पटादि को नेत्र इन्द्रिय के योग्य प्रकाशित कर अगले ही क्षण नष्ट होने वाला है इसे ही अज्ञानता के कारण मैंने सब द्रव्यों को प्रकाशित करने वाला माना था, लेकिन इस दीपक से आत्मा के गुणों का अवलोकन नहीं हो सकता आत्म गुणों के प्रकाशन के लिए एवं घट पटादि वस्तुए को सम्पूर्ण प्रकाशित करने के लिए मोहरूपी अंधकार को नष्ट करने के लिए ज्ञान दीप ही समर्थ है अतः यह दीप समर्पित कर ज्ञान दीप प्रकट करने के लिए श्री देवशास्त्र गुरु विद्यमान बीसतीर्थंकर एवं सिद्ध भगवान का ध्यान और गुणगान करता हूँ।

ओं ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरु विद्यमान बीस तीर्थंकर और अनंतानंत सिद्ध भगवान के लिए महा मोहान्धकार का नाश करने को दीप समर्पित करता हूँ।

ये धूप अनल में खेने से कर्मों को नहीं जलायेगी।
निज में निज की शक्ति ज्वाला, जो राग द्वेष नशायेगी।
उस शक्ति दहन प्रगटाने को, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊं।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभू के गुण गाऊँ॥

ओं ह्रीं देव शास्त्र-गुरुभ्यः श्री विद्यमान विंशति-तीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानंत सिद्ध परमेष्ठिभ्यो, अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥७ ॥

कर्मों का आस्त्रव आत्मा के विकारी भाव राग द्वेष के कारण होता है जब तक हम आत्म स्वाभाव को समझकर उसमें आचरण नहीं करेंगे तब तक कर्मों का आस्त्रव वंध होता ही रहेगा अर्थात् मात्र धूप अग्नि में जलाने से कर्म नहीं जलेंगे कर्मों को जलाने के लिए सम्यकत्व से सहित, आत्म चिन्तन पूर्वक तप और ध्यानग्नि हमारे ही अन्दर है। वह कर्मों को जलाने की शक्ति अपने अन्तर में प्रकट करने के लिए श्री देव शास्त्र गुरु विद्यमान बीसतीर्थंकर और अनंतानंत सिद्ध भगवान का ध्यान और गुणगान करता हूँ।

ओं ह्रीं श्रीदेव शास्त्र गुरु विदेह क्षेत्र स्थित विद्यमान बीस तीर्थंकर और अनंतानंत सिद्ध भगवान के लिए अष्ट करम के नाश करने को धूप समर्पित करता हूँ।

पिस्ता बादाम श्रीफल लवंग, चरणन तुम ढिंग मैं ले आया।
आतमरस भीने निज गुण फल मम मन अब उनमें ललचाया।
अब मोक्ष महा फल पाने को श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभू के गुण गाऊँ॥

ओं ह्रीं देव शास्त्र-गुरुभ्यः श्री विद्यमान विंशति-तीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानंत सिद्ध परमेष्ठिभ्यो, मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥८ ॥

स्वानुभूति रस अर्थात् आत्मानुभव से प्राप्त आत्म गुणों और स्वानुभव से प्राप्त फल (मोक्ष) को प्राप्त करने की हमें बहुत लालसा है हमारा मन मोक्ष सुख प्राप्त करने के लिए ललचा रहा है। अर्थात् पिस्ता, बादाम नारियल और लवंगादि

फलों को चढ़ाकर मोक्ष फल की प्राप्ति के लिए श्री देव शास्त्र गुरु विद्यमान वीस तीर्थांकर और अनंतानंत सिद्ध भगवान का ध्यान और गुणगान करता हूँ।

ओं ह्रीं श्री देवशास्त्र गुरु विदेह क्षेत्र स्थित विद्यमान बीस तीर्थंकर और अनंतानंत सिद्ध भगवान के लिए मोक्ष महाफल की प्राप्ति के लिए फल समर्पित करता हूँ।

अष्टम वसुधा पाने को, कर में ये आठों द्रव्य लिए।
सहज शुद्ध स्वाभाविकता से, निज में निज गुण प्रगट किये।
में अर्घ समर्पण करके मैं, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊँ॥
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभू के गुण गाऊँ॥

ओं ह्रीं देव शास्त्र-गुरुभ्यः श्री विद्यमान विंशति-तीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानंत सिद्ध परमेष्ठिभ्यो, अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥९॥

संसार में सात भूमियों को अनंत बार प्राप्त कर अपार दुःखों को भोगा है अब आठवीं भूमि अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने के लिए आठों द्रव्यों को मिलाकर ये अर्घ्य लेकर आपके चरणों में आया हूँ। स्वाश्रित शुद्ध आत्मा के स्वाभाव से आत्मा में आत्मिक गुणों को प्रकट करने के लिए यह अर्घ्य समर्पित कर श्री देव शास्त्र गुरु विद्यमान बीस तीर्थंकर और अनंतानंत सिद्ध भगवान का ध्यान और गुणगान करता हूँ।

ओं ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरु विद्यमान बीस तीर्थंकर और अनंतानंत सिद्ध भगवान के लिए अन अर्घ्य पद की प्राप्ति को अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

जयमाला

नसे घातिया कर्म अर्हंत देवा करें सुरअसुर नरमुनि नित्य सेवा।
दरश ज्ञान सुख बल अनन्तके स्वामी, छियालीस गुण युक्त महाईश नामी॥

हे भगवान आपके चार घातिया कर्म नष्ट हो गये हैं और आपके अर्हन्त अवस्था प्रकट हो गई है आपकी चतुर्निकाय के देव, मनुष्य, मुनि नित्य, उपासना, ध्यान पूजा करते हैं आप अनंत दर्शन अनंत ज्ञान अनंत सुख और अनंत वल के स्वामी हो छयालीस गुणों से सहित ईश्वरत्व पद प्राप्त कर जगत प्रसिद्ध हुए हो।

तेरी दिव्य वाणी सदा भव्य मानी, महा मोह विध्वंसिनी मोक्षदानी अनेकान्त मय द्वादशांगी बखानी, नमो लोक माता श्री जैन वाणी॥

हे भगवान आपकी दिव्य ध्वनि भव्य जीवों को हमेशा सुख देने वाली है महादुःख रूप विकराल महाबली मोह का नाश कर अनंत सुख को देने वाली है। एक पदार्थ के अनंत गुणों को कहने वाली अनेकान्त मय बारह अंगों में निबद्ध है ऐसी जिनवाणी जो तीन लोक के समस्त जीवों को माता के समान सुख देने वाली है उन जिन वाणी माता को बार-बार नमस्कार करता हूँ।

विरागी अचारज उवज्झाय साधू, दरश ज्ञान भण्डार समता अराधू। नगन वेशधारी सु एका विहारी, निजान्द मंडित मुकति पथ प्रचारी॥

संसार शरीर और भोगों से विरक्त चतुर्विध संघ के संचालक आचार्य परमेष्ठी, शास्त्रों के पठन पाठन करने वाले उपाध्याय परमेष्ठी आत्म चिन्तन में लीन साधु परमेष्ठी, सम्यक् दर्शन, सम्यज्ञान और और सम्यक् चारित्र के भंडार है। समतादि छह आवश्यक एवं चार आराधनाओं को धारण करने वाले नग्न दिगम्बर निर्ग्रन्थ वेश को धारण करने वाले साधु आत्मानुभव रूप आनंद से सहित मुक्ति पथ का अनुशरण कर मोक्षमार्ग का प्रचार करने वाले हैं।

विदेह क्षेत्र में तीर्थंकर बीस राजे, बिहरमान बंदूं सभी पाप भाजे। नमूं सिद्ध निर्भय निरामय सुधामी, अनाकुल समाधान सहजाभिरामी॥

पंच मेरू संबंधि पाँच विदेह क्षेत्रों में बीस तीर्थंकर नित्य विहार करते रहते हैं उनकी पूजन वंदना करने से सभी भव भव के संचित पाप नष्ट हो जाते हैं। भयो से रहित रोगों से रहित है उत्कृष्ट स्थान अर्थात् मोक्ष सुख को प्राप्त कर अपने आप में ही सुख का पान कर रहे हैं ऐसे सिद्ध भगवान को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।

दोहा-देव शास्त्र गुरु बीस तीर्थंकर, सिद्ध हृदय बिच धरले रे। पूजन ध्यान गान गुण करके, भव सागर जिय तर ले रे। पूर्णार्ध्य

ओं ह्रीं देव शास्त्रगुरुभ्यः श्री विद्यमान विंशति तीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानते सिद्ध परमेष्ठिभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं नि० स्वाहा।

श्री देव शास्त्र गुरुविदेह क्षेत्र स्थित बीस तीर्थांकर और अनंतानंत सिद्ध भगवान को हृदय में धारण कर पूजन, ध्यान, गुणानुवाद, कर मंगल गान पूर्वक पूजन कर संसार रूपी समुद्र से पार होने का उपाय करता हूँ।

ओं ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरु विद्यमान बीस तीर्थांकर और अनंतानंत सिद्ध भगवान के लिए अनर्घ्य पद की प्राप्ति को अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

श्री जिन के प्रसाद से सुखी रहे सब जीव।
यातैं तन मन वचन तैं सेवो भव्य सदीव॥

श्री जिनेन्द्र भगवान की पूजा भक्ति के प्रसाद से संसार के सभी जीव सुखी होते हैं अतः हे भव्य जीवों मन वचन काय से सदा जिनेन्द्र भगवान की पूजन भक्ति कीजिए।

॥इत्याशीर्वादः॥

पुस्तक की यह विनती ज्ञानी जन सुन लेव,
पावक पानी तें बचें मूरख हस्त न देव॥१॥
कटि ग्रीवा अरु नैन कर तन दुःख सहत सुजान,
लिखो जाय अति कठिन तैं शठ जानत आसान॥२॥
कटि टेड़ी टेड़ी घिची दृष्टि अधोमुख होय॥
कठिन कठिन कर यह लिखी जतन रखियो सोय॥३॥

श्री बीस तीर्थंकर पूजा भाषा

दीप अढ़ाई मेरु पन, अब तीर्थंकर बीस।
तिन सबकी पूजा करूँ, मन-वच-तन धरि शीस॥

ओं ह्रीं विद्यमान विंशति-तीर्थंकराः ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्आह्वानम्

ओ ह्रीं विद्यमान-विंशति-तीर्थंकराः ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्

ओं ह्रीं विद्यमानविंशति-तीर्थंकराः ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्। सन्निधिकरणम्

मध्यलोक के बीच में जम्बू द्वीप है, और जम्बूद्वीप के बीचो बीच सुदर्शन मेरु है, दूसरे द्वीप धाातकी खण्ड द्वीप में अचल मेरु और विजय मेरु ये दो मेरु हैं और तीसरे पुष्करवर द्वीप में विद्युन्माली मेरु और मन्दर मेरु ये दो मेरु है, इस प्रकार पाँच मेरु हैं एक मेरू संबंधी चार तीर्थंकर प्रतिसमय विद्यमान है, अतः पाँच मेरु संबंधी बीस तीर्थंकर विद्यमान है उन सबकी सिर नवाकर मन वचन काय से पूजन भक्ति करता हूँ।

ओं ह्रीं विदेह क्षेत्र स्थित विद्यमान बीस तीर्थंकर यहाँ आइये आइये।

ओं ह्री विदेह क्षेत्र स्थित विद्यमान बीस तीर्थंकर यहाँ ठहरिये ठहरिये।

ओं ह्रीं विदेह क्षेत्र स्थित विद्यमान बीस तीर्थंकर यहाँ मेरे समीप होइये होइये।

॥ अथाष्टक ॥

इन्द्र फणीन्द्र नरेन्द्र वंद्य, पद निर्मलधारी,
शोभनीक संसार, सारगुण हैं अविकारी।
क्षीरोदधि सम नीरसों (हो), पूजों तृषा निवार,
सीमंधर जिन आदि दे, बीस विदेह मँझार।
श्री जिनराज हो, भव तारण तरण जहाज।१।

ओं ह्रीं विद्यमान-विंशति-तीर्थंकरेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वा० स्वाहा।

(इस पूजा में बीस पुञ्ज करना हो तो प्रत्येक द्रव्य चढ़ाते समय इस प्रकार मंत्र बोलना चाहिए)

ओं ह्रीं सीमंधर, युगमंधर, बाहु, सुबाहु, संजात, स्वयंप्रभ, ऋषभानन, अनन्तवीर्य, सूरप्रभ, विशालकीर्ति, वज्रधर, चन्द्रानन, चंद्रबाहु, भुजंगम, ईश्वर, नेमिप्रभ, वीरसेन, महाभद्र, देवयशोऽजितवीर्येति विंशति विद्यमानतीर्थंकरेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्व० स्वाहा ॥१ ॥

इन्द्र, नागेन्द्र, और चक्रवर्ती के द्वारा वंदित आपके निर्मल चरण संसार में अतिशय शोभा को प्राप्त हैं, आपके निर्मल गुण अविनाशी पद को प्राप्त कराने वाले हैं। विदेह क्षेत्र स्थित श्री सीमन्धरादि बीस तीर्थंकर भगवानों की, अनादिकाल से लगी प्यास मिटाने के लिए क्षीरसागर के जल के समान जल से पूजन करता हूँ। हे जिनेन्द्र भगवान आप संसार सागर को पार करने के लिए नौका के समान हो।

ओं ह्रीं विदेह क्षेत्र स्थित सीमंधर आदि बीस तीर्थंकरों के लिए जन्म जरा और मृत्यु को नाश करने के लिए जल समर्पित करता हूँ।

तीन लोक के जीव, पाप आताप सताये,
तिनकों साता दाता, शीतल वचन सुहाये।
बावन चंदनसों जजूं, (हो) भ्रमन-तपन निरवार,
सीमंधर जिन आदि दे, बीस विदेह मँझार।
श्री जिनराज हो, भव तारण तरण जहाज ॥२ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो भवातापविनाशनाय चंदनं नि० स्वाहा

तीनों लोकों के समस्त जीव पाप कर्म के उदय से दुःखी हो रहे हैं अर्थात् पाप से दुःखी हैं उन सब जीवों को सुख साता देने वाले आपके वचन ही हितकर हैं अर्थात् श्री सीमन्धर आदि विदेह क्षेत्र स्थित बीस तीर्थंकर भगवान को जो संसार रूपी समुद्र को पार करने के लिए नौका के समान हैं। उनकी संसार परिभ्रमण रूपी तपन के निवारण को पावन चन्दन से पूजन भक्ति करता हूँ।

ओं ह्रीं विदेह क्षेत्र स्थित विद्यमान बीसतीर्थंकरों के लिए भवाताप मिटाने के लिए चन्दन समर्पित करता हूँ।

यह संसार अपार महासागर जिनस्वामी,
तातैं तारे बड़ी, भक्ति-नौका जग नामी।
तन्दुल अमल सुगंधसों (हो) पूजों तुम
गुणसार, सीमंधर० ।३।

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करोऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्व० स्वाहा

इस संसार में मैं अनादि काल से दुःख भोग रहा हूँ। यह महासागर के समान अपार है। हे जिनेन्द्र देव इस दुःख रूपी महासमुद्र से पार होने के लिए आपकी भक्ति रूपी नौका ही जग में प्रसिद्ध है, पार करने में सक्षम है। विदेह क्षेत्र स्थित श्री सीमन्धरादि बीस तीर्थंकर भगवान जो संसार रूपी सागर को पार करने के लिए जहाज के समान है उनकी उनके समान गुणों की प्राप्ति के लिए उज्जवल निर्मल सुगंधित अक्षतों से पूजन करता हूँ।

ओं ह्रीं विदेह क्षेत्र स्थित सीमन्धरादि बीस तीर्थंकरों के लिए अक्षय पद की प्राप्ति को अक्षत समर्पित करता हूँ।

भविक-सरोज-विकाश, निंद्य-तम-हर रविसे हो,
जति श्रावक आचार, कथन को, तुम ही बड़े हो।
फूलसुवास अनेकसों (हो) पूजो मदन प्रहार,
सीमंधर० ।४।

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्व० स्वाहा

भव्य रूपी कमल को विकसित करने के लिए एवं संसार में मोह रूपी अंधकार को नष्ट करने के लिए आप सूर्य के समान हैं। मुनि धर्म और श्रावक धर्म का कथन करने वाले आप ही श्रेष्ठ हैं विदेह क्षेत्र स्थित सीमन्धरादि बीस तीर्थंकर भगवान जो संसार रूपी समुद्र को पार करने के लिए जहाज के समान हैं उनकी कामदाह अर्थात् कामदेव के प्रहार से बचने के लिए सुगंधित पुष्पों से पूजन करता हूँ।

ओं ह्रीं विदेह क्षेत्र स्थित सीमन्धरादि बीसतीर्थंकरो के लिए कामदाह नाशने के लिए पुष्प समर्पित करता हूँ।

काम नाग विषधाम, नाशको गरुड़ कहे हो,
क्षुधा महादव-ज्वाल, तासको मेघ लहे हो।
नेवज बहुघृत मिष्टसों (हो) , पूजों भूख विडार,
सीमंधर जिन आदि दे बीस विदेह मँझार।
श्री जिनराज हो, भव तारण तरण जहाज ॥५।

ओं ह्रीं विद्यमान विंशतितीर्थंकरेभ्योः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि० स्वाहा।

काम रूपी नाग महाविकराल विष के भण्डार हैं।अत्यन्त दुःख को देने वाले हैं। उसे नाश करने के लिए आप गरुड़ के समान हैं। क्षुधा (भूख) रूपी महादावानल, भीषण अनिवार दुःख को देने वाला है उसके नाश करने के लिए आप (बादलों) के समान है। विदेह क्षेत्र स्थित श्री सीमन्धरादि बीस तीर्थंकर भगवान जो संसार समुद्र के पार करने के लिए जहाज के समान है उनकी भूख को नष्ट करने के लिए बहुत प्रकार मिष्ट घी में पके नैवेद्य से पूजन भक्ति करता हूँ।

ओं ह्रीं विदेह क्षेत्र स्थित श्री सीमन्धरादि बीस तीर्थंकरो के लिए भूख मिटाने को नैवेद्य समर्पित करता हूँ।

उद्यम होन न देत, सर्व जग मांहिं भरयो है,
मोह महातम घोर, नाश परकाश करयो है।
पूजों दीप प्रकाशसों (हो) ज्ञान ज्योति करतार,
सीमंधर० ।६।

ओं ह्रीं विद्यमान विंशतितीर्थंकरेभ्यो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं नि० स्वाहा।

यह अन्धकार तो थोड़े समय में प्रकाश रूप होगा परमोह रूपी अन्धकार बहुत विकराल है यह तो अनादि काल से हमें संसार में भटका रहा है। यह सम्पूर्ण संसारी जीवों को दुःख देता है। यह मोहान्धकार मोक्ष के साधक का कोई भी कार्य नहीं होने देता है। हे भगवान आपने इस मोहान्धकार को नष्ट कर केवल ज्ञान रूपी प्रकाश को प्राप्त किया है। विदेह क्षेत्र स्थित श्री सीमन्धरादि

बीस तीर्थंकर भगवान जो संसार समुन्द्र से पार होने के लिए नौका के समान हैं उन ज्ञान ज्योति प्रकटाने वाले भगवान की दीपक से पूजन करता हूँ।

ओं ह्रीं श्री विदेह क्षेत्र स्थित सीमन्धरादि बीस तीर्थंकरो के लिए महामोहान्धकार के नाश को दीपक समर्पित करता हूँ।

कर्म आठ सब काठ, भार विस्तार निहारा,
ध्यान अगनि कर प्रकट सरब कीनो निरवारा।
धूप अनूपम खेवतें (हो) , दुःखजलैं निरधार,
सीमंधर० ।७।

ओं ह्रीं विद्यमान विंशति-तीर्थंकरेभ्योऽष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं नि० स्वाहा।

जिन आठ कर्मों से हम दुखी एवं भयभीत हैं उन्हें आपने ध्यान रूपी अग्नि प्रकट कर ईधन के समान जला दिया है। विदेह क्षेत्र स्थित श्री सीमन्धरादि बीस तीर्थंकर भगवान जो संसार समुद्र को पार करने के लिए नौका के समान है उनकी दुःखों से छूटने के लिए कर्मो को जलाने के लिए धूप से पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं श्री विदेह क्षेत्र स्थित श्री सीमन्धरादि बीस तीर्थंकरों के लिए अष्ट कर्मों के नाश करने को धूप समर्पित करता हूँ।

मिथ्यावादी दुष्ट, लोभऽहंकार भरे हैं,
सब को छिन में जीत जैन के मेरु खरे हैं।
फल अति उत्तमसों जजों (हो) वांछित फलदातार,
सीमंधर० ।८।

ओं ह्रीं विद्यमान विंशति-तीर्थंकरेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं नि० स्वाहा।

मिथ्यामत का समर्थन करने वाले दुष्ट पापी संसार के दुःखों को भोगते हुए भी अपने कार्य के प्रति रागादि को धर्म मानकर लोभादि विकारी भावों को धारण कर अहंकारी हो गये हैं उन सब वादियों को आपनेक्षण में जीत लिया है आप जैन सिद्धान्त, जैन दर्शन के प्रणेता है उत्कृष्ट दर्शन को धारण करने वाले मेरु के

समान हैं विदेह क्षेत्र स्थित श्रीसीमन्धरादि बीस तीर्थंकर भगवान जो संसार समुन्द्र को पार करने के लिए नौका के समान है और वांछित फल को देने वाले हैं उनकी उत्कृष्ट फलों से पूजन भक्ति करता हूँ।

ओं ह्रीं विदेह क्षेत्र स्थित श्री सीमन्धरादि बीस तीर्थंकरों के लिए मोक्ष फल की प्राप्ति के लिए फल समर्पित करता हूँ।

जल फल आठों दर्व, अरघ कर प्रीति धरी है,
गणधर इन्द्रनहू तैं थुति पूरी न करी है।
द्यानत सेवक जानके (हो) जगतैं लेहु निकार।
सीमंधर० ।९।

ओं ह्रीं विद्यमान-विंशति-तीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व० स्वाहा।

जिन तीर्थंकर भगवानों की स्तुति गणधर, इन्द्र भी पूरी नहीं कर सके उन्होंने भी अपने को असमर्थ समझा उन भगवानों की स्तुति हम कैसे कर सकते हैं। अतः श्री द्यानत राय जी विनती करते हैं कि हे भगवान हमें आप अपना सेवक जानकर इस संसार से निकालकर मुक्ति प्राप्त कराइये। हम विदेह क्षेत्र स्थित श्री सीमन्धरादिहबीस तीर्थंकर भगवानों को जो संसार समुद्र से पार होने के लिए नौका के समान हैं उनकी जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प नैवेद्य, दीप, धूप और फल का अर्घ्यं बनाकर विनय पूर्वक पूजन करते हैं।

ओं ह्रीं विदेह क्षेत्र स्थित श्री सीमन्धरादि बीस तीर्थंकरों केलिए अनर्घ्यपद की प्राप्ति को अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

हमारा जीवन मंदिर की तरह है। आत्मा की वीतराग अवस्था ही देवत्व है। हम सभी में वह देवत्व शक्ति विद्यमान है। अपनी इस देवत्व शक्ति को पहचान कर, उसे अपने भीतर प्रकट करने के लिए हमने बाहर मंदिर बनाये हैं और उनमें अपने आदर्श वीतराग अर्हन्त और सिद्ध परमात्मा को स्थापित किया है।

(१०८ मुनि क्षमा सागर जी)

जयमाला

सोरठा-ज्ञान सुधाकर चंद, भविक खेत हित मेघ हो,
भ्रम-तम-भान अमंद, तीर्थङ्कर बीसों नमों।

चौपाई १६ की मात्रा।

हे भगवान ज्ञान रूपी अमृत को देने वाले आप चन्द्रमा समान हो, भव्य जीव रूपी खेत को सींचने के लिए आप मेघ के समान हो, भ्रम रूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए कभी न मंद पड़ने वाले सूर्य के समान हैं। ऐसे विदेह क्षेत्र स्थित बीस तीर्थंकर भगवानों को बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

सीमंधर सीमंधर स्वामी, जुगमंधर जुगमंधर नामी।
बाहु बाहु जिन जग जन तारे, करम सुबाहु बाहुबल दारे।१।

हे सीमंधर भगवान आप भवो को सीमित करने वाले हो। हे जुगमन्धर भगवान आप जग का अन्त करने वाले हो। हे बाहु भगवान आप जगत के जीवों को मुक्ति देने वाले हैं हे सुबाहु भगवान आप बाहुबल से कर्मों को जीतने वाले हो।

जात सुजात सुकेवलज्ञानं, स्वयंप्रभू प्रभु स्वयं प्रधानं।
ऋषभानन ऋषिभानन दोषं, अनंतवीरज वीरजकोषं।२।

हे संजातक भगवान आप केवल ज्ञान को प्राप्त कराने वाले हो हे स्वयं प्रभ भगवान आप स्वयं अपने द्वारा अपने ही कर्मों को नष्ट करने में प्रधान हो। हे ऋषभानन भगवान आप ऋषि मुनिराजों के दोष दूर करने वाले हो। हे अनंत वीर्य भगवान आप अनंतवीर्य के भंडार हो।

सौरीप्रभ सौरीगुणमालं, सुगुण विशाल विशाल दयालं।
वज्रधार भवगिरि वज्जर हैं, चंद्रानन चंद्रानन वर हैं।३।

हे सूरप्रभ भगवान आप अनुपम शौर्य गुणों के भंडार हैं। हे विशाल कीर्ती भगवान आप विशाल गुणों को धारण करने वाले दयालु हैं। हे वज्र धर भगवान आप भव रूपी पर्वत को नष्ट करने के लिए वज्र समान हो। हे चन्द्रानन भगवान आप चन्द्रमा के समान उत्कृष्ट सुन्दर मुख को धारण करने वाले हो।

भद्रबाहु भद्रनि के करता, श्रीभुजंग भुजंगम हरता।
ईश्वर सबके ईश्वर छाजैं, नेमिप्रभु जस नेमि विराजैं।४।

हे भद्रबाहु भगवान आप कुशल अर्थात् कल्याण को करने वाले हो। हे भुजंगम भगवान आप विषधर भुजंग अर्थात् मिथ्यामोहादि रूप विषधर के विष को दूर करने वाले हो। हे ईश्वर भगवान आप सब जगत के ईश्वर हो स्वामी हो। हे नेमीप्रभ भगवान आप अविचल निरन्तर अविनाशी पद में विराजमान हो। आपका यश तीनों लोकों में फैला हुआ है।

वीर सेन वीरं जग जाने, महाभद्र महाभद्र बखाने।
नमों जसोधर जसधरकारी, नमों अजितवीरज बलधारी।५।

हे वीरसेन भगवान आप कर्मों को जीतने वाले जगत में सर्वोत्कृष्ट वीर हो। हे महाभद्र भगवान आप महा कल्याण रूप हो। महायश को धारण करने वाले और महायश को करने वाले जसधर भगवान को नमस्कार करता हूँ। अनंत बल को धारण करने वाले अजित वीर्य भगवान को नमस्कार करता हूँ।

धनुष पाँचसै काय विराजै, आयु कोडि पूरब सब छाजै।
समवशरण शोभित जिनराजा, भव-जल-तारनतरन जिहाजा।६।

पाँच सौ धनुष के शरीर को धारण करने वाले एक कोटि पूर्व आयु को भोगने वाले समवशरण की विभूति से विभूषित सभी तीर्थंकर भगवान भव रूपी समुद्र से पार करने के लिए नौका के समान है।

सम्यकरत्नत्रय निधिदानी, लोकालोकप्रकाशक ज्ञानी।
शतइन्द्रनि कर वंदित सोहैं, सुन नर पशु सबके मन मोहैं।७।

हे भगवान आप अत्यन्त दुर्लभ सम्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान सम्यक् चारित्र रूपी रत्नत्रय के देने वाले हो केवल ज्ञान के द्वारा समस्त लोकालोक को प्रकाशित करने वाले हो। एवं सौ इन्द्रों द्वारा वंदनीय और देव, मनुष्य, तिर्यन्च सबके मन को प्रिय लगने वाले सबको कल्याणकारी हो।

दोहा-तुमको पूजैं, बंदना करैं, धन्य नर सोय।
द्यानत सरधा मन धरै, सो भी धरमी होय॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हे भगवान जो मनुष्य आपकी पूजा वंदना करते हैं वे संसार में सुखसाता प्राप्त कर अतिशय पुण्य अर्जित करते हैं। श्रीद्यानत राय कवि कहते हैं कि आपके गुणों में श्रद्धा धारण करने वालों को उनके स्वाभाविक धर्म प्रकट होता है।

ओं ह्रीं विदेह क्षेत्र स्थित श्री सीमन्धरादि बीस तीर्थंकरो के लिए अनर्घ्य पद की प्राप्ति को अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

कृत्रिमाकृत्रिम जिन चैत्य अर्घ्य

कृत्याकृत्रिम-चारु-चैत्य निलयान् नित्यं त्रिलोकी गतान्।
वन्दे भावन व्यन्तरान् द्युतिवरान् स्वर्गामरा वास गान्+ ॥
सद्गंधाक्षत पुष्प दाम चरुकैः सद्दीप धूपैः फलैर्।
नीराद्यैश्च यजे प्रणम्य शिरसा+ दुष्कर्मणां शान्तये ॥1 ॥

ओं ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालय संबंधि जिन बिम्बेभ्योऽर्घ्यं निर्वा० स्वाहा ।

भावार्थ—तीनों लोकों संबंधी सुन्दर कृत्रिम (मनुष्य, देव द्वारा निर्मित) अकृत्रिम (अनादि निधन जो किसी के द्वारा बनाये नहीं है) चैत्यालयों (मंदिरों) की तथा भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क, कल्पवासी देवों के भवनों, विमानों में स्थित अकृत्रिम चैत्यालयों को नमस्कार कर अष्ट कर्मों की शान्ति के लिए पवित्र जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प नैवेद्य दीप धूप तथा फल के द्वारा उनकी पूजा करता हूँ ।

ओं ह्रीं कृत्रिम और अकृत्रिम चैत्यालयों में स्थित जिन प्रतिमाओं के लिए अर्घ समर्पित करता हूँ ।

वर्षेषु वर्षान्तर-पर्वतेषु नंदीश्वरे यानि च मन्दरेषु।
यावन्ति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वन्दे जिन पुङ्गवानाम् ॥2 ॥

भावार्थ—जम्बू द्वीपवर्ती भरत, हैमवत, आदि क्षेत्रों में घात की खण्ड द्वीप संबंधि क्षेत्रों एवं पुष्करार्द्ध द्वीप संबंधी क्षेत्रों में तथा सर्व कुलाचलों, पंच मेरु संबंधी नंदीश्वर द्वीप स्थित समस्त पर्वत स्थित चैत्यालयों में स्थित जिन प्रतिमाओं की वंदना करता हूँ ।

अवनि तलगतानां कृत्रिमा कृत्रिमाणां।
वन भवन गतानां, दिव्य वैमानिकानां ॥
इह मनुज कृतानां देव राजार्चितानां।
जिनवर निलयानां भावतोऽहं स्मरामि ॥3 ॥

+ स्वर्गा मरावासगान् के स्थान पर कल्पामरावासगानपाठ भी मिलाता है इसमें दोनों सही है । कल्पों में निवास करने वाले, या स्वर्गों में निवास करने वाले एक ही बात है ।

+नीराद्यैश्च यजे प्रणम्य शिरसा के स्थान पर द्रैव्यैर्नीरमुखैर्याजामि, पाठ भी मिलता है ।

भावार्थ—पृथ्वी के नीचे, व्यन्तर, देवों के निवासों में भवन वासी देवों के भवनों में और कल्पवासी देवों (वैमानिक देवों) के यहाँ कृत्रिम और अकृत्रिम चैत्यालय हैं और इस मध्य लोक में मनुष्यों द्वारा बनाये गये, देव और राजाओं द्वारा पूजित जितने कृत्रिम और अकृत्रिम चैत्यालय हैं उन सबका भावपूर्वक स्मरण करता हूँ।

जम्बू-धातकि-पुष्करार्ध- वसुधा क्षेत्र त्रये ये भवा-
श्चन्द्राम्भोज शिखण्डिकण्ठ कनक-प्रावृड्घनाभाजिना।
सम्यग्ज्ञान चरित्र लक्षण धरा दग्धाष्ट कर्मेन्धनाः॥
भूतानागत वर्तमान समये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः ॥4॥

भावार्थ—जम्बू द्वीप, धात की खण्ड द्वीप, और पुष्करार्ध इन अढाई द्वीपों के भरत क्षेत्र, ऐरावत क्षेत्र और विदेह क्षेत्र इन तीन क्षेत्रों में, चन्द्रमा के समान श्वेत, कमल के, समान लाल, मोर के कंठ के समान नीले तथा स्वर्ण के समान पीले रंग के समान, और कृष्ण वर्ण वाले, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र के धारी और कर्म रूपी ईधन को जलाने वाले जितने भूतकालीन, भविष्यकालीन और वर्तमान कालीन जितने तीर्थंकर हैं उन सबको मेरा नमस्कार है।

श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजत गिरिवरे शाल्मलौ जम्बूवृक्षे।
वक्षारे चैत्य वृक्षे रतिकर रुचके कुण्डले मानुषाङ्के।
इष्वा कारेऽञ्जनाद्रौ दधिमुख शिखरे व्यन्तरे स्वर्ग लोके।
ज्योतिर्लोकेऽभिवन्दे भवन महितले यानि चैत्यालयानि ॥5॥

भावार्थ—शोभा संयुक्त सुमेरु पर्वतों पर, कुलाचल पर्वतों पर, विजयार्द्ध पर्वतों पर, शाल्मली वृक्ष पर जम्बूवृक्ष पर वक्षार पर्वतों पर चैत्य वृक्ष पर रतिकर पर्वतों पर, रुचक गिर पर्वत पर, कुण्डल गिर पर्वत पर, मानुषोत्तर पर्वत पर इष्वाकार गिरि पर्वतों पर, अंजन गिर पर्वतों पर दधिमुख पर्वतों पर व्यन्तर देवों के निवासों में, (मध्यलोक) वैमानिक देवों के विमानों में, (उर्ध्वलोक) ज्योतिष्क देवों के विमानों में, भवनवासि देवों के भवनों में, पृथ्वी के नीचे (अधोलोक) में जितने चैत्यालय हैं उन सबको मैं नमस्कार करता हूँ।

द्वौ कुन्देन्दु-तुषार-हार-धवलौ द्वाविन्द्रनील प्रभौ।
द्वौ बन्धूक सम प्रभौ जिन वृषौ द्वौ च प्रियङ्गु प्रभौ॥
शेषाः षोडश जन्म मृत्यु रहिताः संतप्त हेम प्रभा-
स्ते संज्ञान दिवाकराः सुरनुताः सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः॥6॥

ओं ह्रीं त्रिलोक संबंधि कृत्या कृत्रिम चैत्या लयेभ्यो अर्घ्यं नि० स्वाहा।

भावार्थ—भरत क्षेत्र में वर्तमान काल के चौबीस तीर्थंकर हैं उनमें से चन्द्रप्रभ और पुष्पदन्त में दो तीर्थंकर, कुन्द पुष्प, अथवा चन्द्रमा के समान या बर्फ के समान या हीरों के हार के समान श्वेत शरीर वाले हैं। मुनिसुव्रत नाथ और नेमीनाथ ये दो तीर्थांकरों के शरीर नीलमणि के समान नील कान्ति वाले हैं। पद्म प्रभ तथा वासु पूज्य ये दो तीर्थंकरों के शरीर बंधक पुष्प के समान लाल हैं। सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ तीर्थंकरों के शरीर प्रियंगु मणि अर्थात् पन्ना के समान हरित वर्ण हैं इनके सिवाय सोलह तीर्थंकरों के शरीर की कान्ति तपे हुए स्वर्ण के समान हैं ऐसे जन्म मरण से रहित तथा ज्ञान के सूर्य, देवों से वंदनीय समस्त तीर्थंकर हमें मुक्ति प्रदान करें।

ओं ह्रीं तीन लोक वर्ती कृत्रिम और अकृत्रिम चैत्यालयों को अर्घ समर्पित करता हूँ

इच्छामि भंते! चेइय भत्ति काउसग्गो कओतस्सा लोचेउं।अहलोय, तिरियलोय उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिण चेइयाणि ताणि सव्वाणि तीसु वि लोएसु भवण वासिय वाण विंतर जोइ सिय कप्प वासिय त्तिचउव् विहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गन्धेण दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण दिव्वेण चुण्णेण दिव्वेण वासेण दिव्वेण ण्हाणेण णिच्च कालं अच्चंति, पुज्जंति वंदमि णमस्संति वंदंति णमस्सामि! अहमवि इह संतो तत्थ संताइणिच्च कालं अच्चेमि पुज्जेमि दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ वोहिलाओ सुगइगमणं समाहिमरणं जिण गुण संपत्ती होउमज्झं।

अथ पौर्वाह्णिक, माध्याह्निक आपराह्निक देववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल कर्म क्षयार्थं भाव पूजा, वन्दना, स्तव समेतं, श्री पंच महागुरु भक्ति कयोत्सर्गं करोम्यहम् ॥

भावार्थ—हे भगवान ! मैं चैत्य भक्ति और तत्सम्बंधि कायोत्सर्ग करता हूँ । तथा उसकी आलोचना (वर्तमान् दोषों का निराकरण-प्रकट करना) करता हूँ । अधोलोक मध्य लोक, और उर्ध्वलोक में जितने कृत्रिम और अकृत्रिम जिन प्रतिमाएँ हैं उन सबकी भवन वासी व्यंतर, ज्योतिष्क और कल्पवासी चारों निकाय के देव अपने परिवार सहित दिव्य (स्वर्ग में होने वाली-कल्प वृक्ष से प्राप्त) गंध से, दिव्य पुष्प से दिव्य धूप से, पंच प्रकार के दिव्य-चूर्ण से, दिव्य सुगंधित द्रव्य से, दिव्य अभिषेक से हमेशा अर्चना करते हैं । पूजा करते हैं, वन्दना करते हैं, नमस्कार करते हैं मैं भी यहीं से वहाँ स्थित सभी प्रतिमाओं की पूजा करता हूँ, वंदना करता हूँ । नमस्कार करता हूँ । मेरे दुःख क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधि (ज्ञान अथवा रत्नत्रय का) लाभ हो शुभ गति में मेरा गमन हो, समाधिभरण हो तथा अरिहंत की गुण रूपी सम्पत्ति मिले ।

(इस प्रकार आशीर्वाद है यहां पुष्पांजलि क्षेपण करें)

सकल कर्मों का क्षय करने के लिए मैं प्रातः कालीन, मध्याह्नकालीन, तथा सायंकालीन देव वंदना में पूर्वाचार्यों के अनुसार भावपूजा, वंदना तथा स्तुति के द्वारा पंच परमेष्ठीयों की भक्ति तथा कायोत्सर्ग (परिणामों की शुद्धता के लिए शरीर को एक आसन, निश्चलता आदि से कष्ट देना) करता हूँ ।

तावं कायं पाव कम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।
णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं
णमो उवज्झायाणं णमों लोए सव्वसाहूणं ॥

भावार्थ—मैं जितने समय तक पंच नमस्कार मंत्र का जाप करता हूँ तब तक शरीर से ममत्व भाव (प्रीति) पाप कर्म तथा दुष्ट आचरण का त्याग करता हूँ । अरिहंतों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो उपाध्यायों को नमस्कार हो और लोक में सर्वसाधुओं को नमस्कार हो ।

अथ सिद्ध पूजा (द्रव्याष्टक)

ऊर्ध्वाधोरयुतं सबिन्दु सपरं ब्रह्म-स्वरावेष्टितं,
वर्गापूरित-दिग्गताम्बुज-दलं तत्संधि-तत्वान्वितं।
अंतः पत्र-तटेष्वनाहत-युतं ह्रींकार-संवेष्टितं।
देवं ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभ-कण्ठी-रवः ॥१ ॥

ओं ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये ! सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये ! सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। स्थापनम्

ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये ! सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट सन्निधिकरणं।

ऊपर और नीचे रेफ से युक्त बिन्दु सहित हकार है (र्ह्रं) आठ दिशाओं में फैली हुई आठ पंखुड़ियों पर वर्ग अर्थात् पहली पंक्ति पर अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ऋ ॠ लृ ॡ ओ औ अं अः, दूसरी पंक्ति पर क ख ग घ ङ, तीसरी पंखुड़ी पर च छ ज झ ञ, चौथी पंखुड़ी पर ट ठ ड ढ़ ण, पांचवी पंक्ति पर त थ द ध न, छठवीं पंखुड़ी पर प फ ब भ म, सातवीं पंखुड़ी पर य र ल व, आठवीं पंखुड़ी पर श ष स ह इन आठ वर्गों से पूरित है। पंखुड़ियों के जुड़ाव पर णमो अरिहंताणं है पंखुड़ियों के भीतरी किनारों पर ह्रीं से सहित है। ऐसे अक्षरात्मक सिद्ध परमेष्ठी का जो पुरुष ध्यान करता है वह पुरुष मुक्ति रूपी सुन्दरी का पति तथा कर्म रूपी हाथी को सिंह के समान नष्ट करने वाला होता है।

ओं ह्रीं सिद्धचक्र के स्वामिन् हे सिद्ध परमेष्ठी यहां आईये आईये

ओं ह्रीं सिद्धचक्र के स्वामिन् हे सिद्ध परमेष्ठी यहां विराजिये यहां विराजिये

ओं ह्रीं सिद्धचक्र के स्वामिन् हे सिद्ध परमेष्ठी यहां मेरे समीप होईये, मेरे समीप होईये।

निरस्त-कर्म-सम्बन्धं सूक्ष्मं नित्यं निरामयम्।
वन्देऽहं परमात्मानममूर्त्तमनुपद्रवम् ॥१ ॥

(सिद्धयन्त्र की स्थापना)

कर्म बंधन से रहित अशरीरी होने के कारण सूक्ष्म, जन्म मरणादि रहित होने से नित्य, शारीरिक तथा मानसिक आधि व्याधियों से रहित होने के कारण निरामय, निरोग पुद्गल का संबंध न होने के कारण अमूर्त, तथा सांसारिक संबंध न होने से उपद्रव रहित सिद्ध परमात्मा को नमस्कार करता हूं। (सिद्ध यंत्र स्थापना)

सिद्धौ निवासमनुगं परमात्म-गम्यं
हान्यादि भावरहितं भव-वीत-कायम्।
रेवापगा-वर-सरो-यमुनोद्भवानां
नीरजैर्यजे कलशगैर्-वरसिद्ध-चक्रम् ॥१ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं नि० स्वाहा ॥१ ॥

लोक के अंत भाग में विराजमान केवल मात्र सर्वज्ञ देव (विषयभूत) शरीर की हानि वृद्धि अथवा आत्मा की हानि वृद्धि आदि विकारों से रहित तथा जन्म रहित शरीर वाले अर्थात् जन्ममरण से रहित अथवा संसारातीत शरीर वाले सिद्धों के समूह को मैं कलशों में भरे हुए रेवा नदी यमुना नदी तथा स्वच्छ सरोवर के जल से पूजता हूँ।

ओं ह्रीं सिद्ध यंत्र के स्वामी सिद्ध परमेष्ठी अथवा सिद्धि समूह को जन्म जरा मृत्यु नाश करने के लिये जलर्पित करता हूँ।

आनन्द-कन्द-जनकं घन-कर्म-मुक्तं
सम्यकत्व-शर्म-गरिमं जननार्तिवीतम्।
सौरभ्य-वासित-भुवं हरि-चन्दानानां
गन्धैर्यजे परिमलैर्वर-सिद्ध-चक्रम् ॥२ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्व० स्वाहा ॥

आनंद के अंकुर को उत्पन्न करने वाले, कर्म मल से रहित, क्षायिक सम्यक्त्व तथा अनंत सुखधारी होने से परम गौरवशाली, जन्म की पीड़ा से रहित, निर्मल कीर्ति रूपी सुगंधता के निवास स्थान ऐसे सर्वोत्तम सिद्ध समूह की मलय गिरि के चन्दन की मनोहर सुंगध से पूजन करता हूँ।

ओं ह्रीं सिद्ध यंत्र के स्वामी सिद्ध परमेष्ठी को संसार का ताप मेटने के लिये चंदन अर्पण करता हूँ।

सर्वावगाहन-गुणं सुसमाधि-निष्ठं
सिद्धं स्वरूप-निपुणं कमलं विशालम्।
सौगन्ध्य-शालि-वनशालि-वराक्षतानां
पुंजैर्यजे-शशिनिभैर्वरसिद्धचक्रम्॥३॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्व० स्वाहा ॥३॥

आयु कर्म के नष्ट हो जाने से अवगाहन गुण के धारक आत्मीय अनंत गुणों में मग्न, सम्पूर्ण जगत में प्रसिद्ध अपने वास्तविक निष्कलंक स्वरूप को प्राप्त परम ब्रह्म और ज्ञान से सर्वलोक में व्याप्त सिद्ध भगवान को सुगंधित श्रेष्ठ चन्द्रमा के समान निर्मल अक्षतों के पुंज से मैं पूजन करता हूँ।

ओं ह्रीं सिद्ध यंत्र के स्वामी सिद्ध परमेष्ठि को अक्षय पद की प्राप्ति हेतु अक्षत समर्पित करता हूँ।

नित्यं स्वदेह-परिमाणमनादिसंज्ञं
द्रव्यानपेक्षममृतं मरणाद्यतीतम्।
मन्दार-कुन्द-कमलादि-वनस्पतीनां
पुष्पैर्यजे शुभतमै-र्वरसिद्धचक्रम्॥४॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्व० स्वाहा ॥४॥

कर्मों के द्वारा होने वाली जन्म मरणादि अनेक अनित्य पर्यायों से रहित होने के कारण नित्य, चरमशरीर से कुछ कम अपने शरीर के परिमाण में अवस्थित, अनादि कालीन पुद्गलादिक अन्य द्रव्यों से निरपेक्ष अपनी सिद्ध पर्याय से अच्युत और जीवों को ध्यान करने पर अमृत के समान सुख करने वाले मरण शोक

रोगादिक से रहित सिद्ध समूह की मंदार कुंद कमल आदिक वृक्षों के अत्यन्त सुन्दर पुष्पों से मैं पूजन करता हूँ।

ओं ह्रीं सिद्ध यंत्र के स्वामी सिद्ध परमेष्ठी को काम बाण के नाशन हेतु पुष्प समर्पण करता हूँ।

ऊर्द्ध-स्वभाव-गमनं सुमनो-व्यपेतं
ब्रह्मादि-बीज-सहितं गगनावभासम्।
क्षीरान्न-साज्य-वटकै रसपूर्णगर्भै-
नित्यं यजे चरुवरैर्वरसिद्धचक्रम् ॥५ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व० स्वाहा ॥५ ॥

कर्म बंध टूट जाने के कारण स्वभाव से ही ऊर्ध्वगमन करने वाले, जो इन्द्रिय मति ज्ञानावरण के क्षयोशम से होने वाले, द्रव्यमन भाव मन से रहित और जिसका मूल कारण अर्हंत दशा है। तथा आकाश के समान जो अमूर्तिक है, निर्मल है, आकाश के समान जिनका ज्ञान व्यापक है। उन परमपूज्य सिद्ध समूह को दूध अन्न तथा घृत से बने हुए रस पूर्ण नाना व्यंजनों से सर्वदा पूजन करता हूँ।

ओं ह्रीं सिद्ध यंत्र के स्वामी सिद्ध परमेष्ठी को क्षुधारोग के निवारण हेतु नैवेद्य समर्पित करता हूँ।

आतङ्क-शोक-भयरोग-मद प्रशान्तं
निर्द्वन्द-भाव-धरणं महिमा-निवेशम्।
कर्पूर-वर्ति-बहुभिः कनकावदातै-
र्दीपैर्यजे रुचिवरैर्वरसिद्धचक्रम् ॥६ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्व० स्वाहा ॥६ ॥

संताप अथवा उदासी शोक भय रोग मान से रहित, निर्द्वन्दता के धारक, कलहकारी परिणामों से रहित, या दुविधा से रहित, निश्चल तथा सर्वोत्तम महिमा बड़प्पन के घर स्वरूप सिद्ध समूह को मैं स्वर्ग के बने अनेक कपूर की वत्तियों सहित दैदीप्यमान दीपकों द्वारा अर्चना करता हूँ।

ओं ह्रीं सिद्ध यंत्र के स्वामी सिद्ध परमेष्ठि को मोह रूपी अंधकार के विनाश करने के लिए दीपक समर्पित करता हूं।

पश्यन्समस्त-भुवनं युगपन्नितान्तं
त्रैकाल्य-वस्तु-विषये निविड-प्रदीपम्।
सद्द्रव्यगन्ध-घनसार-विमिश्रितानां
धूपैर्यजे परिमलैर्वर-सिद्धचक्रम्॥७॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा॥७॥

केवल ज्ञान द्वारा समस्त संसार को अच्छी तरह एक साथ देखने वाले तथा भूत भविष्यत तथा वर्तमान कालवर्ती पदार्थों को तथा उनकी पर्यायों को प्रकाशित करने में दैदीप्यमान दीपक के समान सर्वोत्तम सिद्ध संघ को मैं प्रकाशित कपूर से सहित चंदन अगर आदि उत्तमतथा सुगंधित पदार्थों की सुगंधित धूप द्वारा पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं सिद्ध यंत्र के स्वामी सिद्ध परमेष्ठी को आठ कर्मों के नाश करने के लिए धूप समर्पित करता हूं।

सिद्धासुरादिपति-यक्ष-नरेन्द्रचक्रै-
र्ध्येयं शिवं सकल-भव्य-जनैः सुवन्द्यम्।
नारङ्गि-पूग-कदली-फलनारिकेलैः
सोऽहं यजे वरफलैर्वरसिद्ध चक्रम्॥८॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा॥८॥

व्यन्तर देव असुर कुमार आदि देवों के इन्द्रों के तथा यक्ष नरपतियों के द्वारा ध्यान करने योग्य कल्याण स्वरूप तथा समस्त भव्य पुरुषों द्वारा वन्दनीय सिद्धों के संघ की नारंगी, सुपारी, केला तथा नारियल आदि उत्तम फलों के द्वारा पूजन करता हूँ।

ओं ह्रीं सिद्ध चक्र के स्वामी सिद्ध परमेष्ठी को मोक्षरूपी फल को प्राप्त करने के लिए फल समर्पित करता हूं।

गन्धाढ्यं सुपयो मधुव्रत-गणैः सङ्गं वरं चन्दनं,
पुष्पौघं विमलं सदक्षत-चयं रम्यं चरुं दीपकम्।
धूपं गन्धयुतं ददामि विविधं श्रेष्ठं फलं लब्धये,
सिद्धानां युगपत्क्रमाय विमलं सेनोत्तरं वाञ्छितम्।९।

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥९॥

सुगंधित निर्मल जल, जिसकी सुगंधी से भौरें आ गये हैं ऐसा चंदन, उज्ज्वल अक्षत का पुंज, पुष्प, मनोहर नैवेद्य, दीपक तथा सुगंधित धूप, एवं उत्तम फलों को एक साथ मिलाकर अर्घ्य बनाकर, जन्म मरण राग द्वेषादि दोषों से रहित निर्मल, कर्म बंधनादि रहित, अथवा चक्रवर्ति इन्द्रादि पद से भी उत्तम अभीष्टफल पाने के लिय सिद्धों के चरणों में समर्पित करता हूं।

ओं ह्रीं सिद्ध चक्र के स्वामी सिद्ध परमेष्ठी को अनर्घ्य पद की प्राप्ति हेतु अर्घ्य समर्पण करता हूं।

ज्ञानोपयोगविमलं विशदात्मरूपं
सूक्ष्म-स्वभाव-परमं यदनन्तवीर्यम्।
कर्मौघ-कक्ष-दहनं सुख-शस्यबीजं
वन्दे सदा निरुपमं वर-सिद्धचक्रम्।१०।

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥१०॥

कषायों के क्षय हो जाने से जिसका ज्ञानोपयोग निर्मल है, समस्त कर्ममल के नष्ट हो जाने से जिसका आत्म स्वरूप परम निर्मल है। जो औदारिक कार्माणादि शरीरों से रहित होने के कारण परम सूक्ष्म हैं, वीर्य घातक अंतराय कर्म के नाश हो जाने से अनंतबल के धारक हैं कर्म समूह को जलाने वाले तथा सुखरूप धान्य को उत्पन्न करने में बीज के समान है। ऐसे अनुपम गुणधारी सिद्धों के समूह को मैं सर्वदा नमस्कार करता हूं।

ओं ह्रीं सिद्ध चक्र के स्वामी सिद्ध परमेष्ठी को अनर्घ्य पद की प्राप्ति के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

त्रैलोक्येश्वर-वन्दनीय-चरणाः प्रापुः श्रियं शाश्वतीं
या नारायध्य निरुद्ध-चण्ड-मनसः सन्तोऽपि तीर्थंकरा।
सत्सम्यक्त्व-विबोध-वीर्य्य-विशदाऽव्याबाधताद्यैर्गुणै-
र्युक्तांस्तानिह तोष्टवीमि सततं सिद्धान् विशुद्धोदयान्।११।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)।

देवेन्द्र धरणेन्द्र चक्रवर्ति आदि से जिनके चरण पूजनीय है ऐसे प्रचंड मन को रोकने वाले तीर्थंकर भी जिनके आराधना करके नित्य लक्ष्मी को पा चुके हैं तथा जो क्षयिक सम्यकत्व अंनत ज्ञान अनंत वीर्य अव्यावाध आदि अनंत गुणों से विभूषित है। और जिनमें परम विशुद्धता का उदय हो गया है ऐसे सिद्धों का मैं सर्वदा बारंबार स्तवन करता हूँ।

(पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये)

हम जानते हैं रोज देखते भी हैं कि घर तो पशु-पक्षी सभी बना लेते हैं लेकिन मंदिर मनुष्य ही बना पाता है। मंदिर के विज्ञान से जो लोग परिचित हैं, और जो मंदिर की कला को जानते हैं, हम उनसे पूछे तो मालूम पड़ेगा कि मंदिर की हर चीज फिर चाहे वह मंदिर का गुम्बज हो, चाहे मंदिर के छोटे-छोटे कलात्मक खिड़की-दरवाजे हों, चाहे मंदिर के प्रवेश-द्वार पर लगे हुए विशाल घंटे हों, या कि भगवान के सम्मुख समर्पित किये जाने वाले, दीप धूप और अष्ट द्रव्य हों सबका संबंध कलात्मकता और गहरी वैज्ञानिक सूझबूझ से है।

(१०८ मुनि क्षमा सागर जी)

अथ जयमाला

विराग सनातन शांत निरंश, निरामय निर्भय निर्मल हंस।
सुधाम विबोध-निधान विमोह प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह ।१ ।

राग रहित हे वीतराग, हे सनातन (बहुत पुरातन) उद्वेग द्वेष क्रोधादि रहित होने से वास्तविक शांति को प्राप्त करने वाले हे शान्त, अंश कल्पना सेरहित होने के कारण हे निरंश, शारीरिक मानसिक रोगों से रहित हे निरामय मरणादि भयों से रहित हने के कारण हे निर्भय, हे निर्मल, तेज के निवास स्थान हे निर्मल ज्ञान के धारक मोहरहित होने से विमोह ऐसे परम सिद्धों के समूह मुझ पर प्रसन्न होइये ।

विदूरित-संसृति-भाव निरंग, समामृत-पूरित देव विसंग।
अबंध कषाय-विहीन विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह ।२ ।

हे सांसारिक भावों को दूर करने वाले, हे अशरीर, हे समता रूपी अमृत से परिपूर्ण देव, हे अंतरंग वहिरंग संगरहित विसंग, हे कर्म बंधन से विनिर्मुक्त, हे कषाय रहित, हे विमोह विशुद्ध सिद्धों के समूह हम पर प्रसन्न होइये ।

निवारित-दुष्कृतकर्म-विपाश, सदामल-केवल-केलि-निवास।
भवोदधि-पारग शांत विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध समूह ।३ ।

हे दुष्कर्म के नाशक, हे कर्म जंजाल से रहित, हे निर्मल केवल ज्ञान के क्रीड़ा स्थल, संसार के पारगामी, हे परम शान्त, हे निर्मोह पवित्र सिद्धों के समूह हम पर प्रसन्न होइये ।

अनंत-सुखामृत-सागर-धीर, कलंक-रजो-मल-भूरि-समीर।
विखण्डित-कामविराम-विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध समूह ।४ ।

हे अनंत सुख रूपी अमृत के समुद्र, हे धीर कलंक रूपी धूलि को उड़ाने के लिए प्रबल वायु, हे काम विकार को खंडित करने वाले, हे कर्मों के विराम स्थल, हे निर्मोह पवित्र सिद्धों के समूह हम पर प्रसन्न होइये ।

विकार विवर्जित तर्जितशोक, विबोध-सुनेत्र-विलोकित- लोक।
विहार विराव विरंग विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ।५ ।

कर्म जन्य शुभ अशुभ विकारों से रहित, हे शोक रहित, हे केवल ज्ञान रूपी नेत्र से सम्पूर्ण लोक को देखने वाले, कर्मादिक द्वारा हरण से रहित, शब्द रहित तथा रंग से रहित ऐसे हे मोह रहित परम विशुद्ध सिद्धों के समूह हम पर प्रसन्नता लाओ।

रजोमल-खेद विमुक्त विगात्र, निरंतर नित्य सुखामृत-पात्र।
सुदर्शन राजित नाथ विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह।६।

दोष आवरण तथा खेदरहित, हे अशरीर, हे निरंतर समय के अन्तररहित सुख रूपी अमृत के पात्र, हे सम्यक दर्शन या केवल दर्शन से शोभायमान हे संसार के स्वामी हे मोह रहित परम पवित्रता युक्त सिद्धों के समूह हम पर प्रसन्नता धारण कीजिए।

नरामर-वंदित निर्मल-भाव, अनंत-मुनीश्वर पूज्य विहाव।
सदोदय विश्व महेश विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह।७।

हे मनुष्य और देवों से पूजनीय हे समस्त दोषों से मुक्त होने के कारण निर्मल भाव वाले, हे अनंत मुनीश्वरों से पूज्य हे विकार रहित, हे सर्वदा उदय स्वरूप, हे समस्त संसार के महा स्वामिन् हे परम पवित्र सिद्धों के समूह मुझ पर प्रसन्नता धारण कीजिए।

विदंभ वितृष्ण विदोष विनिद्र, परापरशंकर सार वितेंद्र।
विकोप विरूप विशंक विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह।८।

हे कपट रहित, हे तृष्णा रहित, द्वेषादिक दोष रहित, हे निद्रा रहित, हे शंकर अर्थात् महाअशान्ति का कारण अधर्म का नाश कर धर्म रूपी शान्ति को करने वाले, हे आलस्य रहित, हे कोप रहित, हे रूप रहित, हे शंका रहित, हे मोह रहित विशुद्ध सिद्धों के समूह हम पर प्रसन्न होइये।

जरा-मरणोज्झित-वीत-विहार, विचिंतित निर्मल निरहंकार।
अचिन्त्य-चरित्र विदर्प विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह।९।

हे वृद्धावस्था तथा मरणदशा को नाश करने वाले हे गमन रहित, चिन्तारहित, हे अज्ञानादिक आत्मीय मैल से रहित, हे अहंकार रहित, अचिंत्य चारित्र के धारक, हे दर्प अहंकार रहित, हे मोह रहित, परम पवित्र सिद्धों के संघ मुझ पर प्रसन्नता धारण कीजिए।

विवर्ण विगंध विमान विलोभ, विमाय विकाय विशब्द विशोभ
अनाकुल केवल सर्व विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह।१०।

हे श्वेत पीतादिक वर्ण रहित, हे गंध रहित, हे छोटे बड़े हल्के भारी आदि परिमान से रहित, हे लोभ रहित, हे माया रहित, हे शरीर रहित, हे शब्द रहित, हे कृत्रिम रहित, हे आकुलता रहित, सबका हित करने वाले मोह रहित परम पवित्र सिद्धों के समूह हम पर प्रसन्नता धारण कीजिए।

घता

असम-समसयारं चारु-चैतन्य चिन्हं,
पर-परणति-मुक्तं पद्मनंदीन्द्र-वन्द्यम्।
निखिल-गुण-निकेतं सिद्धचक्रं विशुद्धं,
स्मरति नमति यो वा स्तौति सोऽभ्येति मुक्तिम्।१।

ओं ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

इस प्रकार जो मनुष्य असम या अनुपम अर्थात् संसारी आत्माओं से भिन्न समय सार स्वरूप, सुन्दर निर्मल चेतना जिनका चिन्ह है जड़ द्रव्य के परिणमन से रहित तथा पद्मनंदी देव मुनि द्वारा वन्दनीय एवं समस्त गुणों के घर रूप सिद्धचक्र को जो पुरुष स्मरण करता है नमस्कार करता है तथा उनका स्तवन करता है वह पुरुष मोक्ष को पा लेता है।

ओं ह्रीं सिद्ध चक्र के स्वामी सिद्ध परमेष्ठी को अनर्घ्य पद की प्राप्ति हेतु अर्घ्य समर्पण करता हूँ।

अडिल्ल छंद

अविनाशी अविकार परम-रस-धाम हो,
समाधान सरवंग सहज अभिराम हो।
शुद्धबुद्ध अविरुद्ध अनादि अनंत हो,
जगत-शिरोमणि सिद्ध सदा जयवंत हो।१।
ध्यान अग्निकर कर्म कलंक सबै दहे,
नित्य निरंजनदेव स्वरूपी है रहे।

ज्ञायक के आकार ममत्व निवारकैं।
सो परमातम सिद्ध नमूँ सिर नायकैं॥२॥
अविचल ज्ञान प्रकाशते, गुण अनन्त की खान।
ध्यान धरैं सो पाइए, परम सिद्ध भगवान॥३॥
अविनाशी आनन्द मय, गुण पूरण भगवान।
शक्ति हिये परमात्मा, सकल पदारथ ज्ञान॥४॥

इत्याशीर्वाद

हे भगवान आप अविनाशी अविकार अनुपम सुख के स्थान मोक्ष स्थान में रहने वाले सर्वज्ञ तथा स्वाभाविक गुणों में रमण करने वाले हो और निर्मल ज्ञानधारी आत्मिक गुणों के अनुकूल तथा अनादि और अनंत हैं हे संसार के शिरोमणि सिद्ध भगवान आप की सदा जय होवे।

जिन्होंने शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि से समस्त कर्म रूपी कलंक को जला दिया है तथा जो नित्य निरदोष देव रूप हो रहे हैं एवं जो मोह भाव को त्यागकर ज्ञान स्वरूप है उन सिद्ध परमात्मा को सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

जो निश्चल केवल ज्ञान से प्रकाशमान है तथा अनंत गुणों के खान स्वरूप है ऐसे पूज्यनीय सिद्ध भगवान को केवल ध्यान द्वारा ही पुरुष पा सकते हैं।

अविनाशी आनंद स्वरूप पूर्ण गुणों के समूह परमात्मा समस्त पदार्थों को जानने की शक्ति धारण करने वाले हैं।

(इत्याशीर्वाद)

गुम्बज से टकराकर गूंजती ओंकार ध्वनि, घंटे का धीमा-धीमा नाद, अभिषेक और पूजा के भाव-भीने स्वर सभी में वातावरण को पवित्र बनाने की सामर्थ्य छिपी है। सवाल यह है कि कौन कितना पा पाता है। कौन मंदिर में प्रवेश पाकर अपने आत्म प्रवेश का द्वार खोल पाता है।

(१०८ मुनि क्षमा सागर जी)

समुच्चय चौबीसी जिनपूजा

वृषभ अजित संभव अभिनन्दन, सुमति पद्म सुपार्श्व जिनराय।
चन्द पुहुप शीतल श्रेयांस नमि, वासुपूज पूजित सुरराय॥
विमल अनंत धरम जस उज्ज्वल, शांतिकुंथु अर मल्लि मनाय।
मुनिसुब्रत नमि नेमि पार्श्व प्रभु, वर्द्धमान पद पुष्प चढ़ाय॥

ओं ह्रीं श्री वृषभादि-वीरान्त-चतुर्विंशति-जिनसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ओं ह्रीं श्री वृषभादि-वीरांत-चतुर्विंशतिजिनसमूह ! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। ओं ह्रीं श्रीवृषभादि-वीरांत-चतुर्विंशति-जिन समूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्। सन्निधिकरणं।

श्री वृषभनाथ, अजित नाथ, संभव नाथ, अभिनंदन नाथ, सुमति नाथ, पद्म प्रभ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, पुष्पदंत, शीतल नाथ, श्रेयांसनाथ, वासु पूज्य, विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत नाथ नमिनाथ, नेमीनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर, चौबीस जिन तीर्थंकर भगवान के चरण कमलों की पूजा इन्द्र करते हैं उन चौबीसों तीर्थंकरों के चरणों में पुष्प समर्पित करता हूँ।

ओं ह्रीं वृषभ नाथ से महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकर यहाँ आइये आइये

ओं ह्रीं वृषभनाथ से महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकर यहाँ ठहरिये-ठहरिये।

ओं ह्रीं वृषभनाथ से महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकर यहाँ मेरे समीप होइये होइये।

मुनिमन सम उज्ज्वल नीर, प्रासुक गन्ध भरा।
भरि कनक कटोरी नीर, दीनी धार धरा॥
चौबीसों श्री जिन चन्द, आनन्द कन्द सही।
पद-जजत हरत भवफन्द, पावत मोक्ष मही॥१॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादि-वीरांतेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्व०॥

निर्ग्रन्थ मुनि महाराज के मन के समान उज्ज्वल पवित्र प्रासुक एवं सुगंधित जल सोने की कटोरियो में भरकर जिनेन्द्र भगवान के समक्ष जल की धार देता हूँ। चौबीसों तीर्थंकर जिनेन्द्र देव आनंद के भंडार है इनके चरण कमलों की पूजन भक्ति करने से संसार से छुटकारा मिलता है और मोक्षसुख की प्राप्ति होती है।

ओं ह्रीं वृषभनाथ से महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों के लिए जन्म जरा मृत्यु के नाश करने को जल समर्पित करता हूँ।

गोशीर कपूर मिलाय, केशर रंग भरी।
जिन चरनन देत चढ़ाय, भव आताप हरी ॥ चौ० २ ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादि-वीरांतेभ्यो भवा-ताप-विनाशनाय चन्दनं निर्व० ॥

गोशीर चन्दन को कपूर और केशर के साथ घिसकर, संसार ताप को नष्ट करने के लिए चौबीसो भगवान के चरण कमलों में चन्दन समर्पित करता हूँ। चौबीसों तीर्थंकर भगवान आनंद के भंडार हैं इनके चरणों की पूजन भक्ति करने से संसार से छुटकारा मिलता है और मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है।

ओं ह्रीं श्री वृषभ नाथ से महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों के लिए संसार ताप के नाश करने को चन्दन समर्पित करता हूँ।

तंदुल सित सोम समान, सुन्दर अनियारे।
मुकताफल की उनमान, पुञ्ज धरौं प्यारे ॥ चौ० ३ ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्व० ॥

मोतियों के समान चमकदार चन्द्रमा के समान सफेद उज्ज्वल सुन्दर अनुपम अक्षतों (चावलों) के पुन्ज जिनेन्द्र भगवान के चरणों में चढ़ाता हूँ। चौबीसों तीर्थंकर भगवान आनंद के भंडार है इनके चरण कमलों की पूजन भक्ति करने से संसार से छुटकारा मिलता है और मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है।

ओं ह्रीं श्री वृषभादि महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों के लिए अक्षय पद की प्राप्ति के लिए अक्षत समर्पित करता हूँ।

वरकंज कदंब करंड, सुमन सुगंध भरे।
जिन अग्र धरौं गुणमंड, काम-कलंक हरे ।।चौ० ४ ।।

ओं ह्रीं वृषभादि-वीरांतेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्व० ॥

श्रेष्ठ पुष्प, कमल कदम्ब आदि सुगंधित पुष्पों के समूह पिटारों में रखकर काम दाह के नष्ट करने को गुणों के समूह जिनेन्द्र भगवान के समक्ष चढ़ाता हूँ। चौबीसों तीर्थंकर भगवान आनंद के भंडार हैं इनके चरण कमलों की पूजन भक्ति संसार से छुटाकर मोक्ष सुख देने वाली है।

ओं ह्रीं श्री वृषभनाथ से महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों के लिए काम दाह के नाश करने को पुष्प समर्पित करता हूँ।

मन मोदन मोदक आदि, सुन्दर सद्य बने।
रसपूरित प्रासुक स्वाद, जजत क्षुधादि हने ।।चौ०५ ।।

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्व० ॥

मन को आनंदित करने वाले मोदक आदि सुन्दर ताजे रसीले प्रासुक सुस्वादु पकवानों से क्षुधा की वेदना मिटाने के लिए जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता हूँ। चौबीसों तीर्थंकर भगवान आनंद के भंडार है इनके चरण कमलों की पूजन भक्ति संसार से छुटाकर मोक्ष सुख को देने वाली है।

ओं ह्रीं श्री वृषभनाथ से महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों के लिए क्षुधा की वेदना मिटाने के लिए नैवेद्य समर्पित करता हूँ।

तमखंडन दीप जगाय, धारों तुम आगे।
सब तिमिर मोह क्षय जाय, ज्ञानकला जागे ।।चौ०६ ।।

ओं ह्रीं श्रीवृषभादि-वीरांतेभ्यो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं,॥

सम्पूर्ण मोह रूपी अन्धकार का नाश कर केवल ज्ञान प्रकटाने के लिए अन्धकार को दूर करने वाला दीपक आपके चरणों में चढ़ाता हूँ। चौबीसों तीर्थंकर भगवान आनंद के भंडार हैं इनके चरण कमलों की पूजन भक्ति संसार से छुटाकर मोक्ष सुख को देने वाली है।

ओं ह्रीं श्री वृषभनाथ से महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों के लिए मोहरूपी अंधकार मिटाने के लिए दीपक समर्पित करता हूँ।

दशगंध हुताशन मांहि, हे प्रभु खेवत हों।
मिस धूम करम जरि जांहि, तुम पद सेवत हों॥ चौ० ७।

ओं ह्रीं श्रीवृषभादि-वीरांतेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामी० ॥स्वाहा॥

हे भगवान् दशांगी धूप अग्नि में जला रहा हूँ जिससे हमारे कर्म भी धूप के समान जलकर नष्ट हो जायें इसलिए धूप से आपके चरणों की पूजन करता हूँ। चौबीसों तीर्थंकर आनंद के भंडार है इनके चरण कमलों की पूजन भक्ति संसार से छुटाकर मोक्ष सुख को देने वाली है।

ओं ह्रीं श्री वृषभनाथ से महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों के लिए आठ कर्मों के नाश करने को धूप समर्पित करता हूँ।

शुचि-पक्व-सरस-फल सार, सब ऋतु के ल्यायो।
देखत दृग मनको प्यार, पूजत सुख पायो॥ चौ० ८॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादि-वीरांतेभ्यो मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामी० ॥स्वाहा॥

शुचि अर्थात् शुद्ध (अचित्त) पके हुए रसवान सब ऋतुओं के उत्कृष्ट फल जो आंखों और मन को प्यारे लगने वाले हैं उनसे सच्चे सुख की प्राप्ति के लिए जिनेन्द्र भगवान की पूजन करता हूँ। चौबीसों तीर्थंकर आनंद के भंडार है इनके चरण कमलों की पूजन भक्ति संसार से छुटाकर मोक्ष सुख को देने वाली है।

ओं ह्री श्रीं वृषभादि महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों के लिए मोक्षरूपी फल की प्राप्ति को फल समर्पित करता हूँ।

जल फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ करों।
तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों॥
चौबीसौं श्रीजिनचंद, आनन्दकंद सही।
पदजजत हरत भवफंद, पावत मोक्ष मही॥९॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्योऽनर्घ-पदप्राप्तये अर्घं।

जल फल आदि आठों पवित्र उत्कृष्ट द्रव्यों से अर्घ बनाकर इसे संसार रूपी भव से पार होकर मुक्ति प्राप्त करने के लिए संसार से पार करने वाले जिनेन्द्र भगवान के चरणों में चढ़ाता हूँ। चौबीसों तीर्थंकर आनंद के भंडार है इनके चरण कमलों की पूजन भक्ति करने से संसार से छुटकारा मिलता है और मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है।

ओं ह्रीं श्री वृषभ आदि महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों के लिए अनर्घ पद की प्राप्ति को अर्घ समर्पित करता हूँ।

जयमाला

श्रीमत तीरथनाथ पद, माथ नाय हितहेत।
गाऊं गुणमाला अबै, अजर अमर पद देत ॥१ ॥

अन्तरंग और बहिरंग लक्ष्मी के स्वामी तीर्थंकर पद को प्राप्त करने वाले भगवान के चरणों में अपने कल्याण के लिए सिर नवाता हूँ। और आपके गुणों की स्तुति करता हूँ जो अजर अमर पद देने वाले हैं।

छन्द धत्तानन्द।

जय भवतम भंजन जनमनकंजन, रंजन दिनमनि स्वच्छकरा।
शिव मग परकासक, अरिगण नाशक चौबीसों जिनराज वरा।२।

भव रूपी अंधकार को नष्ट करने वाले, भव्य जीवों के मन रूपी कमल को विकसित करने और कर्म रूपी मैल को नाश करने के लिए आप सूर्य के समान हैं हे श्रेष्ठ चौबीसों जिनेन्द्र देव आप मोक्ष मार्ग को प्रकाशित करने वाले हो और सभी शत्रुओं को नाश करने वाले हो।आपकी जय हो।

छन्द पद्धरी।

जयरिषभदेव ऋषिगन नमंत। जयअजित जीतवसुअरि तुरंत।
जय संभव भवभय करत चूर। जय अभिनंदन आनंदपूर।३।
जय सुमति सुमतिदायक दयाल। जय पद्म पद्मदुति तनरसाल
जय जय सुपास भवपास नाश। जयचंद चंदतनदुति प्रकाश।४।
जय पुष्पदंत दुतिदंत सेन। जय शीतल शीतल गुननिकेत।
जय श्रेयनाथ नुतसहसभुज्ज। जय वासवपूजित वासुपुज्ज।५।

श्री वृषभनाथ भगवान जयवंत हो जिन्हें ऋषीगण नमस्कार करते हैं श्री अजितनाथ भगवान जयवंत हो जिन्होंने क्षणमात्र में आठों शत्रुओं को जीत लिया है। संसार के भय को नाश करने वाले संभव नाथ भगवान जयवंत हो। आनंद को देने वाले भगवान अभिनंदन नाथ जयवंत हो।(उत्तम ज्ञान) सुमति को देने वाले दयालु भगवान श्री सुमति नाथ जयवंत हो। जिनके शरीर की कान्ति कमल के

समान है उन पद्म प्रभु भगवान की जय हो। भव रूपी पाश बंधन को नाश करने वाले सुपार्श्वनाथ भगवान की जय हो जिनके शरीर की कान्ति चन्द्रमा के प्रकाश के समान है उन चन्द्रप्रभ भगवान की जय हो जिनके दाँतों की पंक्ति श्वेत आभावान है उन पुष्प दंत भगवान की जय हो जो सुख देने वाले शीतल गुणों के निकेतन अर्थात् घर हैं उन शीतल नाथ भगवान की जय हो जिनके लिए हजार भुजाओं वाले इन्द्र भी नमस्कार करते हैं उन श्रेय नाथ भगवान की जय हो इन्द्रों द्वारा पूजित वासु पूज्य भगवान की जय हो।

जय विमल विमलपददेनहार। जय जय अनंत गुनगन अपार।
जय धर्म धर्म शिव शर्म देत। जय शांति शांति पुष्टी करेत।६।

दोषों से रहित मोक्षपद को देने वाले विमल नाथ भगवान की जय हो अनंत गुणों के भंडार श्री अनंत नाथ भगवान की जय हो मोक्ष सुख को देने वाले धर्मनाथ भगवान की जय हो आत्माओं में शान्ति गुण को पुष्ट करने वाले शान्ति नाथ भगवान की जय हो।

जय कुंथु कुंथुआदिक रखेय। जयअर जिनवसुअरि छयकरेय।
जय मल्लि मल्ल हतमोहमल्ल। जय मुनिसुव्रत व्रतशल्लदल्ल।७।
जय नमि नित वासवनुत सपेम। जय नेमिनाथ वृषचक्रनेम।
जय पारसनाथ अनाथ नाथ। जय वर्द्धमान शिवनगर साथ।८।

चींटी आदि छोटे जीवों की रक्षा करने वाले कुन्थु नाथ भगवान की जय हो आठ कर्म रूपी शत्रुओं को नष्ट करने वाले अरनाथ भगवान की जय हो। जिन्होंने मोह रूपी मल्ल को नाश कर दिया है उन मल्लिनाथ भगवान की जय हो जिन्होंने शल्यों का दमन कर दिया है उन मुनिसुव्रत नाथ भगवान की जय हो स्नेह सहित इन्द्र जिन्हें सिर नवाते हैं उन नमिनाथ भगवान की जय हो। धर्म चक्र के स्वामी नेमी नाथ भगवान की जय हो अनाथों को सनाथ करने वाले पार्श्वनाथ भगवान जयवंत हो मोक्ष नगर को देने वाले उत्तम साथी वर्धमान भगवान की जय हो।

छन्द घत्तानन्द।

चौबीस जिनंदा आनंदकंदा, पापनिकंदा सुखकारी।
तिनपद जुगचंदा उदय अमंदा, वासव-वंदा हितकारी।१।

ओं ह्रीं श्रवृषभादि-चतुर्विंशतिजिनेभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

चौबीस जिनेन्द्र भगवान आनंद के भंडार, पाप के नाशक और सुख को देने वाले हैं उनके युगल चरण रूपी चन्द्रमा जो कभी मंद नहीं होते इन्द्रोद्वारा वंदनीय हैं और भव्य जीवों का हित करने वाले हैं।

ओं ह्रीं श्री वृषभादि महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों के लिए अनर्घपद प्राप्त करने को अर्घ समर्पित करता हूँ।

सोरठा।

भुक्ति मुक्ति दातार, चौबीसौं जिनराजवर।
तिनपद मनवचधार, जो पूजै सो शिव लहै॥१॥

इत्याशीर्वादः

हे चौबीसों जिनेन्द्र भगवान आपकी भक्ति स्वर्गादिक सुख और मोक्ष सुख को देने वाली है जो आपके चरण कमलों को मन वचन काय से हृदय में धारण कर पूजन करता है वह मोक्ष लक्ष्मी को पाता है।

इत्याशीर्वाद।

मंदिर में विराजे भगवान की वीतराग छवि को देखकर अपने रागद्वेष के बंधन को क्षणभर के लिए छिन्न-भिन्न कर देना और अहंकार को गलाकर अपने आत्म-स्वरूप में लीन होने के लिए स्वयं को भगवान के चरणों में समर्पित करते जाना ही "जिन मंदिर" की उपलब्धि हैं।

(१०८ मुनि क्षमा सागर जी)

श्री आदिनाथ जिन पूजा

नाभिराय मरु देवी के नंदन, आदिनाथ स्वामी महाराज ।।
सर्वारथ सिद्धितै आप पधारे, मध्यम लोक मांहि जिनराज ।।
इन्द्र देव सब मिलकर आये, जन्म महोत्सव करने काज ।।
आह्वानन सब विधि मिल करके, अपने कर पूजें प्रभु पांय ।।

ओं ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ओं ह्री श्री आदिनाथ जिनेनद्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्
ओं ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भवभव वषट् सन्निधिकरणम्

भावार्थ—सर्वार्थ सिद्धि से चय करके मध्य लोक में चौदवें कुलकर श्री नाभिराय और मरु देवी के पुत्र श्री आदिनाथ ने जन्म लिया । जन्म के समय सभी इन्द्र मिलकर आये और जन्म महोत्सव मनाया उन आदि प्रभु का यहाँ, आह्वानन, स्थापन और सन्निधीकरण करके अपने हाथों से आदिनाथ भगवान के चरणों की पूजा करता हूँ ।

ओं ह्री श्री आदिनाथ भगवान ! यहाँ आइये आइये । आह्वानम्

ओं ह्री श्री आदिनाथ-भगवान ! यहाँ ठहरिये ठहरिये । स्थापनम्

ओं ह्रीं श्री आदिनाथ भगवान ! यहाँ मेरे समीप विराजिए विराजिए । सन्निधिकरणम्

क्षीरोदधि को उज्ज्वल जल ले, श्री जिनवर पद पूजन जाय ।
जन्म जरा दुःख मेटन कारन, ल्याय चढ़ाऊँ प्रभु जी के पाय ।।
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, वलि वलि जाऊँ मन वच काय ।।
हो करुणा निधि भव दुःख मेटो, या तैं मैं पूजों प्रभु पाय ।।

ओं ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वा० स्वाहा ।

भावार्थ—क्षीर सागर का उज्ज्वल निर्मल जल लेकर, आदिनाथ जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता हूँ । जनम, बुढ़ापा और मृत्यु को नष्ट करने के लिए यंह जल भगवान के चरणों में चढ़ाता हूँ । श्री आदिनाथ भगवान के चरण रूपी

कमलों पर मैं मन वचन काय से न्यौछावर होता हूँ। हे दया के भंडार आप भव के दुःखों को नष्ट करने वाले हो इसलिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं श्री आदिनाथ भगवान के लिए जन्मजरा और मृत्यु के नाश करने को जल समर्पित करता हूँ।

मलियागिर चन्दन दाह निकंदन, कंचन झारी में भरल्याय।
श्री जी के चरण चढ़ाओ भविजन भव आताप तुरत मिट जाय।।
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर वलि वलि जाऊँ मनवचकाय
हो करुणा निधि भव दुःख मेटो, यातै में पूजो प्रभु पाय।

ओं ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय संसार ताप विनाशनाय चंदनं निर्वा० स्वाहा।

भावार्थ—मलयागिर का चंदन शारीरिक ताप को नाश करने वाला है उस चंदन को सोने की झारी में भरकर लाया हूँ। हे भव्य जीव वह चन्दन श्री आदिनाथ के चरणों में चढ़ावो हैं जिससे संसार का ताप शीघ्र नष्ट हो जाय। श्री आदिनाथ भगवान के चरण रूपी कमलों पर, मैं मन वचन काय से न्योछावर होता हूँ। हे दया के भंडार आप भव के दुःखों को नष्ट करने वाले हो इसलिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं श्री आदिनाथ भगवान के लिए संसार ताप के नाश करने को चंदन समर्पित करता हूँ।

शुभ शालि अखंडित सौरभ मंडित, प्रासुक जलसों धोकर ल्याय।
श्री जी के चरण चढाओ भविजन अक्षय पद को तुरत उपाय।।
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर बलि बलि जाऊँ मन वच काय।
हो करुणा निधि भव दुःख मेटो यातै मैं पूजों प्रभु पाय।।

ओं ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अक्षय पद प्राप्तये अक्षतान् निर्वा. स्वाहा।

भावार्थ—सुन्दर, अखंडित, सुंगध से सहित चाँवल प्रासुक (गर्म जल से) से धोकर, हे भव्य जीव श्री आदिनाथ के चरणों में अक्षत लाकर चढ़ाओ जिससे अक्षय पद की प्राप्ति का उपाय शीघ्र प्राप्त हो जाय। श्री आदिनाथ भगवान के चरण रूपी कमलों पर मैं मन वचन काय से न्योछावर होता हूँ। हे दया के भंडार आप भव भव के दुःखों को नष्ट करने वाले हो इसलिए आपके चरणों की पूजा

करता हूँ ।

ओं ह्रीं श्री आदिनाथ भगवान के लिए अक्षय पद की प्राप्ति को अक्षत समर्पित करता हूँ।

कमल केतकी वेल चमेली श्री गुलाब के पुष्प मंगाय।
श्री जी के चरण चढ़ाओ भविजन, काम वाण तुरत नसि जाय॥
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर वलि वलि जाऊँ मन वचकाय
हो करुणा निधि भव दुःख मेटो यातै मैं पूजों प्रभु पाय॥

ओं ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय काम वाण विध्वंशनाय पुष्पं निर्वा० स्वाहा।

भावार्थ—कमल, केतकी, वेला, चमेली, गुलाब आदि पुष्पों को मंगाकर हे भव्यजीव श्री आदिनाथ भगवान के चरणों में चढ़ाओ है जिससे काम की वेदना शीघ्र नष्ट हो जाय। श्री आदिनाथ भगवान के चरण रूपी कमलों पर मैं मन वचन और काय से न्यौछावर होता हूँ, हे दया के भंडार आप भव के दुःखों को नष्ट करने वाले हो इसलिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं श्री आदिनाथ भगवान के लिए काम की वेदना नष्ट करने को पुष्प समर्पित करता हूँ।

नेवज लीना तुरत रस भीना श्री जिनवर आगे धरवाय।
थाल भराऊँ क्षुधा नसाऊँ, जिन गुण गावत मन हरषाय॥
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर बलिबलि जाऊँ मन वचकाय।
हो करुणानिधि भव दुख मेटो यातै मैं पूजों प्रभु पाय॥

भावार्थ—तुरन्त का बनाया हुआ रस युक्त नैवेद्य लेकर थाली भरकर, श्री आदिनाथ भगवान के आगे चढ़ाकर, क्षुधा का नाश करने के लिए हर्षित मन होकर हे भगवान आपके गुणों का गान करता हूँ। श्री आदिनाथ भगवान के चरण रूपी कमलों पर मन वचन काय से न्यौछावर होता हूँ हे दया के भंडार आप भव भव के दुःखों को नष्ट करने वाले हो इसलिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं श्री आदिनाथ भगवान के लिए भूख की वेदना मिटाने को नैवेद्य समर्पित करता हूँ।

जगमग जगमग होत दशौं दिस ज्योति रही मंदिर में छाय।
श्री जी के सन्मुख करत आरती मोह तिमर नासे दुखदाय ॥
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, वलि वलि जाऊँ मन वच काय ॥
हो करुणा निधि भव दुःख मेटो, यातै मैं पूजूं प्रभु पाय ॥
ओं ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशाय दीपं निर्वा० स्वाहा ।

भावार्थ—दीपकों की जगमगाहट दसों दिशाओं को आलोकित करती है दीपकों की ज्योति मंदिर में भी अत्यन्त शोभायमान हो रही है ऐसे दीपकों से श्री आदिनाथ भगवान के सामने जाकर आरती करता हूँ जिससे दुख देने वाला मोह रूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है । श्री आदिनाथ भगवान के चरण रूपी कमलों पर मैं मन वचन काय से न्यौछावर होता हूँ हे दया के भंडार आप भव भव के दुःखों को नष्ट करने वाले हो इसलिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ ।

ओं ह्रीं श्री आदिनाथ भगवान के लिए मोह रूपी अंधकार को नष्ट करने को दीप समर्पित करता हूँ ।

अगर कपूर सुगंध मनोहर चंदन कूट सुगंध मिलाय।
श्री जी के सन्मुख खेय धूपायन कर्म जरे चहुँगति मिटि जाय
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर वलि वलि जाऊँ मन वच काय।
हो करुणा निधि भव दुःख मेटो, यातै मैं पूजूँ प्रभुपाय ॥
ओं ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अष्ट कर्म दहनाय धूपं निर्वा० स्वाहा ।

भावार्थ—सुंगधित अगर, कर्पूर मनोहारी सुंगधित चंदन मिलाकर कूट कर श्री आदिनाथ भगवान के सामने धूपदान में खेने से (जलाने से) अष्ट कर्म जलकर नष्ट हो जाते हैं और चारों गतियों का भ्रमण मिट जाता है ।

श्री आदिनाथ भगवान के चरण रूपी कमलों पर मैं मन वचन काय से न्यौछावर होता हूँ । हे दया के भंडार आप भव भव के दुःख नष्ट करने वाले हो इसलिये आपके चरणों की पूजा करता हूँ ।

ओं ह्री श्री आदिनाथ भगवान के लिए आठों कर्मों को जलाने के लिए धूप समर्पित करता हूँ ।

श्री फल और बादाम सुपारी केला आदि छुहारा ल्याय ॥
महामोक्ष फल पावन कारन ल्याय चढ़ाऊँ प्रभु जी के पाय ॥
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर वलि वलि जाऊँ मन वच काय ॥
हो करुणा निधि भव दुख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय ॥
ओं ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय मोक्ष फल प्राप्तये फलं निर्वा० स्वाहा ।

भावार्थ—नारियल, बादाम, सुपारी, केला, छुहारा आदि फल लाकर पवित्र मोक्ष रूपी महाफल की प्राप्ति के लिए श्री आदिनाथ भगवान के चरणों में चढ़ाता हूँ। श्री आदिनाथ भगवान के चरण रूपी कमलों पर मैं मन वचन काय से न्यौछावर होता हूँ। हे दया के भंडार आप भव भव के दुःखों को नष्ट करने वाले हो इसलिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं श्री आदिनाथ भगवान के लिए मोक्षरूपी फल को प्राप्त करने को फल समर्पित करता हूँ।

शुचि निर्मल नीरं गंध सुअक्षत पुष्प चरु ले मन हर्षाय।
दीप धूप फल अर्घ सु लेकर नाचत लाल मृदंग बजाय ॥
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर वलि वलि जाऊँ मन वचकाय।
हो करुणा निधि भव दुःख मेटो यातैं मैं पूजो प्रभु पाय ॥
ओं ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वा० स्वाहा ।

भावार्थ—शुद्ध निर्मल जल, चन्दन, अच्छे अक्षत, पुष्प नैवेद्य, दीप धूप फल अर्घ लेकर हर्षित मन से मृदंग आदि साज वाज बजा कर नृत्य करते हुए भगवान के चरणों में अर्घ चढ़ाता हूँ। एवं श्री आदिनाथ के चरण रूपी कमलों पर मैं मन वचन काय से न्यौछावर होता हूँ। हे दया के भंडार आप भव भव के दुःखों को नष्ट करने वाले हो इसलिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं श्री आदिनाथ भगवान के लिए अनर्घ पद प्राप्त करने को अर्घ समर्पित करता हूँ।

पंच कल्याणक अर्ध

सर्वारथ सिद्धितैं चये, मरु देवी उर आय।
दोज असित आषाढ़ की जजूँ तिहारे पांय॥

ओं ह्रीं आषाढ़ कृष्ण द्वितीयायां गर्भ कल्याणक प्राप्ताय श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वा० स्वाहा।

भावार्थ—आषाढ कृष्ण द्वितीया के दिन सर्वार्थसिद्धि नामक विमान से चय कर (आकर) माता मरुदेवी के गर्भ में आये हे भगवान आपके चरणों की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं आषाढ़ कृष्ण द्वितीया के दिन गर्भ कल्याणक प्राप्त करने वाले श्री आदिनाथ भगवान के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

चैतवदी नौमी दिना जन्म्यां श्री भगवान॥
सुरपति उत्सव अतिकरा मैं पूजौं धरिध्यान॥

ओं ह्रीं चैत्र कृष्ण नवम्यां जन्म कल्याणक प्राप्ताय श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वा० स्वाहा।

भावार्थ—चैत कृष्ण नवमी के दिन श्री आदिनाथ भगवान ने जन्म लिया, इन्द्रों ने आकर अत्यन्त मनोहारी उत्सव मनाया उन आदिनाथ भगवान का ध्यान धारण कर पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं चैत कृष्ण नवमी के दिन जन्म कल्याणक प्राप्त करने वाले श्री आदिनाथ भगवान के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

तृण वत् ऋधि सब छांडि के तप धार्यो वन जाय।
नौमी चैत्र असेत की जजूं तिहारे पांय॥

ओं ह्रीं चैत कृष्ण नवम्यां तपः कल्याणक प्राप्ताय श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वा० स्वाहा।

भावार्थ—चैत्र कृष्ण नवमी के दिन, सूखे तिनके की तरह समस्त ऋद्धियों को छोड़कर वन में जाकर तप धारण कर लिया था उन आदिनाथ भगवान के चरणों की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं चैत कृष्ण नवमी के दिन तप कल्याणक प्राप्त करनें वाले श्री आदिनाथ भगवान के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

फाल्गुन वदि एकादशी उपज्यो केवल ज्ञान
इन्द्रआय पूजा करी मैं पूजों यहथान ॥

ओं ह्रीं फाल्गुन कृष्ण एका दश्यां ज्ञान कल्याणक प्राप्ताय श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वा० स्वाहा।

भावार्थ—फाल्गुन कृष्ण ग्यारस के दिन केवल ज्ञान प्राप्त हुआ था तब इन्द्रों ने आकर पूजा की थी मैं उन आदिनाथ भगवान की यहाँ पूजन करता हूँ।

ओं ह्रीं फाल्गुन कृष्ण एकादशी के दिन केवल ज्ञान प्राप्त करने वाले श्री आदिनाथ भगवान के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

माघ चतुर्दशी कृष्ण की मोक्ष गये भगवान।
भवि जीवों को बोध के पहुँचे शिव पुरथान ॥

ओं ह्रीं माघ कृष्ण चतुर्दश्यां मोक्ष कल्याणक प्राप्ताय श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वा० स्वाहा।

भावार्थ—माघ कृष्ण चतुर्दशी के दिन मोक्ष कल्याणक प्राप्त करने वाले श्री आदिनाथ भगवान भव्य जीवों को संबोध कर अर्थात् उपदेश देकर मोक्ष रूपी स्थान को प्राप्त किया।

ओं ह्रीं माघ कृष्ण चतुर्दशी के दिन मोक्ष कल्याणक प्राप्त करने वाले श्री आदिनाथ भगवान के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

जयमाला

आदीश्वर महाराज मैं विनती तुमसे करूँ,
चारों गति के मांहि, मैं दुःख पायो सो सुनो।
अष्ट कर्म मैं एक लो यह दुष्ट महादुःख देत हो,
कबहूँ इतर निगोद में मोकूं पटकत करत अचेत हो ॥
म्हारी दीन तनीसुन वीनती ॥

भावार्थ—हे आदिनाथ भगवान में आपसे विनती कर रहा हूँ। चारों गतियों में मैंने जो दुःख उठाये है उन्हें आप सुनिये। ये कर्म आठ है, और मैं अकेला हूँ। ये दुष्ट बहुत भारी दुःख देते हैं ये कर्म कभी तो इतर निगोद में पटकते हैं और वहाँ अत्यन्त भयानक दुःख देते हैं जो असहनीय है हे आदिनाथ भगवान मुझ दीन की विनती सुनिये।

प्रभु कबहूँक पटक्यो नरक में जठे जीव महा दुख पाय हो
निष्ठुर निरदई नारकी जठे करत परस्पर घात हो
।।म्हारी दीन तनी सुन वीनती।।

भावार्थ—हे आदिनाथ भगवान ये कर्म कभी हमें नरक ले गये जहाँ जीव अत्यन्त भयानक दुख उठाते हैं अर्थात् दुःख भोगते है। वहाँ दयारहित कठोर ह्रदयी (निष्ठुर) नारकी आपस में एक दूसरे को मारते काटते रहते हैं हे आदिनाथ भगवान आप मुझ दीन की विनती सुनिए।

प्रभु नरकतणा दुःख अव कहूँ जठे करत परस्पर घात हो।
कोइयक बाँध्यो खंभस्यों, पापी दे मुद्गर की मार हो।
कोइयक काटें करोंतसों पापी अंगतणी दोई फाड़ हो।।
म्हारी दीन तनी सुन वीनती।

भावार्थ—हे आदिनाथ भगवान अब मैं नरक गति के दुःखों को कहता हूँ जहाँ नारकी आपस में मार काट करते हैं, कोई पापी नारकी किसी नारकी को खंभे से बांधकर मुद्गरों से पीटते हैं। कोई पापी नारकी किसी को करोत (आरी) से शरीर को फाड़कर दो टुकड़े कर देते हैं। हे भगवान मुझ दीन की विनती सुनिये।

प्रभु इह विधि दुख भुगत्या घणां, फिर गति पाई तिरियंच हो
हिरणा बकरा, बाछला पशु, दीन गरीब अनाथ हो।
पकड़ कसाई जाल में पापी काट काट तन खाय हो।
म्हार दीन तनी सुन वीनती।

भावार्थ—हे आदिनाथ भगवान इस प्रकार मैने नरक गति में बहुत दुःख भोगे और फिर तिर्यंञ्च गति प्राप्त कर हिरण, बकरा, बछड़ा आदि दीन, गरीब, एवं अनाथ पशु हुआ इन पशुओं को पकड़कर कसाई अपने जाल में फंसाकर उनके शरीर को काटकाटकर खाते हैं। हे भगवान मुझ दीन की प्रार्थना सुनिए।

प्रभु मैं ऊँट बलद भैंसा भयो, जापै ला दियो भार अपार हो।
नहिं चाल्यो जब गिर पस्यो पापी दे सोटन की मार हो।
म्हारी दीन तनी सुन वीनती।

भावार्थ—हे भगवान मैं ऊँट, बैल, भैंसा आदि हुआ इन पर क्षमता से अधिक भार लादा गया जिससे चला नहीं गया और गिर पड़ा जिससे पापी ने लाठी से बहुत पीटा, हे भगवान मुझ दीन की विनती सुनिए।

प्रभु कोइयक पुण्य संयोग सूं मैं तो पायो स्वर्ग निवास हो।
देवांगना संग रम रह्यो जठे भोगन को परकाश हो॥
म्हारी दीन तनी सुन विनती।

भावार्थ—हे भगवान किसी पुण्य के संयोग से देव गति प्राप्त कर स्वर्ग में जन्म लिया वहाँ देवांगनाओं के साथ रमण किया वहाँ भोग ही भोग है अतः भोगों में ही मग्न रहा हे भगवान मुझ दीन की विनती सुनिए।

प्रभु संग अप्सरा रम रह्यो कर कर अति अनुराग हो।
कबहूँ नंदन वनविषै, प्रभु कबहूँक वन गृह माहिं हो।
म्हारी दीन तनी सुन वीनती।

भावार्थ—हे भगवान अत्यन्त राग सहित अप्सराओं के साथ रमण किया कभी मेरु पर्वत स्थित नंदन वन में एवं हे भगवान कभी मनोहर वनों एवं कभी अपने निवास स्थानों में अप्सराओं के साथ रमण किया हे भगवान मुझ दीन की विनती सुनिए।

प्रभु यह विधि काल गमयाके, फिर माला गई मुरझाय हो
देव थिति सब घट गई, फिरउपज्यो सोच अपार हो
सोच करत तन खिर पड्यो, फिर उपज्यो गरभ में जाय हो।
म्हारी दीन तनी सुन वीनती।

भावार्थ—हे आदिनाथ भगवान इस प्रकार भोग भोगते हुए बहुत समय बिता दिया अन्त समय में गले में पड़ी माला मुरझा गई, जिससे यह जानकारी हो गई कि देव आयु समाप्त हो गई है अतः मन में अत्यन्त चिन्ता उत्पन्न हो गई, चिन्ता करते करते ही शरीर नष्ट हो गया और जाकर गर्भ में उत्पन्न हो गया हे भगवान मुझ दीन की विनती सुनिए।

प्रभु गर्भ तणा दुःख अब कहूं जठे सकुडाई की ठौर हो।
हलन चलन नहिं कर सक्यो जठे सघन कीच घनघोर हो।
म्हारी दीन तनी सुन वीनती।

भावार्थ—हे भगवान अब गर्भ का दुःख कहता हूँ जहाँ अत्यन्त संकुचित स्थान है हलन चलन (अर्थात् हिलना डुलना) भी नहीं कर सका जहाँ अति घना कीचड़ के समान घृणास्पद स्थान है हे भगवान मुझ दीन की वीनती सुनिए।

माता खावे चरपरो फिर लागे तन संताप हो
प्रभु जो जननी तातो भखै फेर उपजै तन संताप हो।
म्हारी दीन तनी सुन वीनती।

भावार्थ—हे भगवान जिस माता के गर्भ में उत्पन्न हुआ यदि वह माता ज्यादा चरपरा पदार्थ खाती है तो शरीर में जलन होती है। हे नाथ यदि माता गर्म भोजन करती है तो फिर शरीर जलने लगता है हे भगवान मुझ दीन की प्रार्थना सुनिए।

औंधे मुख झूलो रह्यो फेर निकसन कौन उपाय हो।
कठिन कठिन कर नीसरो जैसे निसरै जंत्री में तार हो॥
म्हारी दीन तणी सुन वीनती।

भावार्थ—हे भगवान् गर्भ में उलटा मुँह करके लटका रहा वहाँ से निकलने का कोई उपाय नहीं सूझ रहा था बहुत कठिनाई से वहाँ से निकला जैसे यंत्र से तार निकलता है। हे भगवान मुझ दीन की स्तुति सुनिए।

प्रभु फिर निकसत ही धरत्यां पड्यो फिर लागी भूख अपार हो।
रोय रोय बिलख्यो घनो, दुःख वेदन को नहीं पार हो।
म्हारी दीन तनी सुन वीनती।

भावार्थ—हे भगवान गर्भ से निकलते ही धरती पर गिर पड़ा और गिरते ही अत्यन्त भूख लगी जिससे मैं बहुत रोया, बिलखा अति दुःख अनुभव किया उस दुःख का पार नहीं रहा अतः हे भगवान मुझ दीन की विनती सुनिए।

प्रभु दुख मेटन समरथ धनी यातैं लागू तिहारै पाय हो।
सेवक अर्ज करै प्रभु मोकूं भवोदधि पार उतार हो।
म्हारी दीन तनी सुन वीनती।

भावार्थ—हे आदिनाथ भगवान इस अपार दुःख को नष्ट करने को आप ही समर्थ हो इसलिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ। और हे भगवान आपके चरणों का सेवक आपसे अरजी करता है कि मुझे संसार सागर से पार उतार दो हे नाथ मुझ दीन की विनती अवश्य सुनिए।

दोहा—श्री जी की महिमा अगम है कोई न पावे पार।
मैं मति अल्प अज्ञान हूँ कौन करै विस्तार॥

औं ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वा. स्वाहा।

भावार्थ—हे भगवान् आपकी महिमा अपार है कोई भी इसका पार नहीं पा सकता। मैं अल्प बुद्धि हूँ अज्ञानी हूँ। आपकी महिमा का विस्तार कैसे कर सकता हूँ।

ओं ह्रीं श्री आदिनाथ भगवान भगवान के लिए अनर्घ्य पद की प्राप्ति को अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

विनती ऋषभ जिनेश की जो पढ़सी मन ल्याय।
सुरगो मैं संशय नहीं, निश्चय शिवपुर जाय॥

(इत्याशीर्वाद)

भावार्थ—श्री आदिनाथ भगवान की यह विनती जो मन लगाकर पढ़ते हैं उन्हें स्वर्ग तो प्राप्त होता ही है, इसमें संशय नहीं है, निश्चय रूप से मोक्ष भी प्राप्त करते हैं।

(पुष्पांजलि)

जिन-अभिषेक और जिनपूजा, मंदिर की आध्यात्मिक प्रयोगशाला के दो जीवन्त प्रयोग है। भगवान की भव्य प्रतिमा को निमित्त बनाकर उनके जलाभिषेक से स्वयं को परमपद में अभिषिक्त करना अभिषेक का प्रमुख उद्देश्य है। पूजा जिन-अभिषेक पूर्वक ही संपन्न होती है। ऐसा हमारे पूर्वाचार्यों द्वारा श्रावक को उपदेश दिया गया है।

(१०८ मुनि क्षमा सागर जी)

श्री चन्द्रप्रभजिन पूजा

छप्पय—अनौष्ठय यमकालंकार तथा शब्दालंकार शांतरस ।

चारुचरन आचरन, चरन चितहरन चिह्नचर।
चंद-चंद-तनचरित, चंदथल चहत चतुर नर।।
चतुक चंड चकचूरि, चारि चिदचक्र गुनाकर।
चंचल चलित सुरेश, चूल नुत चक्र धनुरधर ।।
चर अचर हितू तारन तरन, सुनत चहकि चिर नंद शुचि।
जिनचंद चरन चरच्यो चहत, चितचकोर नचि रच्चि रुचि ।।1 ।

दोहा-धनुष डेढ़सौ तुङ्ग तन, महासेन नृपनंद।
मातु लछमना उर जये, थापों चंद जिनंद ।।2 ।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतरः संवौषट् । आह्वानम् ।
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः । स्थानपनम् ।
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट् । सन्निधिकरणं ।

भावार्थ—हे चन्द्र प्रभ भगवान आपके सुन्दर चरण सम्यक् चारित्र को धारण कराने वाले हैं । आपके चरन चन्द्र चिह्न से सहित मन को हरण करन वाले हैं । हे चन्द्र प्रभ भगवान आप चन्द्रमा की कांति के समान शरीर को धारण करने वाले हो । हे चन्द्र प्रभ भगवान आपके चरणों की शरण चतुर अर्थात् मोक्ष सुख को चाहने वाले मनुष्य चाहते हैं । हे भगवान आपने दुख को देने वाले निर्दयी चार घातिया कर्मों को नष्ट कर दिया है । आप चैतन्य स्वरूप ज्ञानमय अनंत गुणों के भंडार हो । चंचलता पूर्वक चलने वाले इन्द्र, उच्च पद को प्राप्त चक्रवर्ती, अस्त्र, शस्त्र, धनुष आदि को धारण करने वाले भी आपके चरणों में नमन करते हैं । त्रस-स्थावर सबका हित करने वाले हो, संसार सागर से पार उतारने को आप नौका के समान हो, आपके गुणों की महिमा को सुनकर मन अत्यन्त पवित्र शाश्वत अनंतसुख को प्राप्त करने को चहकने लगता है । प्रसन्न होता है । हे चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र आपके चरणों की अर्चना करना चाहता हूँ आपके चरणों की पूजा रचाकर मन रूपी चकोर बारबार नाच रहा है ।

एक सौ पचास धनुष ऊँचे शरीर को धारण करने वाले श्री महासेन राजा के पुत्र मात लक्ष्मना के उदर से जन्म लेने वाले चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र की यहाँ स्थापना करता हूँ।

ओं ह्रीं चन्द्रप्रभ भगवान यहाँ आइये आइये।
ओं ह्रीं चन्द्रप्रभ भगवान यहाँ ठहरिये ठहरिये।
ओं ह्रीं चन्द्र प्रभ भगवान यहाँ मेरे समीप विराजिये विराजिये।

अष्टक

चाल-द्यानतराय कृत नंदीश्वराष्टक की अष्टपदी तथा होली की
ताल में, तथा गरवा आदि अनेक चालों में।

गंगाहृद निरमल नीर, हाटक भृंग भरा।
तुम चरन जजों वरवीर, मेटो जनम जरा॥
श्री चंदनाथदुति चंद, चरनन चंद लगै।
मनवचतन जजत अमंद, आतमजोति जगै॥

ओं ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि० स्वाहा। 1

भावार्थ—गंगा नदी जिस हृद से निकलती है उस पद्म हृद का निर्मल स्वच्छ जल स्वर्ण कलश में भरकर, जनम, जरा, और मृत्यु के नाश करने वाले हे श्रेष्ठ वीर, (बलवान) चन्द्रप्रभ भगवान आपके चरणों की पूजा करता हूँ। हे चन्द्र प्रभ भगवान चन्द्रमा की कान्ति के सामान शरीर को धारण करने वाले आपके चरण में चन्द्रमा का चिन्ह है, जो कभी मंद नहीं पड़ती ऐसी आत्म ज्योति (केवल ज्ञान ज्योति) प्रकट करने के लिए अति निर्मल भाव से मान को त्यागकर मन वचन काय से आपकी पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं चन्द्र प्रभ भगवान के लिए जन्म जरा और मृत्यु को नाश करने के लिए जल समर्पित करता हूँ।

श्रीखंड कपूर सुचंग, केशर रंग भरी।
घसि प्रासुक जल के संग, भवआताप हरी॥ श्री०

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं नि० स्वाहा। 2

भावार्थ—हे चन्द्र प्रभ भगवान श्रीखण्ड, केशर के रंग को प्रसन्नता पूर्वक जल के साथ घिसकर, संसार ताप के नष्ट करने को चंदन से आपकी पूजा करता

हूँ। हे चन्द्र प्रभ भगवान, चन्द्रमा की कान्ति के समान शरीर को धारण करने वाले, आपके चरण में चन्द्रमा का चिन्ह है, जो कभी मंद नहीं पड़ती ऐसी आत्म ज्योति (केवल ज्ञान ज्योति) प्रकट करने के लिए अति निर्मल भाव से मान त्यागकर मन वचन काय से आपकी पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं चन्द्रप्रभ भगवान के लिए संसार ताप के नाश करने को चंदन समर्पित करता हूँ।

तंदुल सित सोमसमान, सो ले अनियारे।
दिय पुंज मनोहर आन, तुम पदतर प्यारे॥ श्री०

ओं ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्व० स्वाहा ।3

भावार्थ—चन्द्रमा के समान श्वेत, अखंडित चावलों के मनोहारी, अत्यन्तप्रिय पुंजों से हे भगवान आपके चरणों की पूजा करता हूँ। हे चन्द्रप्रभ भगवान, चन्द्रमा की कान्ति के समान शरीर को धारण करने वाले आपके चरण में चन्द्रमा का चिन्ह है, जो कभी मंद नहीं पड़ती ऐसी आत्म ज्योति (केवल ज्ञान ज्योति) प्रकट करने के लिए अति निर्मल भाव से मान त्यागकर मन वचन काय से आपकी पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं चन्द्रप्रभ भगवान के लिए अक्षय पद के प्राप्त करने को अक्षत समर्पित करता हूँ।

सुरद्रुमके सुमन सुरंग, गंधित अलि आवै।
तासों पद पूजत चंग, कामविथा जावै॥ श्री०

ओं ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं नि० स्वाहा ।4

भावार्थ—हे चन्द्रप्रभ भगवान कल्पवृक्ष के रंग-बिरंगे सुगंधित पुष्प जिन पर भौंरे मंडरा रहे हैं। ऐसे पुष्पों से काम की वेदना को नष्ट करने के लिए आपके चरणों की उत्साह पूर्वक पूजा करता हूँ। हे चन्द्र प्रभ भगवान चन्द्रमा की कान्ति के समान शरीर को धारण करने वाले आपके चरणों में चन्द्रमा का चिन्ह है। जो कभी मंद नहीं पड़ती ऐसी आत्म ज्योति (केवल ज्ञान ज्योति) प्रकट करने के लिए अति निर्मल भाव से मान त्याग कर मन वचन काय से आपकी पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं चन्द्र प्रभ भगवान के लिए काम की वेदना नाश करने को पुष्प समर्पित करता हूँ।

नेवज नाना परकार, इंद्रिय बलकारी।
सो ले पद पूजों सार, आकुलता-हारी॥ श्री०

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि० स्वाहा ।5

भावार्थ—हे चन्द्रप्रभ भगवान अनेक प्रकार का नैवेद्य जो पाँचों इन्द्रियों को बलवान बनाने वाला है ऐसे नैवेद्य से संसार की आकुलता को नष्ट करने के लिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ

हे चन्द्रप्रभ भगवान चन्द्रमा की कान्ति के समान शरीर को धारण करने वाले आपके चरण में चन्द्रमा का चिन्ह है जो कभी मंद नहीं पड़ती ऐसी आत्म ज्योति (केवल ज्ञान ज्योति) प्रकट करने के लिए अति निर्मल भाव से मान त्याग कर, मन वचन काय से आपकी पूजा करता हूँ ।

ओं ह्रीं चन्द्रप्रभ भगवान के लिए भूख की वेदना नाश करने को नैवेद्य समर्पित करता हूँ ।

तमभंजन दीप सँवार, तुम ढिग धारतु हों।
मम तिमिरमोह निरवार, यह गुण धारतु हों। श्री०

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं नि० स्वाहा । 6

भावार्थ—हे चन्द्रप्रभ भगवान अंधकार का नाश करने वाला दीपक जलाकर आपके पास चढ़ाता हूँ (धरता हूँ) हे नाथ आप मेरे मोह रूपी अंधकार का नाश कीजिए । क्योंकि आप मोहअंधकार नाशक गुण को धारण करने वाले हो । हे चन्द्रप्रभ भगवान चन्द्रमा की कान्ति के समान शरीर को धारण करने वाले आपके चरण में चन्द्रमा का चिन्ह है जो कभी मंद नहीं पड़ती ऐसी आत्म ज्योति (केवल ज्ञान ज्योति) प्रकट करने के लिए अति निर्मल भाव से मान का त्याग कर मन वचन काय से आपकी पूजा करता हूँ ।

ओं ह्रीं चन्द्र प्रभ भगवान के लिए मोह रूपी अंधकार नष्ट करने को दीप समर्पित करता हूँ ।

दसगंध हुतासन माहिं, हे प्रभु खेवतु हों।
मम करम दुष्ट जरि जाहिं, यातैं सेवतु हों। श्री०

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि० स्वाहा ।7

भावार्थ—हे चन्द्रप्रभ भगवान सुगंधित दशांगी धूप अग्नि में जलाता हूँ । जिससे मेरे ये दुष्ट (दुख देने वाले) आठ कर्म जलकर नष्ट हो जाये इससे हे भगवान आपकी सेवा भक्ति करता हूँ—हे चन्द्र प्रभ भगवान चन्द्रमा की कान्ति

के समान शरीर को धारण करने वाले आपके चरण में चन्द्रमा का चिन्ह है जो कभी मंद नहीं पड़ती ऐसी आत्म ज्योति (केवल ज्ञान ज्योति) प्रकट करने के लिए अति निर्मल भाव से मान का त्याग कर मन वचन काय से आपकी पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं चन्द्रप्रभ भगवान के लिए अष्ट कर्म नाश करने को धूप समर्पित करता हूँ।

अति उत्तम फल सु मंगाय, तुम गुण गावतु हों।
पूजों तनमन हरषाय, विघन नशावत हों। श्री०

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि० स्वाहा ।८

भावार्थ—अत्यन्त, उत्कृष्ठ, सुन्दर फल लेकर हे भगवान आपके गुणानुवाद करता हूँ। हे नाथ आप विघ्नों का नाश करने वाले हो आपकी तनमन से हर्षित होकर पूजन करता हूँ। हे चन्द्र प्रभ भगवान चन्द्रमा की कान्ति के समान शरीर को धारण करने वाले आपके चरण में चन्द्रमा का चिन्ह है जो कभी मंद नहीं पड़ती ऐसी आत्म-ज्योति (केवल ज्ञान ज्योति) प्रकट करने के लिए अति निर्मल भाव से मान त्यागकर मन वचन काय से आपकी पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं चन्द्रप्रभ भगवान के लिए मोक्ष फल के पाने को फल समर्पित करता हूँ।

सजि आठों दरब पुनीत, आठों संग नमों।
पूजों अष्टम जिन मीत, अष्टम अवनि गमों। श्री०

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं नि० स्वाहा ।9

भावार्थ—पवित्र आठों द्रव्यों को सजाकर आठों अंगों को नवाकर, सुख को देने वाले मित्र स्वरूपी आठवें तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभ भगवान की आठवीं भूमि प्राप्त करने को पूजन करता हूँ। हे चन्द्र प्रभ भगवान चन्द्रमा की कान्ति के समान शरीर को धारण करने वाले आपके चरण में चन्द्रमा का चिह्न है जो कभी मंद नहीं पड़ती ऐसी आत्म ज्योति (केवल ज्ञान ज्योति) प्रकट करने के लिए अति निर्मल भाव से मान त्याग कर मन वचन काय से आपकी पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं चन्द्रप्रभ भगवान के लिए अनर्घ्य पद प्राप्त करने को अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

पंच कल्याणक

छंद त्रोटक (वर्ण 12)

कलि पंचम चैत सुहात अली।
गरभागम मंगल मोद भली॥
हरि हर्षित पूजत मातु पिता।
इम ध्यावत पावत शर्मसिता॥1॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णपंचम्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा

भावार्थ—चैत कृष्ण पंचमी जो सभी को अच्छी लगने वाली है, इस दिन हे भगवान आपने गर्भ में आकर सबकों मंगल और आनंद को दिया इन्द्र ने अत्यन्त हर्षित होकर माता-पिता की पूजा (आदर सम्मान) की।

इस प्रकार जो भी भगवान का ध्यान करता है उसे मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है।

ओं ह्रीं चैत कृष्ण पंचमी के दिन गर्भ कल्याणक प्राप्त करने वाले श्री चन्द्रप्रभ भगवान के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

कलि पौष एकादशि जन्म लयो।
तब लोकविषै सुखथोक भयो॥
सुरईश जजैं गिरशीश तबै।
हम पूजत हैं नुत शीश अबै॥2॥

ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेंद्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा

भावार्थ—पौष कृष्ण एकादशी को जन्म लेकर हे चन्द्रप्रभ भगवान आपने समस्त लोक को एक साथ सुखी किया (अर्थात् आपके जन्म से तीनों लोकों के जीवों को सुख हुआ) तब इन्द्र ने आकर आपको सुमेरु पर्वत पर ले जाकर आपकी पूजा (स्तुति की) की हे भगवान हम भी शीश झुकाकर आपकी पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं पौष कृष्ण एकादशी को जन्म कल्याणक प्राप्त करने वाले श्री चन्द्रप्रभ भगवान के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

तप दुद्धर श्रीधर आप धरा।
कलिपौष ग्यारसि पर्व वरा।
निज ध्यान विषै लवलीन भये।
धनि सो दिन पूजत विघ्न गये ॥3 ॥

ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां निःक्रमणमहोत्सव मंडिताय श्रीचंद्रप्रभ-जिनेंद्राय अर्ध नि० स्वाहा।

भावार्थ—पौष कृष्णा एकादशी को हे चन्द्रप्रभ भगवान आपने कठिन तप को धारण किया जिससे वह उत्कृष्ठ पर्व बन गया, आप आज अपने आपमें लीन हो गये थे अतः यह दिन धन्य हो गया, हमारे विघ्न नष्ट हो जाय अतः आपकी पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं पौष कृष्ण एकादशी को तप कल्याणक प्राप्त करने वाले श्री चन्द्रप्रभ भगवान के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

वर केवल भानु उद्योत कियो।
तिहुँलोकतणों भ्रम मेट दियो ॥
कलि फाल्गुण सप्तमि इंद्र जजैं।
हम पूजहिं सर्व कलंक भजैं ॥4 ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णसप्तभ्यां केतलज्ञानमंडिताय श्रीचंद्रप्रभजिनेंद्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।

भावार्थ—हे भगवान आपने केवल ज्ञान रूपी सूर्य का उदय कर तीनों लोकों के भ्रम (संशय) का नाश कर दिया है अतः फाल्गुन कृष्ण सप्तमी को इन्द्र भी पूजा करते हैं। हम अपने सब पापों को नष्ट करने के लिए आपकी पूजा करते हैं।

ओं ह्रीं फाल्गुन कृष्ण सप्तमी के दिन ज्ञान कल्याणक प्राप्त करने वाले श्री चन्द्रप्रभ भगवान के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

सित फाल्गुन सप्तमि मुक्ति गये।
गुणवंत अनंत अबाध भये ॥
हरि आय जजे तित मोद धरे।
हम पूजत ही सब पाप हरे ॥5 ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनशुक्लसप्तम्यां-मोक्षमंगलमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभ जिनेंद्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

भावार्थ—हे चन्द्रप्रभ भगवान फाल्गुन शुक्ल सप्तमी को मुक्ति पाकर बाधारहित अनंत गुणों के स्वामी हो गये । इन्द्र ने आकर वहाँ अत्यंत आनंद के साथ आपकी पूजा की हमभी-आपकी पूजा करते हैं आप हमारे पाप को नष्ट कीजिए ।

ओं ह्रीं फाल्गुन शुक्ल सप्तमी के दिन मोक्ष कल्याणक प्राप्त करने वाले श्री चन्द्रप्रभ भगवान के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ ।

॥ जयमाला ॥

दोहा-हे मृगांक अंकित चरण, तुम गुण अगम, अपार ।
गणधर से नहिं पार लहिं, तौ को वरनत सार ॥1 ॥
पै तुम भगति हिये मम, प्रेरे अति उमगाय ।
तातैं गाउं सुगुण तुम, तुम ही होउ सहाय ॥ 2 ॥

भावार्थ—चन्द्रमा के अंक चिन्ह से चिन्हित चरण के धारी हे चन्द्र प्रभ भगवान आपके गुण अथाह और अपार है । आपके गुणों का पार गणधर भी नहीं पा सकते तो फिर हम कैसे आपके गुणों का वर्णन कर सकते हैं । फिर भी हमारे अन्तःहृदय में आपकी भक्ति की प्रेरणा से अत्यन्त उमंग हो रही है । अतः आपके गुणों का गान कर रहा हूँ । अब आप ही मेरी सहायता करें ।

छन्द पद्धरी (16 मात्रा)

जय चंद्र जिनेंद्र दयानिधान । भवकाननहानन दव प्रमान
जय गरभ जनम मंगल दिनंद ।
भवि-जीव विकाशन शर्म कन्द ॥3 ॥

भावार्थ—हे चन्द्र प्रभ भगवान आप दया के भंडार हैं । भव रूपी वन को नष्ट करने के लिये दावानल की तरह हैं । आपकी जय हो । आप गर्भ जन्म आदि मंगल स्वरूप कल्याणकों को धारण करने वाले हो । भव्य जीव के सुख रूपी कमल को विकसित करने के लिए सूर्य के समान हो आप जयवंत हो ।

दशलक्ष पूर्व की आयु पाय। मनवाँछित सुख भोगे जिनाय।
लखि कारण ह्वै जगतैं उदास।
चिंत्यो अनुप्रेक्षा सुख निवास ।।4 ।।

हे भगवान आपने दस लाख पूर्व की आयु प्राप्त कर अनेक मन वांछित सुखों का भोग किया और संसार की असारता का चिन्तन कर संसार शरीर और भोगों से उदास होकर, सुख को देने वाली (सुख स्वरूपी) बारह भावनाओं का चिन्तन किया।

तित लौकांतिक बोध्यो नियोग।
हरि शिविका सजि धरियो अभोग।
तापै तुम चढ़ि जिनचंदराय।
ताछिन की शोभा को कहाय ।।5 ।।

भावार्थ—बारह भावनाओं का चिन्तन कर रहे थे तब ही लौकान्तिक देवों ने आकर आपको संबोधन किया कि आपका विचार श्रेष्ठ है उसी समय इन्द्र पालकी लेकर आ गये। चन्द्र प्रभ भगवान पालकी में विराजमान हो गये उस समय की सुन्दरता का वर्णन नहीं किया जा सकता।

जिन अंग सेत सितचमर ढार।
सित छत्र शीस गल गुलक हार ।।
सित रतन जड़ित भूषण विचित्र।
सित चन्द्र चरण चरचैं पवित्र ।।6 ।।

भावार्थ—हे चन्द्र प्रभ भगवान आपके अंग श्वेत हैं आपको श्वेत ही चमर ढुरते हैं श्वेत ही शीश पर छत्र लगा है गले में श्वेत जड़ाऊ हार पहिने हुए हैं। और नाना प्रकार के हीरा मोतियों से जड़ित श्वेत आभूषण धारण किये हुए हैं ऐसे श्वेत शरीर को धारण करने वाले चन्द्र प्रभ भगवान के पवित्र चरणों की अर्चना करता हूँ।

सित तनद्युति नाकाधीश आप।
सित शिविका कांधे और धरि सुचाप ।।

सित सुजस सुरेश नरेश सर्व।
सित चितमें चिंतत जात पर्व ॥7 ॥

भावार्थ—हे भगवान आपके शरीर का तेज चन्द्रमा की तरह श्वेत है आप मोक्ष मार्ग को बढ़ाने वाले हैं । संसार मार्ग को बंद करे वालो में आप अग्रणी हो। आपकी धनुषाकार श्वेत पालकी कंधे पर रखकर, इन्द्र, देव, राजा और मनुष्य सभी आपके उज्जवल यश का, एवं दीक्षा के इस पावन पर्व का, चिन्तन करते हुए जाते हैं।

सित चंद्र नगरतैं निकसि नाथ।
सित वन में पहुंचे सकल साथ॥
सितशिला शिरोमणि स्वच्छ छाँह।
सित तप तित धारयो तुम जिनाह ॥8 ॥

भावार्थ—हे भगवान आप विमलमनोहरा नामक पालकी में बैठकर चन्द्रपुरी से निकलकर एक हजार मनुष्यों के साथ सर्वार्थ वन में पहुंचे और श्वेत उत्कृष्ठ शिला पर नाग नामक वृक्ष की छांव में, हे जिन चन्द्र प्रभ भगवान आपने उज्ज्वल तप धारण किया।

सित पयको पारण परम सार।
सित चंद्रदत्त दीनों उदार॥
सित कर में सो पय धार देत।
मानो बांधत भवसिंधु सेत ॥9 ॥

भावार्थ—बेला का उपवास करके पारणा को गये तब सोमदत्त (चन्द्रदत्त) ने श्वेत दूध से बनी हुई अत्यन्त स्वादिष्ट खीर को हे भगवान आपके श्वेत हाथों में उदार भाव से दिया तब ऐसा लगता था कि मानो भव सागर को पार करने के लिए पुल बनाया जा रहा हो।

मानो सुपुण्य धारा प्रतच्छ।
तित अचरजपन सुर किए ततच्छ॥
फिर जाय गहन सित तप करंत।
सित केवल ज्योति जग्यो अनन्त ॥10 ॥

भावार्थ—उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो पुण्य की प्रत्यक्ष धारा बह रही हो। देवों ने पंचाश्चर्य किये पश्चात् वन में जाकर आपने उज्ज्वल तप को किया जिससे अत्यन्त उज्ज्वल केवल ज्ञान रूपी अनंत ज्योति प्रकट हो गई।

लहि समवसरन रचना महान।
जाके देखत सब पाप हान॥
जहँ तरु अशोक शोभै उतंग।
सब शोक तनो चूरै प्रसंग॥11॥

भावार्थ—केवल ज्ञान हो जाने पर इन्द्र की आज्ञा से समवशरण की महान रचना की गई जिसके दर्शनमात्र से सभी पाप क्षय को प्राप्त हो जाते हैं। वहाँ समाशरण में ऊँचा अशोक वृक्ष अत्यन्त शोभा को प्राप्त होता है जो शोक को और शोक के कारण को नष्ट करने वाला है।

सुर सुमन वृष्टि नभतें सुहात।
मनु मन्मथ तजि हथियार जात॥
बानी जिनमुखसों खिरत सार।
मनु तत्व प्रकाशन मुकुर धार॥12॥

आकाश से देवों द्वारा पुष्पों की वृष्टि अति सुन्दरता को धारण करती है वहाँ ऐसा प्रतीत होता है जैसे काम देव अपने हथियार फैंककर भाग रहा हो। जिनेन्द्र भगवान के श्रीमुख से निर्गत वाणी (सर्वांग से) ऐसी लगती है जैसे तत्वों को दिखाने के लिए अर्थात् प्रकाशित करने के लिए दर्पण ही हो।

जहँ चौंसठ चमर अमर ढुरंत।
मनु सुजस मेघ झरि लगिय तंत॥
सिंहासन है जहँ कमल जुक्त।
मनु शिव सरवर को कमल-शुक्त॥13॥

भावार्थ—वहाँ देवों द्वारा चौंसठ चमर ढोरे जा रहे हैं सो वे ऐसे लग रहे हैं जैसे मेघों से निरंतर आपका यश ही झड़ रहा हो। समवशरण में कमल से सहित सिंहासन है जो ऐसा प्रतीत होता है कि मानो मोक्ष रूपी सरोवर का कठोर कमल ही हो।

दुंदुभि जित बाजत मधुर सार।
मनु करमजीत को है नगार॥
शिर छत्र फिरैं त्रय श्वेत वर्ण।
मनु रतन तीन त्रय ताप हर्ण॥14॥

वहाँ समवशरण में मधुर ध्वनि से दुन्दुभि बज रही है वे ऐसी लग रहे जैसे कर्मों पर विजय प्राप्त कर ली है इसलिए नगाड़े बजाये जा रहे हैं। हे भगवान आपके शिर पर तीन श्वेत छत्र लग रहे हैं वे ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे ये तीन रत्न को उत्पन्न करने वाले और संसार ताप को नष्ट करने वाले हो।

तन प्रभातनों मंडल सुहात।
भवि देखत निज भव सात सात॥
मनु दर्पण द्युति यह जगमगाय।
भविजन भव मुख देखत सु आय॥15॥

भावार्थ—हे भगवान आपके शरीर की प्रभा का मंडल जो भामण्डल है उसमें भव्य जीव अपने-अपने सात-सात भव देखते हैं आपके शरीर की द्युति जगमग करती हुई दर्पण की तरह जान पड़ती है जिसमें भव्य जीव अपना भव रूपी मुख देखते हैं।

इत्यादि विभूति अनेक जान।
बाहिज दीसत महिमा महान॥
ताको वरणत नहिं लहत पार।
तौ अंतरंग को कहै सार॥16॥

भावार्थ—समवशरण में इस प्रकार अनेक प्रकार का वैभव है, जो दिखाई देता है वह सब बाह्य वैभव है उसकी महिमा अपार है और उसके वर्णन का पार भी नहीं लिया जा सकता तब आपके अंतरंग वैभव को कौन कह सकता है अर्थात् कोई नहीं।

अनअंत गुणनिजुत करि विहार।
धरमोपदेश दे भव्य तार॥

फिर जोग निरोधि अघातिहान।
सम्मेदथकी लिय मुकतिथान ।।17 ।।

भावार्थ—हे भगवान आपने अनंत गुणों से सहित विहार कर, धर्म का उपदेश देकर, भव्य जीवों को संसार सागर से पार किया और फिर योग निरोध कर अघाति कर्मों को नाशकर सम्मेद शिखर से मोक्ष प्राप्त किया ।

'वृन्दावन' वंदत शीश नाय।
तुम जानत हो मम उर जु भाय।।
तातैं का कहों सु बार बार।
मनवांछित कारज सार सार ।।18 ।।

भावार्थ—हे चन्द्रप्रभ भगवान वृन्दावन कवि बार-बार आपको शीश झुकाकर नमस्कार कर कहते हैं कि हे भगवान आप मेरे हृदय की बात जानते है अतः मैं बार-बार उसे क्यों कहूँ। अब मेरे मनकी इच्छा पूर्ण कीजिए।

।। घत्तानन्द छन्द ।।

जय चंदजिनंदा, आनंदकंदा, भवभयभंजन राजे हैं।।
रागादिक द्वंदा, हरि सब फंदा,
मुकति मांहि थिति साजे हैं।।19 ।।

ओं ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेंद्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

भावार्थ—हे चन्द्रप्रभ भगवान आपकी जय हो आप आनंद के भंडार हो, संसार के भय को नाश करने वाले हो, राग द्वेष, आदि द्वंद रूपी फंदो का नाश कर मुक्ति अर्थात् मोक्ष में विराजमान हो गये हो ।

ओं ह्रीं श्री चन्द्र प्रभ भगवान के लिए अनर्घ्यपद की प्राप्ति को अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

छन्द चौबोला ।

आठों दरब मिलाय गाय गुण, जो भविजन जिनचंद जजैं।
ताके भव भवके अघ भाजैं, मुक्तिसार सुख ताहि सजैं।20 ।

जमके त्रास मिटैं सब ताके, सकल अमंगल दूर भजैं।
वृन्दावन ऐसो लखि पूजत, जातैं शिवपुरि राज रजैं ॥21 ॥

इत्याशीर्वादः । पुष्पांजलि क्षिपेत् ।

भावार्थ—जल फल आदि आठों द्रव्यों को मिलाकर अर्घ चढ़ाकर गुण गान करके जो भव्य जीव श्री चन्द्रप्रभ भगवान की पूजा करते हैं, उनके भव भव के पाप नष्ट हो जाते हैं, और वे मोक्ष सुख की प्राप्ति करते हैं, उनके जन्म जरा मृत्यु के सभी दुःख दूर होते हैं, और सभी अमंगल दूर हो जाते हैं सभी मंगल प्राप्त होते हैं, वृन्दावन कवि कहते हैं कि ऐसा जानकर हम आपकी पूजा करते हैं जिससे हमें मोक्षपुरी का राज्य प्राप्त हो जाये ।

इत्याशीर्वादः

द्रव्य पूजा का अर्थ सिर्फ इतना नहीं है कि अष्ट द्रव्य अर्पित कर दिये और न ही भाव-पूजा का यह अर्थ है कि पुस्तक में लिखी पूजा को पढ़ लिया। पूजा तो गहरी आत्मीयता के क्षण हैं। वीतरागता से अनुराग और गहरी तल्लीनता का श्रेष्ठ द्रव्यों को समर्पित करना व अपने अहंकार और ममत्व भाव को विसर्जित करते जाना ही सच्ची पूजा है।

(१०८ मुनि क्षमा सागर जी)

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय काम-बाण-विनाशनाय पुष्प निर्वा० स्वाहा ।४ ।

देवों से प्राप्त कल्पवृक्षों के पुष्प और पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले पुष्पों को मँगाकर आपके चरणों के समीप अर्पित करता हूँ जिससे शीघ्र ही काम की वेदना दूर हो जाए पंचम चक्रवर्ती पद बारहवें कामदेव का पद प्राप्त करने वाले हे शान्ति नाथ भगवान आपकी पूजा करने से रोग शोक दुःख दरिद्रता सभी नष्ट हो जाते हैं ।

ओं ह्रीं श्री शान्ति नाथ भगवान के लिए काम वेदना को नाश करने के लिए पुष्प समर्पित करता हूँ ।

भाँति-भाँति के सद्य मनोहर कीने मैं पकवान संवार।
भर थारी तुम सन्मुख लायो क्षुधा वेदनी वेग निवार॥
शांतिनाथ०

ओं ह्रीं शांतिनाथ-जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवैद्यं निर्वा० स्वाहा ।५ ।

तरह तरह के मन को लुभाने वाले ताजे पकवान बनाकर, सुन्दरता से थालीभर कर हे शान्तिनाथ भगवान आपके सामने लाया हूँ आप मेरे भूख रूपी रोग को शीघ्र नष्ट कीजिए ।

पंचम चक्रवर्ती पद एवं बारहवें कामदेव का पद प्राप्त करने वाले हे शान्तिनाथ भगवान आपके चरण कमलों की पूजा करने से रोग शोक दुःख दरिद्रता सभी नष्ट हो जाते हैं ।

ओं ह्री श्री शान्तिनाथ भगवान के लिए भूख की वेदना मिटाने के लिए नैवेद्य समर्पित करता हूँ ।

घृत सनेह करपूर लाय कर दीपक ताके धरे प्रजार।
जग मग जोत होत मंदिर में मोह अंध को देत सुटार॥
शांतिनाथ पंचम चक्रेश्वर द्वादश मदन तनो पद पाय।
तिनके चरण कमल के पूजे रोग शोक दुख दारिद जाय॥

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वा० स्वाहा ।६ ।

घृत सहित कपूर की ज्योति जलाकर दीपक प्रज्ज्वलित कर लाया हूँ जिनकी द्युति मंदिर में जगमगा रही है ऐसे दीपक को, मोह रूपी अंधकार के नष्ट करने

के लिए हे शान्तिनाथ भगवान आपके चरणों में चढ़ाता हूँ। पंचम चक्रवर्ती पद एवं बारहवें कामदेव का पद प्राप्त करने वाले हे शान्तिनाथ भगवान आपके चरण कमलों की पूजा करने से रोग शोक दुःख दारिद्रता सभी नष्ट हो जाते हैं।

ओं ह्रीं श्री शान्तिनाथ भगवान के लिए मोह रूपी अंधकार को नष्ट करने के लिए दीप समर्पित करता हूँ।

देवदारु कृष्णागरु चन्दन अगर कपूर सुगन्ध अपार।
खेऊँ अष्ट करम जारन को धूप धनंजय मांहि सुडार॥
शांतिनाथ०

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथ जिनेन्द्राय अष्ट कर्मदहनाय धूपं निर्व० ।७।

हे शान्तिनाथ भगवान देवदारु, कृष्णागर, तगर, कपूर आदि अत्यन्त सुगंधित पदार्थों को अष्ट कर्म के नाश करने के लिए धूप अग्नि में खेता हूँ। पंचम चक्रवर्ती बारहवें कामदेव का पद प्राप्त करने वाले हे शान्तिनाथ भगवान आपके चरण कमलों की पूजा करने से रोग शोक दुःख दरिद्रता सभी नष्ट हो जाते हैं।

ओं ह्री श्री शान्तिनाथ भगवान के लिए अष्ट कर्म के नष्ट करने के लिए धूप समर्पित करता हूँ।

नारंगी बादाम सुकेला एला दाडिम फल सहकार।
कंचन थाल मांहिं धर लायो अरचत ही पाऊं शिव नार॥
शान्तिनाथ०

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथ जिनेन्द्राय मोक्ष फल प्राप्तये फलं निर्व० ।८।

हे भगवान नारंगी, केला, बादाम, इलायची, अनार आदि उत्कृष्ट फल स्वर्ण की थाली मेंभरकर मुक्ति लक्ष्मी की प्राप्ति के आपकी पूजा अर्चना करता हूँ। पंचम चक्रवर्ती एवं बारहवें कामदेव का पद प्राप्त करने वाले हे शान्तिनाथ भगवान आपके चरण कमलों की पूजा करने से रोग शोक दुःख दरिद्रता सभी नष्ट हो जाते हैं।

ओं ह्रीं श्री शान्ति नाथ भगवान के लिए मोक्षफल की प्राप्ति के लिए फल समर्पित करता हूँ।

जल फलादि वसु द्रव्य संवारे अर्घ चढ़ाये मंगल गाय।
'बखत रतन' के तुम ही साहिब दीजे शिवपुर राज कराय।।
शांतिनाथ०

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ निर्व० ।९ ।

बख्तावर जी कहते हैं कि हे शान्तिनाथ भगवान जल चंदन आदि अष्ट द्रव्य मंगल गान पूर्वक आपको चढ़ाता हूँ। हे भगवान आप ही मेरे स्वामी हैं मुझे मोक्ष का राज्य दीजिए पंचम चक्रवर्ती एवं बारहवें कामदेव का पद प्राप्त करने वाले हे शान्ति नाथ भगवान आपके चरण कमलों की पूजा करने से रोग शोक दुःख दरिद्रता सभी नष्ट हो जाते हैं।

ओं ह्रीं श्री शान्तिनाथ भगवान के लिए अनर्ध्य पद की प्राप्ति के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

पंचकल्याणक

छन्द उपगति

भादव सप्तमि श्यामा, सर्वारथत्याग नागपुर आये।
माता ऐरा नामा, मैं पूजूं ध्याऊं अर्घ शुभलाये।।

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथ जिनेन्द्राय भाद्रपद कृष्ण सप्तम्यां गर्भकल्याण प्राप्ताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।।

भाद्रपद कृष्णपक्ष की सप्तमी को सर्वाद्ध सिद्धि से चयकर हस्तिनापुर में माता ऐरा देवी के गर्भ में आये ऐसे श्री शान्तिनाथ भगवान की मैं उत्कृष्ट शुभ अर्घ्यं से पूजा करता हूँ।ध्यान करता हूँ।

ओं ह्रीं भाद्रपद कृष्ण सप्तमी के दिन गर्भ कल्याणक प्राप्त करने वाले श्री शान्ति नाथ भगवान के लिए अनर्घ पद की प्राप्ति को अर्घ्यं समर्पित करता हूँ।

जन्मे तीरथ नाथं, वर जेठ असित चतुर्दशी सोहै।
हरिगण नावें माथं, मैं पूजूं शांतिचरण युग जोहै।।

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथ जिनेन्द्राय ज्येष्ठ-कृष्ण-चतुर्दश्यां जन्म-कल्याण प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।

जेष्ठ कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को श्री शान्तिनाथ भगवान का जन्म हुआ था हे शान्तिनाथ भगवान आपके चरणों में इन्द्र नरेन्द्र आदि सिर नवाते हैं ऐसे शान्तिनाथ भगवान के दोनों चरण कमलों की पूजन करता हूँ।

ओं ह्रीं जेठ कृष्ण चौदस को जन्म कल्याणक प्राप्त करने वाले श्री शान्ति नाथ भगवान को अनर्घ पद की प्राप्ति के लिए अर्घ्यं समर्पित करता हूँ।

चौदस जेठ अंधयारी, कानन में जाय योग प्रभु लीन्हा।
नवनिधिरत्न सुछांरी, मैं बन्दू आत्मसार जिन चीन्हा॥

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथ जिनेन्द्राय ज्येष्ठ-कृष्ण-चतुर्दश्यां तप-कल्याण प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

जेष्ठ कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को हे भगवान आपने नव निधि और चौदहरत्न को त्यागकर वन में जाकर योग धारण किया अर्थात् तप धारण किया और आत्मा के शुद्ध स्वरूप को ज़ान लिया था। शुद्धात्म पद की प्राप्ति हेतु श्री शान्तिनाथ भगवान की पूजन करता हूँ।

ओं ह्रीं जेठ कृष्ण चौदस को तप कल्याणक प्राप्त करने वाले श्री शान्तिनाथ भगवान के लिए अनर्घ पद के पाने को अर्घ समर्पित करता हूँ।

पौष दसें उजियारा, अरि घाति ज्ञान भानु जिन पाया।
प्रातिहार्य बसुधारा, मैं सेऊं सुर नर जासु यश गाया॥

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथ जिनेन्द्राय पौष-शुक्ला-दशम्यां ज्ञान-कल्याण प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

पौष शुक्ल दशमी के दिन हे भगवान आपने चार घातिया कर्मरूपी शत्रुओं को नष्ट कर केवल ज्ञान रूपी सूर्य को प्रकट किया एवं अष्ट प्रतिहार्यो को धारण किया आपके यश को इन्द्र देव एवं मनुष्यों ने गाया है मैं भी आपकी पूजन करता हूँ।

ओं ह्रीं पौष शुक्ल दशमी के दिन केवल ज्ञान कल्याणक प्राप्त करने वाले श्री शान्ति नाथ भगवान के लिए अनर्घ पद की प्राप्ति को अर्घ समर्पित करता हूँ।

सम्मेद शैलभारी, हन कर अघाति मोक्ष जिन पाई।
जेठ चतुर्दशि-कारी, मैं पूजूं सिद्धथान सुखदाई॥

हरी द्रोपदी धातकी खंड मांही,

तुम्हीं वहां सहाई भला और नाहीं।

लियो नाम तेरो भलो शील पालो,

बचाई तहाँ ते सबै दुःख टालो ॥६ ॥

जब द्रोपदी का हरण धातकी खण्ड द्वीप के राजा पद्मनाभ ने किया तब द्रोपदी पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा उसकी सहायता करने वाला आपके सिवा कोई नहीं था उन्होंने आपके नाम मंत्र का जाप किया तब शील की रक्षा हुई और सभी दुःख दूर हो गये ।

जबै जानकी राम ने जो निकारी,

धरे गर्भ को भार उद्यान डारी।

रटो नाम तेरो सबै सौख्दाई,

करी दूर पीड़ा सुक्षण ना लगाई ॥७ ॥

जब गर्भवती सती सीता को श्री रामचन्द्रजी ने वनवास दिया उन्हें वन में छुड़वा दिया तब सीता जी ने आपके नाम मंत्र का जाप किया और सब सुखों की प्राप्ति हुई दुख दूर हो गये क्षण भी नहीं लगा ।

व्यसन सात सेवें करें तस्कराई,

सुअंजन से तारे घड़ी ना लगाई।

सहे अंजना चंदना दुःख जेते,

गये भाग सारे जरा नाम लेते ॥८ ॥

सातों व्यसनों को सेवन करने वाले तस्कर अंजन चोर को भी आपने शीघ्र तार दिया। सती अंजना और सती चन्दनवाला ने कितने भारी कष्ट सहन किये किन्तु हे भगवान आपका नाम लेते ही उनके सब दुख दूर हो गये।

घड़े बीच में सास ने नाग डारो,

भलो नाम तेरो जु सोमा संभारो।

गई काढ़ने को भई फूलमाला,

भई है विख्यातं सबै दुःख टाला ।९ ।

जब सती सोमा से रुष्ट होकर उनकी सास ने मारने के अभिप्राय से घड़े में विषैला सर्प रख दिया और सोमा के पास भेज दिया आपके नाम मंत्र की जापकर सती उस घड़े से सर्प निकालने गई तो वह सर्प फूलों की माला बन गया। आपका यश हुआ और सती के सब दुःख दूर हो गये।

इन्हें आदि देके कहाँ लों बखानें,
सुनो विरद भारी तिहुँ लोक जानें।
अजी नाथ मेरी जरा ओर हेरो,
बड़ी नाव तेरी रती बोझ मेरो ॥१०॥

इन सबको मुख्य करके कथन किया है और कहाँ तक कहे हमारी सामर्थ्य नहीं है आपका यश हे भगवान तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं आपका भारी यश सुनकर आपकी शरण में आया हूँ अर्थात् हे भगवान अब मेरी ओर निहारिये आप संसार सागर से पार करने वाले हैं आपकी नाव बहुत बड़ी है और मेरा बोझ रत्ती भर का है अर्थात् हे भगवान मुझे भी अपनी नाव में बिठाकर संसार समुद्र से पार कीजिए।

गहो हाथ स्वामी करो वेग पारा,
कहूँ क्या अबै आपनी मैं पुकारा।
सबै ज्ञान के बीच भासी तुम्हारे,
करो देर नाहीं मेरे शांति प्यारे ॥११॥

हे भगवान आप मेरा हाथ पकड़कर मुझे शीघ्र पार कीजिए हे भगवान मैं अपनी पुकार कहाँ तक करूं आपके ज्ञान में तो सभी प्रकाशित हो रहा है अर्थात् हे भगवान, हे मेरे प्यारे शान्तिनाथ भगवान अब मुझे पार करने में देरी मत कीजिए।

घत्ता

श्री शांति तुम्हारी, कीरत भारी, सुर नरनारी गुणमाला।
'बख्तावर' ध्यावे, रतन सु गावे, मम दुख दारिद सब टाला ॥१२॥

ओं ह्रीं श्री शान्तिनाथ-जिनेन्द्राय अनर्घ-पद-प्राप्ताय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

हे शान्तिनाथ भगवान आपकी यश कीर्ती को सभी नर-नारी गाते हैं उनके

सदा आपकी सेवा करता हूँ, मुझे कभी न भूलिये और अविनाशी मोक्ष का निवास दीजिए।

ओं ह्रीं श्री पार्श्वनाथ भगवान के लिए जन्म जरा और मृत्यु के नाश करने को जल समर्पित करता हूँ।

चंदनादि केशरादि स्वच्छ गंध लीजिये।
आप चरण चर्च मोहताप को हनीजिये ॥पार्श्व ॥२।

ओं ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चंदनं नि० स्वाहा।

चन्दन, केशर आदि प्रासुक उज्ज्वल सुगंधित द्रव्य से मोह के ताप को नष्ट करने के लिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ। हे पार्श्वनाथ भगवान मैं सदा आपकी सेवा करता हूँ। मुझे कभी न भूलिए और अविनाशी मोक्ष का निवास दीजिए।

ओं ह्रीं श्री पार्श्वनाथ भगवान के लिए संसार ताप के नाश करने को चंदन समर्पित करता हूँ।

फेन चंद के समान अक्षतान् लाइकैं।
चर्नके समीप सार पुंजको रचाइकैं ॥पार्श्व ॥३ ॥

ओं ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्व० ।

चन्द्रमा की चांदनी के समान श्वेत उज्जवल अक्षत लाकर आपके चरण कमलों के पास पुंज बनाकर कर चढ़ाता हूँ। हे पार्श्वनाथ भगवान मैं सदा आपकी सेवा करता हूँ मुझे कभी न भूलिए और अविनाशी मोक्ष का निवास दीजिए।

ओं ह्रीं श्री पार्श्वनाथ भगवान के लिए अक्षय पद की प्राप्ति को अक्षत समर्पित करता हूँ।

केवड़ा गुलाब और केतकी चुनाइकैं।
धार चर्नके समीप कामको नसाइकैं ॥पार्श्व ॥४ ॥

ओं ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्व० स्वाहा।

केवड़ा, गुलाब, केतकी आदि उत्कृष्ट पुष्पों को चुन-चुनकर आपके चरणों के समीप रखकर (चढ़ाकर) काम रूपी शत्रु को नष्ट करना चाहता हूँ। हे पार्श्वनाथ भगवान मैं सदा आपकी सेवा करता हूँ मुझे कभी न भूलिए और अविनाशी मोक्ष का निवास दीजिए।

ओं ह्रीं श्री पार्श्वनाथ भगवन के लिए काम दाह के नाश करने को पुष्प समर्पित करता हूँ।

घेवरादि बावरादि मिष्ट सर्पि में सने।
आप चर्न चर्चतें क्षुधादिरोग को हने ॥पार्श्व ॥५ ॥

ओं ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व० स्वाहा।

घेवर बावर आदि मीठे मधुर ताजे घृत में सने पकवान, क्षुधा आदि रोगों के नाश करने को आपके चरणों में समर्पित करता हूँ। हे पार्श्वनाथ भगवान मैं आपकी सदा सेवा करता हूँ मुझे कभी न भूलिए और अविनाशी मोक्ष का निवास दीजिए।

ओं ह्री श्री पार्श्वनाथ भगवान के लिए क्षुधारोग के नाश को नैवेद्य समर्पित करता हूँ।

लाय रत्न दीपको सनेहपूर के भरूं।
वातिका कपूर वारि मोह ध्वांतकों हरूँ ॥पार्श्व ॥६ ।

ओं ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्व० स्वाहा।

रत्नों का दीपक घृत से भरा हुआ जिसमें कपूर की बाती जलती है। ऐसा दीप मोहरूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए आपके चरणों में समर्पित करता हूँ। हे पार्श्वनाथ भगवान मैं आपकी सदा सेवा करता हूँ मुझे कभी न भूलिए और अविनाशी मोक्ष का निवास दीजिए।

ओं ह्रीं श्री पार्श्वनाथ भगवान के लिए मोह रूपी अंधकार के नाश करने को दीप समर्पित करता हूँ।

धूप गंध लेयकैं सुअगनिसंग जारिये।
तास धूप के सुसंग अष्टकर्म वारिये ॥पार्श्व ॥७ ॥

ओं ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्व० स्वाहा।

सुगंधित धूप लेकर अग्नि में जलाता हूँ। हे भगवान इस धूप के साथ मेरे अष्ट कर्म भी जला दीजिए। हे पार्श्वनाथ भगवान मैं आपकी सदा सेवा करता हूँ मुझे कभी न भूलिए और अविनाशी मोक्ष का निवास दीजिए।

ओं ह्रीं श्री पार्श्वनाथ भगवान के लिए आठ कर्मों के नाश करने को धूप समर्पित करता हूँ।

खारिकादि चिरभटादि रत्न थाल में भरूं।
हर्ष धारिकैं जजूं सुमोक्ष सौख्य को वरूं
पार्श्व नाथ देव सेव आपकी करूँ सदा।
दीजिये निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा॥८॥

ओं ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्व० स्वाहा।

खारक, ककड़ी आदि उत्तम उत्तम फल रत्न थाल में भरकर हर्षित भाव से पूजन अर्चन कर मोक्ष को प्राप्त करना चाहता हूँ। हे पार्श्वनाथ भगवान मैं सदा आपकी सेवा करता हूँ। मुझे कभी न भूलिए और अविनाशी मोक्ष का निवास दीजिए।

ओं ह्रीं श्री पार्श्वनाथ भगवान के लिए मोक्ष रूपी फल की प्राप्ति को फल समर्पित करता हूँ।

नीरगंध अक्षतान पुष्प चरू लीजिए।
दीप धूप श्रीफलादि अर्घ तैं जजीजिये॥पार्श्व।९।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्व० स्वाहा।

जल, चन्दन, अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप फल (श्रीफल) आदि आठों द्रव्यों के अर्घ से आपकी पूजन करता हूँ हे पार्श्वनाथ भगवान मैं सदा आपकी सेवा करता हूँ मुझे कभी न भूलिए और अविनाशी मोक्ष का निवास दीजिए।

ओं ह्रीं श्री पार्श्वनाथ भगवान के लिए अनर्घ पद की प्राप्ति को अर्घ समर्पित करता हूँ।

पंचकल्याणक

शुभप्राणत स्वर्ग विहाये, वामा माता उर आये।
वैशाख तनी दुतिकारी, हम पूजें विघ्न निवारी॥१॥

ओं ह्रीं वैशाखकृष्णद्वितीयायां गर्भमंगल मंडिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्राणत स्वर्ग से आयु पूर्ण कर वैसाख कृष्ण द्वितीया को श्री वामा देवी के गर्भ में आये उन पार्श्वनाथ भगवान की विघ्नों को नष्ट करने के लिए पूजन करता हूँ।

ओं ह्रीं वैसाख कृष्ण द्वितीया को गर्भ कल्याणक प्राप्त करने वाले श्री पार्श्व नाथ भगवान के लिए अनर्घ पद की प्राप्ति को अर्घ समर्पित करता हूँ।

जनमे त्रिभुवन सुखदाता, एकादशि पौष विख्याता।
श्यामा तन अद्भुत राजै, रवि कोटिक तेज सु लाजै॥२॥

ओं ह्रीं पौषकृष्णएकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पौष कृष्ण एकादशी को तीनों लोकों को सुख देने वाले, श्याम वर्ण वाले सुन्दर शरीर के धारक जिनकी द्युति करोड़ो सूर्य के तेज से भी उत्कृष्ट द्युति को भी जीतने वाली है, पार्श्वनाथ भगवान का जन्म हुआ था उनकी हम पूजन करते हैं।

ओं ह्रीं पौष कृष्ण एकादशी को जन्म कल्याणक प्राप्त करने वाले श्री पार्श्वनाथ भगवान के लिए अनर्घ पद की प्राप्ति को अर्घ समर्पित करता हूँ।

कलि पौष एकादशि आई, तब बारह भावन भाई।
अपने कर लौंच सु कीना, हम पूजैं चरन जजीना।३।

ओं ह्रीं पौषकृष्णएकादश्यां तपोमंगल प्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथ जिनेंद्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पौष कृष्ण एकादशी को बारह भावनाओं का चिन्तन कर अपने हाथों से पंच मुष्ठि केश लौंच कर दीक्षा धारण की उन पार्श्वनाथ भगवान की अष्ट द्रव्य से पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं पौष कृष्ण एकादशी को तप कल्याणक प्राप्त करने वाले श्री पार्श्वनाथ भगवान के लिए अनर्घ पद की प्राप्ति को अर्घ समर्पित करता हूँ।

कलि चैत चतुर्थी आई, प्रभु केवल ज्ञान उपाई।
तब प्रभु उपदेश जु कीना, भवि जीवन को सुख दीना॥४॥

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णचतुर्थ्यां केवलज्ञानमंडिताय श्री पार्श्व जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैत कृष्ण चतुर्थी के दिन केवल ज्ञान की प्राप्ति कर भव्य जीवों को सुख का देने वाला उपदेश दिया उन पार्श्वनाथ भगवान की पूजा करता हूँ।

औं ह्रीं चैत कृष्ण चतुर्थी के दिन ज्ञान कल्याणक प्राप्त करने वाले श्री पार्श्वनाथ भगवान के लिए अनर्घ पद की प्राप्ति को अर्घ समर्पित करता हूँ।

सित सातैं सावन आई, शिवनारि वरी जिनराई।
सम्मेदाचल हरि माना, हम पूजैं मोक्ष कल्याना।।५।।

ओं ह्रीं श्रावण-शुक्ल-सप्तम्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

श्रावण शुक्ल सप्तमी के दिन सम्मेद शिखर से मुक्ति रूपी स्त्री का वरण किया था। इन्द्रों ने आकर उत्सव पूर्वक पूजा की हे भगवान हम भी मोक्ष कल्याण की पूजा करते हैं।

ओं ह्रीं श्रावण शुक्ल सप्तमी के दिन मोक्ष कल्याणक प्राप्त करने वाले श्री पार्श्वनाथ भगवान के लिए अनर्घ पद की प्राप्ति को अर्घ समर्पित करता हूँ।

जयमाला

पारसनाथ जिनेंद्रतने वच, पौन भखी जरते सुन पाये।
करयो सरधान लह्यो पद आन भये पद्मावति शेष कहाये।
नाम प्रताप टरैं संताप सु, भव्यन को शिवशर्म दिखाये।
हे अश्वसैन के नंद भले, गुण गावत हैं तुमरे हर्षाये।।१।।

श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र भगवान के वचन उन जलते हुए नाग नागिन ने सुने और उनका श्रद्धान किया जिससे उन्हें धरणेन्द्र पद्मावती पद प्राप्त हुआ आपके नाम के प्रताप से ही समस्त संताप नष्ट हो जाते हैं भव्य जीवों को मोक्ष सुख दिलाने वाले हे अश्वसेन के नंदन सबका भला करने वाले है। हम (मैं) हर्षित होकर आपका गुणगान करते हैं।

दोहा-केकी-कंठ समान छबि, वपु उतंग नव हाथ।
लक्षण उरग निहार पग, वंदों पारसनाथ।।

मयूर के कंठ के समान नीला रंग, नौ हाथ ऊँचा शरीर, और दायें पांव में सर्प का चिन्ह देखकर हे पार्श्वनाथ भगवान मैं आपकी वंदना करता हूँ।

पद्धरी छंद

रची नगरी छह मास अगार। बने चहुं गोपुर शोभ अपार।
सु कोट तनी रचना छबि देत। कंगूरन पै लहकैं बहुकेत।३।

भगवान के गर्भ में आने के छह माह पूर्व से ही इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने बनारस नगर की रचना की नगर के चारों ओर बहुत ही सुन्दर कोट और चार दरवाजे बनाये कोट पर कंगूरा और कंगूरों पर ध्वजायें फहराई।

बनारस की रचना जु अपार। करी बहु भाँति धनेश तैयार।
तहाँ अश्वसेन नरेन्द्र उदार। करैं सुख वाम सुदे पटनार।४।

कुबेर ने बनारस नगर की अनेक प्रकार से बहुत ही सुन्दर रचना की वहाँ अश्वसेन राजा अपनी पटरानी वामादेवी के साथ राज्य करते थे।

तज्यो तुम प्रानत नाम विमान। भये तिनके वर नंदन आन।
तबै सुर इंद्र नियोगनि आय। गिरिंद करी विधि न्हौन सुजाय।५।

हे पार्श्वनाथ भगवान आप प्राणत स्वर्ग से आयुपूर्ण कर अश्वसेन और वामादेवी के सुपुत्र हुए तब इन्द्र ने अपनी इन्द्राणी के साथ आकर बालक पार्श्वनाथ का सुमेरु पर्वत पर क्षीरसागर के जल से न्हवन किया था।

पिता-घर सौंपि गये निज धाम। कुबेर करै वसु जाम सुकाम।
बढ़े जिन दोज मयंक समान। रमैं बहु बालक निर्जर आन।६।

न्हवन करने के बाद पिता अश्वसेन के घर माता को सौंप इन्द्र और देव अपने-अपने स्वर्ग चले गये और कुबेर को आठों प्रहर भगवान की सेवा के अनुकूल कार्य करने का आदेश दिया। भगवान दोज के चन्द्रमा के समान वृद्धि को प्राप्त हुए बहुत बालक आकर बालक पारस नाथ के साथ क्रीड़ा करते थे।

भए जब अष्टम वर्ष कुमार। धरे अणुव्रत महा सुखकार।
पिता जब आन करी अरदास। करो तुम ब्याह वरो ममआस।७।

जब पारस कुमार आठ वर्ष के हुए तब आपने अणुव्रत* धारण किये जब कुमारावस्था पूर्ण हुई और युवावस्था को प्राप्त हुए तब पिताजी ने निवेदन किया कि विवाह करके मेरी आशा पूरी करो।

* तीर्थंकर अणुव्रत धारण नहीं करते वे तो सीधे महाव्रत धारण करते हैं ऐसा आगम ग्रन्थों में वर्णन मिलता है।

करी तब नाहिं रहे जग चंद। किये तुम काम कषाय जुमंद।
चढ़े गजराज कुमारन संग। सुदेखत गंगतनी सुतरंग।८।

तब पारस कुमार ने विवाह से इन्कार कर संसार के चक्र से अलग रहकर कषाय और काम को मंद किया। एक दिन पार्श्वकुमार हाथी पर सवार होकर अपने साथियों के साथ गंगा नदी की लहरों को देखने निकले।

लख्यो इक रंक करै तप घोर। चहूदिशि अगनि बलै अति जोर।
कहै जिननाथ अरे सुन भ्रात। करै बहु जीवन की मत घात।९।

उन्होंने वहाँ एक तापस को कठिन तप करते हुए देखा वह अपने चारों ओर अग्नि जलाकर तप कर रहा था वहाँ पहुँचकर जिननाथ ने कहा हे भाई तुम बहुत जीवों का घात मत करो।

भयो तब कोप कहै कित जीव। जले तब नाग दिखाय सजीव।
लख्यो यह कारण भावन भाय। नये दिव ब्रह्मरिषीसुर आय।१०।

वह तापसी आप की बात सुन कुपित हो उठा और कहने लगा जीवों का घात कहाँ हो रहा है तब पार्श्व कुमार ने ईधन से अधजले नाग नागिन को दिखा दिया यह देखकर पार्श्व कुमार को वैराग्य हो गया और उनका मन बारह भावना का चिन्तन करने लगा तभी ब्रह्म स्वर्ग के अन्त में निवास करने वाले लौकान्तिक देव आये और पार्श्व कुमार से कहने लगे आप बहुत अच्छा विचार कर रहे हैं। आपको दीक्षा धारण करना चाहिए।

तबहिं सुर चार प्रकार नियोग। धरी शिविका निज कंध मनोग
कियो वन माहिं निवास जिनंद। धरे व्रत चारित आनंदकंद।११।

उसी समय चारो निकाय के देव आये और पार्श्व कुमार को पालकी में बैठाकर वन में ले गये वहाँ उन्होंने जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली और आनंद को देने वाले व्रत चरित्र धारण कर लिए।

गहे तहं अष्टम के उपवास। गये धनदत्त तने जु अवास।
दियो पयदान महासुखकार। भई पन वृष्टि तहां तिहिं बार।१२।

तीन दिन का उपवास ग्रहण किया और उपवास पूर्ण होने पर धनदत्त के घर पारण करने गये, वहाँ धन दत्त ने गौ दूध की खीर का आहार दिया। महासुख को देने वाले आहार दान के कारण वहाँ पंचाश्चर्य होने लगे।

गये तब कानन माहिं दयाल। धरयो तुम योग सबहिं अघ टाल
तबै वह धूम सुकेतु अयान। भयो कमठाचर को सुर आन ।१३।

और फिर भगवान तपस्या करने वन में चले गये। वहाँ पापों को दूर करने वाले ध्यान को धारण कर लिया उसी समय धूम केतू नामक देव पूर्व भव का बैरी कमठ का जीव वहाँ पहुँच गया।

करै नभ गौन लखे तुम धीर। जु पूरब बैर विचार गहीर।
कियो उपसर्ग भयानक घोर। चली बहु तीक्षण पवन झकोर।१४।

आकाश में गमन करते हुए उसने (कमठ के जीव ने) अपने पूर्व भव का वैर विचार कर आकाश में भयानक शब्द किये बहुत जोर से हवा चलाई भयानक उपसर्ग करने लगा।

रह्यो दशहूं दिश में तम छाय। लगी बहु अग्नि लखी नहिं जाय।
सुरुण्डन केबिन मुण्ड दिखाय। पड़ै जल मूसलधार अथाय।१५।

दशों दिशा में अन्धकार छा गया, बहुत जोर से अग्नि जलने लगी, जो बहुत ही भयानक दिख रही थी, धड़ के बिना सिर और सिर के बिना धड़ दिखाई दे रहे थे और भयानक मूसलाधार वर्षा हो रही थी।

तबै पद्मावति-कंत धनिंद। नये जुग आय जहाँ जिनचंद।
भग्योतबरंक सुदेखत हाल। लह्यो तब केवलज्ञानविशाल।१६।

तभी पद्मावती देवी और उनके पति धरणेन्द्र दोनों वहाँ आ पहुँच गये और भगवना को नमस्कार किया इन को देखते ही वह दुष्ट धूमकेतू भाग गया धरणेन्द्र और पद्मावती ने उपसर्ग दूर किया तभी शुक्ल ध्यान के द्वारा भगवान को केवल ज्ञान की प्राप्ति हो गई।

दियो उपदेश महा हितकार। सुभव्यन बोध समेद पधार।
सुवर्णभद्र जहाँ कूट प्रसिद्ध। वरी शिवनारि लही वसुरिद्ध।१७।

फिर भगवान ने भव्य जीवों को सुख देने वाला हितकारी उपदेश दिया और अन्त में सम्मेद शिखर पधारे। वहाँ सुवर्णभद्र कूट कर जाकर योग निरोध कर आठ रिद्धियाँ प्राप्त कर मोक्ष रूपी लक्ष्मी का वरण किया।

जजूं तुम चरन दोउ कर जोर। प्रभूलखिये अबही मम ओर।
कहै 'बखतावर' रत्नबनाय। जिनेश हमें भव पार लगाय।१८।

हे भगवान आपके चरणों की पूजा मैं दोनों हाथ जोड़कर करता हूँ। अब आप मेरी ओर देखिये श्री बख्तावर रत्न कवि कहते हैं कि हे जिनेन्द्र भगवान अब हमें भी संसार सागर से पार उतारो।

घत्ता-

जय पारस देवं सुरकृत सेवं। वंदत चर्न सुनागपती।
करुणा के धारी पर उपकारी, शिवसुखकारी कर्महती।१९।

ओं ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिन पार्श्वनाथ भगवान की देव सेवा करते हैं, जिनके चरणों की वन्दना धरणेन्द्र देव करते हैं करुणा को धारण करने वाले हैं दूसरों का उपकार करने वाले हैं, मोक्ष सुख को देने वाले हैं जो आठ कर्म नाश करने वाले हैं उन पार्श्वनाथ भगवान की जय हो।

ओं ह्रीं श्री पार्श्वनाथ भगवान के लिए अनर्घ्य पद की प्राप्ति को अर्घ समर्पित करता हूँ।

अडिल्ल-जो पूजै मन लाय भव्य पारस प्रभु नितही।
ताके दुख सब जांय भीति व्यापै नहिं कित ही॥
सुख संपति अधिकाय पुत्र मित्रादिक सारे।
अनुक्रमसों शिव लहै, 'रत्न' इमि कहै पुकारे॥२०॥

इत्याशीर्वादः।

जो भव्य जीव भगवान की प्रतिदिन पूजा मन लगाकर करते हैं उनके सभी दुःख दूर हो जाते हैं किसी प्रकार का भय उन्हें कभी भी नहीं होता एवं सुख सम्पत्ति पुत्र मित्रादिक सभी प्राप्त होते हैं और क्रम क्रम से सुख भोगते-भोगते मोक्ष प्राप्त करते हैं इस प्रकार बख्तावर रत्न कवि कहते हैं।

(इत्याशीर्वाद)

श्री महावीर जिन पूजा

मत्तगयन्द

श्रीमत वीर हरें भवपीर, भरें सुखसीर अनाकुलताई।
केहरि अंक अरीकरदंक, नये हरि पंकति मौलि सुआई।।
मैं तुमको इत थापत हौं प्रभु, भक्ति समेत हिये हरषाई।
हे करुणा-धन-धारक देव, इहां अब तिष्ठहु शीघ्रहि आई।।

ओं ह्रीं श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर। संवौषट् ।आह्वाननं।
ओं ह्रीं श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। स्थापनम्।
ओं ह्रीं श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट् ।सन्निधिकरणं।

अनंत चतुष्टायादि अन्तरंग लक्ष्मी एवं समवशरणादि बहिरंग लक्ष्मी के धारक श्री महावीर भगवान संसार के दुःखों को दूर करने वाले हैं एवं आत्मा के स्वाभाविक सुख जो आकुलता रहित है उसे प्रदान करने वाले हैं। जिनके शेर का चिन्ह है जिन्होंने अपने सभी कर्मरूपी शत्रुओं को नष्ट कर दिया है जिन्हें मुकुट को धारण करने वाले इन्द्र, देव आदि नमस्कार करते हैं ऐसे श्री महावीर भगवान की हृदय में भक्ति और हर्ष धारण कर स्थापना करता हूँ। हे दया करुणा रूपी धन को धारण करने वाले भगवान अब आप शीघ्र ही यहाँ आकर ठहरिये।

ओं ह्रीं श्रीमहावीर भगवान यहाँ आइये आइये।
ओं ह्रीं श्री महावीर भगवान यहाँ ठहरिये ठहरिये।
ओं ह्रीं श्री महावीर भगवान यहाँ मेरे और समीप हूजिए।

अष्टक

(चाल-द्यानतरायकृत नंदीश्वराष्टकादिक अनेक रागों में बनती है।)

क्षीरोदधिसम शुचि नीर, कंचन भृंग भरों।
प्रभु वेग हरो भवपीर, यातें धार करों।।
श्रीवीर महा अतिवीर, सन्मति नायक हो।
जय वर्द्धमान गुणधीर, सन्मतिदायक हो।।१।।

ओं ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वा० स्वाहा।

क्षीर समुद्र के समान पवित्र जल सोने के कलश में भरकर हे भगवान आपके चरणों में धार दे रहा हूँ। आप हमारे संसार के दुःखों को शीघ्र नष्ट कीजिए। हे वीर महावीर, अतिवीर, सन्मति, वर्धमान आप सम्यज्ञान के स्वामी हो वृद्धि को प्राप्त होने वाले गुणों के भंडार हो सम्यक ज्ञान को देने वाले हो आपकी जय हो।

ओं ह्री श्रीमहावीर भगवान के लिए जन्म जरा मृत्यु को नष्ट करने को जल समर्पित करता हूँ।

मलयागिर चन्दनसार, केसर संग घसों।
प्रभु भवआताप निवार, पूजत हिय हुलसों। श्रीवीर०

ओं ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चंदनं नि० स्वाहा ॥२॥

मलयागिर का उत्कृष्ट चन्दन केशर के साथ घिसकर मन में अति उत्साह और प्रसन्नता धारण कर हे भगवान आपकी चन्दन से पूजा करता हूँ। आप शीघ्र ही संसार के आताप को नष्ट कीजिए। हे वीर महावीर अति वीर सन्मति वर्धमान आप समयक् ज्ञान के स्वामी हो वृद्धि को प्राप्त होने वाले गुणों के भंडार हो सम्यक् ज्ञान को देने वाले हो आपकी जय हो।

ओं ह्रीं श्रीमहावीर भगवान के लिए संसार ताप के नष्ट करने को चन्दन समर्पित करता हूँ।

तंदुलसित शशिसम शुद्ध, लीनों थार भरी।
तसु पुंज धरों अविरुद्ध, पावों शिवनगरी। श्रीवीर०

ओं ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वा० स्वाहा ॥३॥

चन्द्रमा के समान उज्जवल और शुद्ध थाली भर चावलों के पुंज अविनाशी मोक्ष पद को प्राप्त करने के लिए आपके चरणों में चढ़ाता हूँ। हे वीर महावीर अतिवीर सन्मति वर्धमान आप सम्यक् ज्ञान के स्वामी हो वृद्धि को प्राप्त होने वाले गुणों के भंडार है। सम्यक् ज्ञान को देने वाले हो आपकी जय हो।

ओं ह्रीं श्री महावीर भगवान के लिए अक्षय पद की प्राप्ति को अक्षत समर्पित करता हूँ।

सुरतरु के सुमन समेत, सुमन सुमन प्यारे।
सो मनमथ भंजन हेत, पूजों पद थारे। श्रीवीर०

ओं ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं नि० स्वाहा ॥४॥

मन को अच्छे लगने वाले कल्पवृक्ष के पुष्पों से काम दाह काम की वेदना को नष्ट करने के लिए हे भगवान पुष्पों से आपके चरणों की पूजा करता हूँ। हे वीर, महावीर, अतिवीर सन्मति, वर्धमान, आप सम्यग्ज्ञान के स्वामी हो वृद्धि को प्राप्त होने वाले गुणों के भंडार हो सम्यक् ज्ञान को देने वाले हो आपकी जय हो।

ओं ह्रीं श्री महावीर भगवान के लिए काम दाह के नष्ट करने को पुष्प समर्पित है।

रसरज्जत सज्जत सद्य, मज्जत थार भरी।
पद जज्जत रज्जत अद्य, भज्जत भूख अरी। श्रीवीर०

ओं ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि० स्वाहा ॥५॥

रस युक्त स्वादिष्ट ताजे पकवान स्वर्ण थाल में सुन्दरता पूर्वक भरकर भूख (क्षुधा) रूपी शत्रु को नष्ट करने के लिए आपके चरणों में प्रीति पूर्वक समर्पित कर पूजन करता हूँ हे वीर, अति वीर, महावीर सन्मति, वर्धमान आप सम्यग्ज्ञान के स्वामी हैं वृद्धि को प्राप्त होने वाले गुणों के भंडार है। और सम्यग्ज्ञान को देने वाले हैं आपकी जय हो।

ओं ह्रीं श्रीमहावीर भगवान के लिए क्षुधा रूपी रोग को नष्ट करने को नैवेद्य समर्पित करता हूँ।

तमखंडित मंडित नेह, दीपक जोवत हों।
तुम पदतर हे सुखगेह, भ्रमतम खोवत हों॥ श्रीवीर०

ओं ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वा० स्वाहा ।६।

हे महावीर भगवान अंधकार को नष्ट करने वाला घी से भरा दीपक जलाकर भ्रम का नाश करने के लिए ये दीपक आपके चरणों में चढ़ाता हूँ। आप सुख के भंडार हो मेरे अज्ञान अंधकार को दूर कीजिए। हे वीर महावीर, अतिवीर, सन्मति, वर्धमान आप सम्यज्ञान के स्वामी हैं। वृद्धि को प्राप्त होने वाले गुणों के भंडार है। और सम्यग्ज्ञान को देने वाले हैं आपकी जय हो।

ओं ह्रीं श्री महावीर भगवान के लिए मोहरूपी अंधकार को नष्ट करने को दीपक समर्पित है।

हरिचंदन अगर कपूर, चूर सुगंध करा।
तुम पदतर खेवत भूरि, आठौं कर्म जरा।। श्रीवीर०

ओं ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं नि० ॥७॥

हे वीर प्रभू ! हरि चन्दन, अगर, कपूर आदि सुगंधित द्रव्य को पीसकर सुंगधित धूप आपके चरणों में आठ कर्मों को जलाने के लिए अग्नि में खेता हूँ। हे वीर, अतिवीर, महावीर, सन्मति, वर्धमान आप सम्यगज्ञान के स्वामी हैं वृद्धि को प्राप्त होने वाले गुणों के भंडार है, सम्यग्ज्ञान को देने वाले हैं आपकी जय हो।

ओं ह्रीं श्री महावीर भगवान के लिए अष्ट कर्म का नाश करने को धूप समर्पित करता हूँ।

रितुफल कल-वर्जित लाय, कंचन थार भरों।
शिव फलहित हे जिनराय, तुम ढिंग भेंट धरों।
श्री वीर महा अतिवीर, सन्मति नायक हो।
जय वर्द्धमान गुणधीर, सन्मति दायक हो।।

ओं ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वा० स्वाहा ॥८॥

छहों ऋतुओं के उत्तम दोष रहित फल स्वर्ण के थाल में भरकर मोक्ष फल की प्राप्ति के लिए हे भगवान आपके चरणों के निकट चढ़ाता हूँ। हे वीर, महावीर, अतिवीर सन्मति, वर्धमान आप सम्यज्ञान के स्वामी हो गुणों के भंडार हो सम्यज्ञान को देने वाले हो आपकी जय हो।

ओं ह्रीं श्री महावीर भगवान के लिए मोक्षफल की प्राप्ति को फल समर्पित करता हूँ।

जल फल वसु सजि हिम थार, तन मन मोद धरों।
गुणगाऊँ भवदधितार, पूजत पाप हरों। श्रीवीर०

ओं ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्व० ॥९॥

हे वीर प्रभु जल, चन्दन, अक्षत पुष्प, नैवेद्य दीप धूप फल आदि आठों द्रव्यों को स्वर्ण थाल में सजाकर तनमन में हर्षित होकर आपके गुणों का स्तवन करता हूँ सभी पापों को नष्ट करने वाले और भव रूपी सागर से पार लगाने वाले भगवान की पूजन करता हूँ। हे वीर अतिवीर, महावीर, सन्मति, वर्धमान, आप सम्यज्ञान के स्वामी हैं गुणों के भंडार हैं सम्यज्ञान को देने वाले हैं आपकी जय हो।

ओं ह्रीं श्री महावीर भगवान के लिए अमूल्य पद की प्राप्ति को यह मूल्यवान अर्घ समर्पित करता हूँ।

पंचकल्याणक

मोहि राखो हो सरना, श्री वर्द्धमान जिन राजयजी, मोहिराखो० ॥
गरभ साढ़सित छट्ट लियो तिथि, त्रिशला उर अघ हरना।
सुर सुरपति तित सेव करी नित, मैं पूजूं भवतरना॥ मोहि०

ओं ह्रीं आषाढ़ शुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगल मंडिताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

हे वर्धमान जिनेन्द्र मुझे आप अपनी शरण में ले लीजिए। आषाढ़ शुक्ल छठमी के दिन हे पापों को नष्ट करने वाले हे भगवान आप माता त्रिशला के गर्भ में आये। इन्द्र और देवताओं ने आपकी सेवा की मैं भी संसार सागर से पार होने के लिए आपकी पूजा करता हूँ। आप मुझे अपनी शरण में लीजिए।

ओं ह्रीं आषाढ़ शुक्ल छठवी के दिन गर्भ कल्याणक प्राप्त करने वाले श्री महावीर भगवान के लिए अनर्घ पद की प्राप्ति को अर्घ समर्पित करता हूँ।

जनम चैत सित तेरस के दिन, कुण्डलपुर कनवरना।
सुरगिरि सुरगुरु पूज रचायो, मैं पूजों भवहरना॥
मोहि राखो हो० ॥

ओं ह्रीं चैत्रशुक्ला त्रयोदश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

चैत शुक्ल त्रयोदशी के दिन कुण्डलपुर में जन्म लिया तब इन्द्रों ने सुमेरू पर्वत पर जाकर अभिषेक, पूजन की मैं भी भवों के अन्त करने के लिए आपकी पूजन करता हूँ। हे वर्धमान भगवान आप मुझे अपनी शरण में लीजिए।

ओं ह्रीं चैत शुक्ल त्रयोदशी को जन्म कल्याणक प्राप्त करने वाले श्री महावीर भगवान के लिए अनर्घ पद की प्राप्ति को अर्घ समर्पित करता हूँ।

मंगसिर असित मनोहर दशमी, ता दिन तप आचरना। नृप कुमार घर पारन कीनों, मैं पूजों तुम चरना॥ मोहि राखो हो० ॥

ओं ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोमंगलमंडिताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥३ ॥

मृगसिर कृष्ण दशमी के दिन दीक्षा धारण कर तपस्या की थी। कुल राजा के यहाँ पारणा की थी। मैं आपके चरण कमलों की पूजा करता हूँ। हे वर्धमान भगवान आप मुझे अपनी शरण में ले लीजिए।

ओं ह्रीं मृगसिर कृष्ण दशमी को तप कल्याणक प्राप्त करने वाले श्री महावीर भगवान के लिए अनर्घ पद की प्राप्ति को अर्घ समर्पित करता हूँ।

शुक्लदशैं वैसाख दिवस अरि, घात चतुक क्षय करना. केवललहि भवि भवसर तारे, जजों चरन सुख भरना॥ मोहि राखो हो ॥

ओं ह्रीं वैशाखशुक्ल-दशम्यां केवलज्ञानमंडिताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥४ ॥

वैशाख शुक्ल दशमी के दिन चार घातिया कर्म रूपी शत्रुओं का नाश कर केवल ज्ञान प्राप्त किया और भव्य जीवों को भव सागर से पार उतारा था। शाश्वत सुख की प्राप्ति के लिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ। हे वर्धमान भगवान मुझे आप अपनी शरण में लीजिए।

ओं ह्रीं वैशाख शुक्ल दशमी के दिन ज्ञान कल्याणक प्राप्त करने वाले श्रीमहावीर भगवान के लिए अनर्घ पद की प्राप्ति के लिए अर्घ समर्पित करता हूँ।

कार्तिक श्याम अमावस शिवतिय, पावापुरतैं वरना। गणफनिवृन्द जजें तित बहुविध मैं पूजों भयहरना॥ मोहि रखा हो० ॥

ओं ह्रीं कार्तिककृष्णअमावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥५ ॥

कार्तिक कृष्ण अमावस्या के दिन पावापुर से मुक्ति प्राप्त की थी। आपकी पूजा अर्चना गणधर और धरणेन्द्र देव आदि बहुत प्रकार से करते थे। मैं संसार से दुःखों के भय को दूर करने के लिए आपकी पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं कार्तिक कृष्ण अमावस्या के दिन मोक्ष कल्याणक प्राप्त करने वाले श्री महावीर भगवान के लिए अनर्घ पद की प्राप्ति को अर्घ समर्पित करता हूँ।

जयमाला। छन्द हरिगीता। २८ मात्रा।

गणधर असनिधर, चक्रधर हलधर, गदाधर वरवदा।
अरु चापधर, विद्यासुधर तिरशूलधर सेवहिं सदा॥
दुखहरन आनंदभरन तारन, तरन चरन रसाल हैं।
सुकुमाल गुण मनिमाल उन्नत भालकी जयमाल है ॥१॥

गणधर, तलवार धारण करने वाले, इन्द्र चक्र को धारण करने वाले चक्रवर्ती हल को धारण करने वाले बलदेव, गदा को धारण करने वाले नारायण, श्रेष्ठ और मधुर बोलने वाले मनुष्य धनुष धारण करने वाले, त्रिशूल धारण करने वाले, और विद्याधर आदि सभी हमेशा हे भगवान आपकी सेवा करते हैं। हे भगवान आपके चरण कमल दुःखों को हरण करने वाले आनंद को देने वाले संसार से पार करने वाले हैं। जिनका मस्तक गुणों रूपी सुकोमल मणियों के समूह से शोभायमान हो रहा है ऐसे महावीर भगवान के गुणों का वर्णन करता हूँ।

छन्द घत्तानन्द।

जय त्रिशलानंदन, हरिकृतवंदन, जगदानंदन चंदवरं।
भवतापनिकंदन, तनकनमंदन, रहित सपंदन नयन धरं।२।

आप त्रिशला माता के लाल (पुत्र) हो। देवों द्वारा पूज्य हो। जगत को आनंदित करने वाले हो। भव की ताप को नष्ट करने के लिए श्रेष्ठ चन्द्र के समान तन की काम रूपी दाह को नष्ट करने वाले हो। हे स्पन्द रहित नयनों को धारण करने वाले महावीर भगवान आपकी जय हो।

तुमरे पन मंगल माहिं सही। जिय उत्तम पुन्य लियो सबही।
हमको तुमरी शरणागत है। तुमरे गुन में मन पागत है।११।

हे भगवान आपके पाँचों कल्याणक महोत्सवों को आनंद सहित मनाकर जीव उत्कृष्ट पुण्य अर्जन करते हैं हमारे लिए तो एक आप ही शरण हैं अब हम आपके ही गुणों में अनुराग कर मन को भक्ति में ही लगाते हैं।

प्रभु मोहिय आप सदा बसिये। जबलों वसु कर्म नहीं नसिये।
तबलों तुम ध्यान हिये वरतो। तबलों श्रुतचिंतन चित्त रतो।१२।

हे भगवान जब तक मेरे आठ कर्म नष्ट नहीं हुए तब तक आप मेरे हृदय में ही निवास कीजिए एवं जब तक आठ कर्म नष्ट नहीं हुए तब तक तुम्हारा ही ध्यान रहे जिससे श्रुत चिन्तन में ही मन लगा रहे।

तबलों व्रत चारित चाहतु हों। तबलों शुभभाव सुगाहतु हों।
तबलों सतसंगति नित रहो। तबलो मम संजम चित्त गहो।१३।

तब तक मेरे अन्दर संयम का भाव रहे तब तक मेरे हृदय में सत्संगति का भाव रहे तब तक में व्रत चारित्र रहे। तब तक मेरे शुभ भाव रहें।

जबलों नहिं नाश करों अरिको, शिव नारि वरों समता धरिको
यह द्यो तबलों हमको जिनजी। हम जाचतु हैं इतनी सुनजी ।१४।

तब तक आठ कर्म रूपी शत्रु का नाश नहीं होता और जब तक मन में समता भाव धारणकर के शिवनारी का वरण नहीं करता तब तक हे भगवान ये सब चीजें हमें दीजिए हम ऐसी विनय पूर्वक याचना करते हैं मेरी इतनी टेर सुनिए।

घत्तानंद-श्रीवीरजिनेशा नमित सुरेशा, नाग नरेशा भगति भरा।
'वृन्दावन' ध्यावै विघन नशावै, वाँछित पावै शर्म वरा।१५।

ओं ह्रीं श्री वर्द्धमान जिनेन्द्राय महार्घ निर्वपामीति स्वाहा।

हे महावीर भगवान आपको भक्ति में भरकर इन्द्र, नागेन्द्र, चक्रवर्ती नमस्कार करते हैं। वृन्द्रावन लाल जी कविराज कहते हैं कि जो भव्य जीव श्री महावीर भगवान का ध्यान करते हैं उनके सभी विघ्न नष्ट हो जाते हैं और इच्छित उत्कृष्ट मोक्ष सुख प्राप्त होता है।

ओं ह्रीं श्री महावीर भगवान के लिए अनर्घ पद की प्राप्ति को अर्घ समर्पित करता हूँ।

दोहा-श्री सनमति के जुगल पद, जो पूजैं धरि प्रीति।
वृन्दावन सो चतुर नर, लहैं मुक्ति नवनीत॥

इत्याशीर्वादः।

श्री सन्मति भगवान के चरण युगल की जो प्रीति पूर्वक पूजन करता है वृन्दावन लाल कवि कहते हैं। कि वह ही चतुर अर्थात् होशयार मनुष्य है क्योंकि वह ही मोक्ष रूपी नवनीत को प्राप्त करते हैं।

इत्याशीर्वादः

पूजा हमारी आन्तरिक पवित्रता के लिए है। इसलिए पूजा के क्षणों में और पूजा के उपरान्त सारे दिन पवित्रता बनी रहे, ऐसी कोशिश हमारी होनी चाहिए। पूजा और अभिषेक जिनत्व के अत्यन्त सामीप्य का एक अवसर है। इसलिए निरन्तर इन्द्रिय और मन को जीतने का प्रयास करना और जिनत्व के समीप पहुंचना हमारा कर्त्तव्य है।

(१०८ मुनि क्षमा सागर जी)

सोलहकारण पूजा

[कविवर द्यानतराय जी]

सोलह कारण भाय तीर्थंकर जे भये।
हरषे इन्द्र अपार मेरुपै ले गये।।
पूजा करि निज धन्य लख्यौ बहु चावसौं।
हमहू षोडश कारन भावैं भावसो।।

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणानि ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् । आह्वानम् ।

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः । स्थापनं ।

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणानि ! अत्र मम सन्निहितो भवत भवत वषट् । सन्निधिकरणम् ।

भावार्थ—सोलह कारण भावनाओं को भा कर जो तीर्थंकर होते है उन्हें जन्म के समय इन्द्र मेरु पर ले जाकर अभिषेक करते हैं, मैं अत्यन्त उत्साहह और रुचिपूर्वक आपकी पूजा कर अपने आपको धन्य मान रहा हूँ और मैं भी शुद्धमन से सोलह कारण भावनाओं को भाता हूँ। बहुत रुचि पूर्वक आपके दर्शन करता है अतः मैं भी अपने आपको धन्य मानता हुआ सोलह कारण भावनाओं को शुद्ध मन से भाता हूँ।

ओं ह्रीं सोलह कारण भावना, यहाँ आइये आइये ।

ओं ह्री सोलह कारण भावना । यहाँ ठहरिये ठहरिये ।

ओं ह्री सोलह कारण भावना । यहाँ मेरे और समीप होइये होइये ।

कंचन-झारी निरमल नीर पूजों जिनवर गुन-गंभीर।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।

+ अत्यन्त हर्ष से इन्द्र मेरु पर ले जाकर अभिषेक कर पूजा करता हुआ अपने आपको धन्य मानता है

दरशविशुद्धि भावना भाय सोलह तीर्थंकर-पद-पाय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध 1. विनयसम्पन्नता 2. शीलव्रतेष्वनतीचार 3. अभीक्ष्णज्ञानोपयोग 4. संवेग 5. शक्तितस्त्याग 6. शक्तितस्तप 7. साधुसमाधि 8. वैयावृत्यकरण 9. अर्हद्भक्ति 10. आचार्यभक्ति 11. बहुश्रुतभक्ति 12. प्रवचनभक्ति 13. आवश्यकापरिहाणि 14. मार्गप्रभावना 15. प्रवचनवात्सल्य 16. इतिषोडशकारणेभ्यो नमः जलं ॥1 ॥नि० स्वाहा।

भावार्थ—स्वर्ण झारी में स्वच्छ जल लेकर गुण के भंडार जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता हूँ। हे नाथ आपकी जय हो जय हो आप परमगुरु हो, आप परम गुरु हो। दर्शन विशुद्ध आदि सोलह भावनाओं को भाकर (चिन्तन कर) आपने तीर्थंकर पद प्राप्त कर लिया है। हे नाथ आपकी जय हो, जय हो आप परमगुरु हो, परमगुरु हो।

ओं ह्रीं सोलह कारण भावना को जन्म जरा और मृत्यु को नष्ट करने के लिए जल समर्पित करता हूँ।

चंदन घसौं कपूर मिलाय पूजौं श्रीजिनवरके पाय।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥दरश०॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

भावार्थ—चंदन को कपूर के साथ घिसकर श्री जिनेन्द्र भगवान के चरणों की पूजा करता हूँ। हे नाथ आपकी जय हो जय हो, आप परमगुरु हो आप परमगुरु हो। दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं को भाकर (चिन्तन कर) आपने तीर्थंकर पद प्राप्त कर लिया है। हे नाथ आपकी जय हो जय हो आप परम गुरु हो परम गुरु हो।

ओं ह्रीं सोलह कारण भावना को संसार ताप के नष्ट करने को चंदन समर्पित करता हूँ।

तंदुल धवल सुंगध अनूप पूजौं जिनवर तिहुं जग-भूप।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥
दरशविशुद्धि भावना भाय सोलह तीर्थंकर-पद-दाय।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥३ ॥

भावार्थ—उज्ज्वल (श्वेत) सुगंधित अनुपम चावलों से तीनों लोकों के स्वामी जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता हूँ। हे नाथ आपकी जय हो जय आप परम गुरु हो, आप परम गुरु हो। दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं को भाकर (चिन्तन कर) तीर्थंकर पद प्राप्त लिया है। हे नाथ आपकी जय हो जय हो आप परम गुरु हो परम गुरु हो।

ओं ह्रीं सोलह कारण भावना को अक्षय पद की प्राप्ति के लिए अक्षत समर्पित करता हूँ।

फूल सुगन्ध मधुप-गुंजार पूजौं जिनवर जग-आधार।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥दरश० ॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।४ ।

भावार्थ—जिन पर भौरें मंडरा रहे हैं ऐसे सुगंधित पुष्पों से तीनों लोकों के आधार स्वरूप जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता हूँ। हे नाथ आपकी जय हो, जय हो आप परम गुरु हो, परम गुरु हो। दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं को भाकर (चिन्तन कर) तीर्थंकर पद प्राप्त लिया है। हे नाथ आपकी जय हो जय हो आप परम गुरु हो परम गुरु हो।

ओं ह्रीं सोलह कारण भावना के लिए काम दाह ने नष्ट करने को पुष्प समर्पित करता हूँ।

सद नेवज बहुविधि पकवान पूजौं श्रीजिनवर गुणखान।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥दरश० ॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः क्षुधारोगविनाशकाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।५ ।

भावार्थ—बहुत प्रकार के उत्तम पकवानों (नैवेद्य) से गुणों के भण्डार जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता हूँ। हे नाथ आपकी जय हो जय हो आप परम गुरु हो परम गुरु हो। दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं को भाकर (चिन्तन कर) तीर्थंकर पद प्राप्त लिया है। हे नाथ आपकी जय हो जय हो आप परमगुरु हो परमगुरु हो।

ओं ह्रीं सोलह कारण भावना को क्षुधा वेदना के नष्ट करने के लिए नैवेद्य समर्पित करता हूँ।

दीपक-ज्योति तिमिर छयकार पूजूं श्रीजिन केवलधार।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥दरश0॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो मोहान्धकारविनानाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।६ ॥

भावार्थ—अंधकार को नष्ट करने वाले दीपक की ज्योति से केवल ज्ञान रूपी ज्योति को धारण करने वाले श्री जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता हूँ। हे नाथ आपकी जय हो जय हो आप परम गुरु हो, परम गुरु हो। दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं को भाकर (चिन्तन कर) तीर्थंकर पद प्राप्त लिया है ॥ हे नाथ आपकी जय हो जय हो आप परम गुरु हो परम गुरु हो।

ओं ह्रीं सोलह कारण भावना को मोहरूपी अंधकार के नाश करने के लिए दीप समर्पित करता हूँ।

अगर कपूर गंध शुभ खेय श्रीजिनवर आगे महकेय।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥दरश०॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं ।७ ।

भावार्थ—अगर कपूर आदि सुगंधित शुभ धूप को अग्नि में जलाकर श्री जिनेन्द्र भगवान के समक्ष सुगंध उड़ा रहा हूँ। हे नाथ आपकी जय हो जय हो आप परम गुरु हो परम गुरु हो। दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावना को भाकर (चिन्तन कर) तीर्थंकर पद प्राप्त लिया है। हे नाथ आपकी जय हो जय हो आप परम गुरु हो परम गुरु हो।

ओं ह्रीं सोलह कारण भावना को अष्टकर्म के नाश करने के लिए धूप समर्पित करता हूँ।

श्रीफल आदि बहुत फलसार पूजों जिन वांछित-दातार।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥दरश०॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं ।८ । नि० स्वाहा ।

भावार्थ—श्रीफल (नारियल) आदि बहुत प्रकार के उत्कृष्ठ फलों से इच्छित फल को देने वाले श्री जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता हूँ। हे नाथ आपकी जय हो जय हो आप परम गुरु हो परम गुरु हो। दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं को को भाकर (चिन्तन कर) तीर्थंकर पद प्राप्त लिया है। हे नाथ आपकी जय हो जय हो आप परमगुरु हो, परमगुरु हो।

ओं ह्रीं सोलह कारण भावना को मोक्ष फल की प्राप्ति के लिए फल समर्पित करता हूँ।

जल फल आठों दरव चढ़ाय 'द्यानत' वरत करों मन लाय
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥दरश०॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घं ।9। नि० स्वाहा।

भावार्थ—जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प नैवेद्य, दीप, धूप फल आदि आठों द्रव्यों को चढ़ाकर भाव सहित सोलह कारण व्रत करता हूँ। ऐसा द्यानत राय जी कहते हैं आपकी जय हो आप परम गुरु हो परम गुरु हो दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावना भाने को भाकर (चिन्तन क़र) तीर्थंकर पद प्राप्त लिया है। हे नाथ आपकी जय हो जय हो आप परम गुरु हो परम गुरु हो।

ओं ह्रीं सोलह कारण भावना को अनर्घ्य पद की प्राप्ति के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

जयमाला

षोडश कारण गुण करै, हरै चतुरगति-वास।
पाप पुण्य सब नाशके, ज्ञान-भान परकाश॥

भावार्थ—सोलह कारण भावना सभी गुणों को उत्पन्न करने वाली हैं चारों गतियों के निवास का नाश करने वाली हैं और पुण्य और पाप का नाश करके केवल ज्ञान रूपी सूर्य का प्रकाश करने वाली हैं।

चौपाई 16 मात्रा

दरशविशुद्धि धरे जो कोई, ताको आवागमन न होई।
विनय महाधारै जो प्राणी, शिव-वनिताकी सखी बखानी॥

भावार्थ—दर्शन विशुद्धि को जो धारण करते हैं उन्हें संसार का परिभ्रमण (आवागमन) नहीं होता। जो मोक्ष रूपी स्त्री की सखी के समान महान विनय को धारण करते हैं वे अवश्य ही मोक्ष रूपी स्त्री का वरण करते हैं।

शील सदा दिढ़ जो नर पालै, सो औरनकी आपद टालै।
ज्ञानाभ्यास करै मनमाहीं, ताके मोह-महातम नाहीं॥

भावार्थ—जो मनुष्य अतिचार रहित हमेशा शील व्रत का पालन करते हैं वे अपनी और दूसरों की आपत्ति विपत्तियों को नष्ट करते हैं और जो मनुष्य जिनवर कथित ज्ञान का निरन्तर मन में अभ्यास करते हैं उनके मोह का महाअंधकार नहीं रहता।

जो संवेग-भाव विसतारै, सुरग-मुकति-पद आप निहारै।
दान देय मन हरष विशेखै, इह भव जस, परभव सुख देखै॥

भावार्थ—जो मनुष्य मन में संवेग भाव (संसार से विरक्ति) का विस्तार से चिन्तन करते हैं उन्हें स्वर्ग और मोक्ष की सम्पदा अपने आप प्राप्त होती है। जो मनुष्य दान देते समय मन में अत्यन्त हर्षित होते है उन्हें इस भव में यश और अगले भव में सुख की प्राप्ति होती है।

जो तप तपै खपे अभिलाषा, चूरे करम-शिखर गुरु भाषा।
साधु-समाधि सदा मन लावै, तिहुं जगभोग भौगि शिव जावै॥

भावार्थ—जो मनुष्य तप धारण करके इच्छाओं का नाश करते हैं वे कर्म रूपी पर्वत को नष्ट कर देते हैं ऐसा गुरुओं ने उपदेश दिया है। जो साधु समाधि की भावना को मन में धारण करते है वे तीनों लोकों के भोगों को भोगकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।

निश-दिन वैयावृत्य करैया, सो निहचै भव-नीर तिरैया।
जो अरहंत-भगति मन आनै, सो जन विषय कषाय न जानै॥

भावार्थ—जो मनुष्य दिन रात वैयावृत्य करते हैं वे निश्चित संसार सागर के पार हो जाते हैं। और जो व्यक्ति निरंतर अरहंत भगवान की भक्ति को मन में धारण करते हैं वे व्यक्ति विषय और कषाय से दूर रहते हैं।

जो आचरज-भगति करै है, जो निर्मल आचार धरै है।
बहुश्रुतवंत-भगति जो करई, सो नर संपूरन श्रुत धरई॥

भावार्थ—जो मनुष्य निरन्तर आचार्य परमेष्ठी की भक्ति करते हैं वे निरतिचार (निर्मल) आचरण (चारित्र) को धारण करते हैं। और जो बहुत श्रुतवान साधुओं की भक्ति करते है वे सम्पूर्ण श्रुत के पारगामी होते हैं।

प्रवचन-भगति करै जो ज्ञाता, लहै ज्ञान परमानंद-दाता।
षट् आवश्य काल जो साधै, सो ही रत्न-त्रय आराधै॥

भावार्थ—जो जिनेन्द्र देव द्वारा प्रतिपादित जिन वाणी की भक्ति करता है वह परमानंद (अनंत सुख) के देने वाले केवल ज्ञान को प्राप्त करता है। जो छह आवश्यकों की प्रति समय साधना करते हैं वे ही निश्चय से रत्नत्रय की आराधना करते हैं।

धरम-प्रभाव करैं जे ज्ञानी, तिन-शिव-मारग रीति पिछानी।
वत्सल अंग सदा जो ध्यावै, सो तीर्थंकर पदवी पावै॥

भावार्थ—जो उत्सव पूर्वक धर्म की प्रभावना करते हैं वे ही मोक्ष प्राप्त करने की रीति अर्थात् मोक्ष मार्ग को पहचानते हैं। जो गाय और बछड़े की तरह साधर्मी से प्रीति कर वात्सल अंग का ध्यान करते हैं वे तीर्थंकर पद प्राप्त करते हैं।

दोहा

एही सोलह भावना, सहित धरै व्रत जोय।
देव-इन्द्र-नर-वंद्य-पद, 'द्यानत' शिव-पद होय॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोडशकारणेभ्यः पूर्णार्घं निर्व० स्वाहा।

भावार्थ—ये सोलह कारण भावना व्रत सहित जो ग्रहण करते हैं वे देव, इन्द्र मनुष्य चक्रवर्ती आदि से वंदित पद अर्थात् तीर्थंकर पद प्राप्त करते हैं और मोक्ष प्राप्त करते हैं ऐसा द्यानतराय जी कहते हैं।

ओं ह्रीं दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावना को अनर्घ्य पद की प्राप्ति के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

सवैया तेईसा

सुन्दर षोडशकारण भावना निर्मल चित्त सुधारक धारै,
कर्म अनेक हने अति दुर्धर जन्म जरा भय मृत्यु निवारै॥
दुःख दरिद्र विपत्ति हरै भव-सागरको पर पार उतारै,
'ज्ञान' कहे यही षोडशकारण कर्म निवारण सिद्ध सुधारै॥

इत्याशीर्वादः

हितकारी सोलह कारण भावना, मन के विकारी भाव नष्टकर निर्मल भावों को करने वाली हैं अनेक कर्मों का नाश करने वाली एवं प्रबल व प्रचण्ड जन्म जरा और मृत्यु के भव का निवारण करने वाली हैं, दुःख, दरिद्रता, विपत्तियों का नाश करने वाली एवं भवरूपी समुद्र को पार उतारने वाली हैं। श्री ज्ञानचन्द्र जी कवि कहते हैं कि ये ही सोलह कारण भावनायें कर्मों का नाश करने के लिए सिद्ध भगवान ने भी धारण की थी।

(इत्याशीर्वादः)

आत्म-कीर्तन

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतमराम। टेक।
मैं वह हूँ जो हैं भगवान, जो मैं हूँ वह हैं भगवान।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ राग-वितान।१।
मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति-सुख-ज्ञाननिधान।
किन्तु आश वश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान।२।
सुख-दुख-दाता कोई न आन, मोह राग रुष दुख की खान।
निज को निज, पर को पर जान, फिर दुख का नहिं लेश निदान।३।
जिन, शिव, ईश्वर, ब्रह्मा, राम, विष्णु, बुद्ध हरि जिसके नाम।
राग त्यागि पहुँचूँ निज धाम, आकुलता का फिर क्या काम।४।
होता स्वयं जगत-परिणाम, मैं जग का करता क्या काम।
दूर हटो पर-कृत परिणाम, "सहजानन्द" रहूँ अभिराम।५।

(श्री सहजानन्द वर्णी जी)

पंचमेरु पूजा

(कविवर द्यानतराय जी)

(गीता छन्द)

तीर्थंकरोंके न्हवन-जलतैं भये तीरथ शर्मदा,
तातैं प्रदच्छन देत सुर-गन पंच मेरुनकी सदा।
दो जलधि ढाई द्वीपमें सब गनत-मूल विराजहीं,
पूजौं असी जिनधाम-प्रतिमा होहि सुख दुखभाजहीं॥

ओं ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ जिनप्रतिमा-समूह ! अत्रावतरावतर संवौषट् । आह्वानम्

ओं ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ जिनप्रतिमा-समूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । स्थापनम्

ओं ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धि-जिनचैत्यालयस्थ-जिनप्रतिमा-समूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् । सन्निधिकरणम्

भावार्थ—तीर्थांकरों के जन्माभिषेक जल से सुख को देने वाले जो तीर्थ बन गये हैं ऐसे पांचों मेरु पर्वतों की देव गण हमेशा परिक्रमा करते हैं। दो समुद्र और ढाई द्वीप में सब मेरु पर्वतों पर मूल रूप से स्थित अस्सी जिनालयों में विराजमान प्रतिमाओं की पूजा करता हूँ। जिससे सुख की प्राप्ति होती है और दुःख भाग जाते हैं।

ओं ह्रीं पंच मेरु संबंधि अस्सी जिनालय संबंधि समस्त जिन बिम्ब समूह यहाँ आइये आइये।

ओं ह्रीं पंच मेरु संबंधि अस्सी जिनालय संबंधि समस्त जिन बिम्ब समूह यहाँ ठहरिये ठहरिये।

---

*पाँच मेरु- सुदर्शन मेरु, विजय मेरु, अचल मेरु, मंदर मेरु, विद्युन्माली मेरु

+दो जलधि- लवण समुद्र, कालोदधि समुद्र

०ढाई द्वीप- जम्बू द्वीप, धातकी खण्ड द्वीप आधा, पुष्करवर द्वीप

ओं ह्रीं पंच मेरु संबंधि अस्सी जिनालय संबंधि समस्त जिन बिम्ब समूह यहाँ मेरे और समीप होइये होइये।

चौपाई आंचलीबद्ध

सीतल-मिष्ट-सुवास मिलाय, जलसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥
पाँचो मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा को करों प्रनाम।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥

ओं ह्रीं सुदर्शन-विजय-अचल-मंदर-विद्युन्मालि-पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा **1**।

भावार्थ—शीतल, मधुर और सुगंधित जल से श्री जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता हूँ। जिससे महान सुख की प्राप्ति होती है साक्षात् जिनेन्द्र भगवान के दर्शन से परम सुख की प्राप्ति होती है। पाँचो मेरु संबंधि अस्सी जिनालयों में स्थित सभी प्रतिमाओं को प्रणाम करता हूँ। जिससे महान सुख की प्राप्ति होती है साक्षात् जिनेन्द्र भगवान के दर्शन से परम सुख की प्राप्ति होती है।

ओं ह्रीं पंचमेरु संबंधि अस्सी जिनालयों में स्थित सभी जिन बिम्बों को जन्म जरा और मृत्यु को नष्ट करने के लिए जल समर्पित करता हूँ।

जल केशर करपूर मिलाय, गंधसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥
पाँचो मेरु असी जिन धाम, सब प्रतिमा को करो प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥

ओं ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धि-जिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो चन्दनं निर्वा० स्वाहा **2**।

भावार्थ— जल में केशर, कपूर मिलाकर सुगंधित चन्दन से जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता हूँ। जिससे महासुख (अनंत सुख) की प्राप्ति होती है जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने से परमानंद की प्राप्ति होती है। पांचों मेरु संबंधि अस्सी जिनालयों में स्थित सभी प्रतिमाओं को प्रणाम करता हूँ। जिससे महान् सुख की प्राप्ति होती है जिनेन्द्र भगवान के दर्शन से परम सुख की प्राप्ति होती है।

प्राप्ति होती है जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने से परम सुख की प्राप्ति होती है।

ओं ह्रीं पंचमेरु संबंधि अस्सी जिनालयों में स्थित सभी जिन बिम्बों को अष्टकर्म के नाश करने के लिए धूप समर्पित करता हूँ।

सुरस सुवर्ण सुगंध सुभाय, फलसों पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पाँचों० ॥

ओं ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः फलं नि० स्वाहा ।8 ।

भावार्थ — रस युक्त सुन्दर रंग के सुगंधित, मन को अच्छे लगने वाले फलों से श्री जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता हूँ। जिससे महासुख की प्राप्ति होती है। जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने से परमसुख की प्राप्ति होती है। पंचमेरु संबंधि अस्सी जिनालयों में स्थित सभी प्रतिमाओं को प्रणाम करता हूँ। जिससे महान सुख की प्राप्ति होती है जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने से परम सुख की प्राप्ति होती है।

ओं ह्रीं पंचमेरु संबंधि अस्सी जिनालयों में स्थित सभी जिन बिम्बों को मोक्षफल की प्राप्ति के लिए फल समर्पित करता हूँ।

आठ दरबमय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पाँचों० ॥

ओं ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं नि० स्वाहा ।9 ।

भावार्थ—श्रीद्यानत राय जी कहते हैं कि आठ द्रव्य से अर्घ्य बनाकर श्री जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता हूँ। जिससे महासुख की प्राप्ति होती है जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने से परमसुख की प्राप्ति होती है। पंचमेरु संबंधि अस्सी जिनालयों में स्थित सभी प्रतिमाओं को प्रणाम करता हूँ। जिससे महान् सुख की प्राप्ति होती है जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने से परमसुख की प्राप्ति होती है।

ओं ह्रीं पंचमेरु संबंधि जिनालयों में स्थित सभी जिनबिम्बों को अनर्घ्य पद की प्राप्ति के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

जयमाला

प्रथम सुदर्शन-स्वामि, विजय अचल मंदर कहा।
विद्युन्माली नाम, पंच मेरु जगमें प्रगट॥

भावार्थ—पहला मुख्य सुदर्शन मेरु और विजय मेरु, अचल मेरु, मंदर मेरु, विद्युन्माली मेरु नाम वाले पाँच मेरु संसार में विख्यात है।

केसरी छन्द

प्रथम सुदर्शन मेरु विराजै, भद्रशाल वन भूपर छाजै।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी॥

भावार्थ—पहला सुदर्शन मेरु (एक लाख योजन ऊंचा) जम्बू द्वीप के बीचों बीच स्थित है वहाँ भूमि पर भद्रशाल नाम का वन है। जिसकी चारों दिशाओं में सुख को देने वाले चार जिनालय है। उनकी हम मन वचन काय से वंदना करते हैं।

ऊपर पंच-शतकपर सौहै, नंदन-वन देखत मन मोहै।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी॥

भावार्थ—भद्रशाल वन से पाँच सौ योजन ऊपर सुन्दर नंदन वन स्थित है। जिसे देखने से मन मोहित हो जाता है। इसकी चारों दिशाओं में सुख को देने वाले चार जिनालय है उनकी हम मन, वचन, काय से वंदना करते हैं।

साढ़े बासठ सहस ऊँचाई, वन सुमनस शोभै अधिकाई।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी॥

भावार्थ—नंदन वन से साढ़े बासठ हजार योजन की ऊँचाई पर अधिक शोभा को धारण करने वाला सौमनस वन है। इसकी चारों दिशाओं में सुख को देने वाले चार जिनालय है, उनकी हम मन वचन काय से वंदना करते हैं।

ऊँचा जोजन सहस-छतीसं, पाण्डुक-वन सौहै गिरि-सीसं।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी॥

भावार्थ—सौमनस वन से छत्तीस हजार योजन ऊपर सुदर्शन मेरु के शीर्ष भाग पर पाण्डुक वन स्थित है इसकी चारों दिशाओं में सुख को देने वाले चार जिनालय है उनकी हम मन, वचन, काय से वंदना करते हैं।

चारों मेरु समान बखाने, भूपर भद्रसाल चहुं जाने।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी॥

भावार्थ—चार मेरु (विजय मेरु, अचल मेरु, मंदर मेरु, विद्युन्माली मेरु) समान (85 हजार योजन) ऊँचाई एवं समान विस्तार वाले हैं इनमें भूमि पर चारों ओर भद्रशाल वन हैं प्रत्येक की चारों दिशा में एक-एक जिन चैत्यालय है सुख को देने वाले उन सोलह चैत्यालयों की मन वचन काय से वंदना करते हैं।

ऊँचे पाँच शतक पर भाखे, चारों नंदनवन अभिलाखे।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी॥

भावार्थ—भद्रशाल वन से पाँच सौ योजन ऊपर चारों मेरु पर्वतों पर चार नंदन वन हैं सुख को देने वाले उन सोलह चैत्यालयों की हम मन वचन काय से वंदना करते हैं।

साढ़े पचपन सहस उतंगा वन सोमनस चार बहुरंगा।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वचन तन वंदना हमारी॥

भावार्थ—नंदन वन से साढ़े पचपन हजार योजन ऊपर अनेक रंग से अर्थात् रंग-बिरंगे रत्नों से सहित सौमनसवन स्थित हैं इनकी चारों दिशाओं में एक-एक जिनालय है सुख को देने वाले उन सोलह चैत्यालयों की हम मन वचन काय से वंदना करते हैं।

उच्च अठाइस सहस बताये, पांडुक चारों वन शुभ गाये।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी॥

भावार्थ—सौमनस वन से अट्ठाइस हजार योजन ऊपर चारों मेरु पर्वतों पर चार सुन्दर पांडुक वन हैं इनकी चारों दिशाओं में एक-एक जिनालय है उनकी हम मन वचन काय से वंदना करते हैं।

सुर नर चारन वंदन आवैं, सो शोभा हम किह मुख गावैं।
चैत्यालय अस्सी सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी॥

भावार्थ—देव, मनुष्य (विद्याधर) और चारण ऋद्धि धारी मुनिराज इन जिनालयों की वंदना करने आते हैं, वहाँ की शोभा का अर्थात् सुन्दरता का वर्णन हम अपने मुँह से नहीं कर सकते, सुख को देने वाले अस्सी जिनालयों की हम मन वचन काय से वंदना करते हैं।

दोहा

पंच मेरुकी आरती, पढ़े सुनै जो कोय।
'द्यानत' फल जानै प्रभू, तुरत महासुख होय॥

ओं ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो पूर्णार्घ्यं नि० स्वाहा।

पंचमेरु स्थित जिनालयों की आरती जो कोई पढ़ते और सुनते हैं उन्हें जो फल प्राप्त होता है उसे भगवान ही जानते हैं द्यानतराय जी कहते हैं परन्तु उन्हें तुरन्त अनंत सुखकी प्राप्ति हो जाती है।

ओं ह्रीं पंच मेरु संवंधि अस्सी जिनालयों में स्थित सभी जिन बिम्बों को अनर्घ्य पद की प्राप्ति के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

इत्याशीर्वादः

उच्च कुलोत्पन्न हो या नीच कुलोत्पन्न गुणवान् पुरुष ही संसार में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। जैसे अच्छे बाँस का बना हुआ भी धनुष बिना गुण (डोरी) के किसी काम का नहीं होता, वैसे ही उच्चकुलोत्पन्न बिना विद्या-विनयादिगुण के पुरुष किसी योग्य नहीं होता अतः मूर्ख पुत्र से अपुत्र ही रहना अच्छा है।

गुण गुणियों के यहाँ गुण बन जाते हैं और वे ही गुण मूर्ख में दोष हो जाते हैं। जैसे नदियाँ "गंगादि" मधुर जल वाली बहती हैं, किन्तु समुद्र में मिलने पर वे ही अपेय अर्थात् खारी हो जाती हैं।

सुमेरु पर्वत

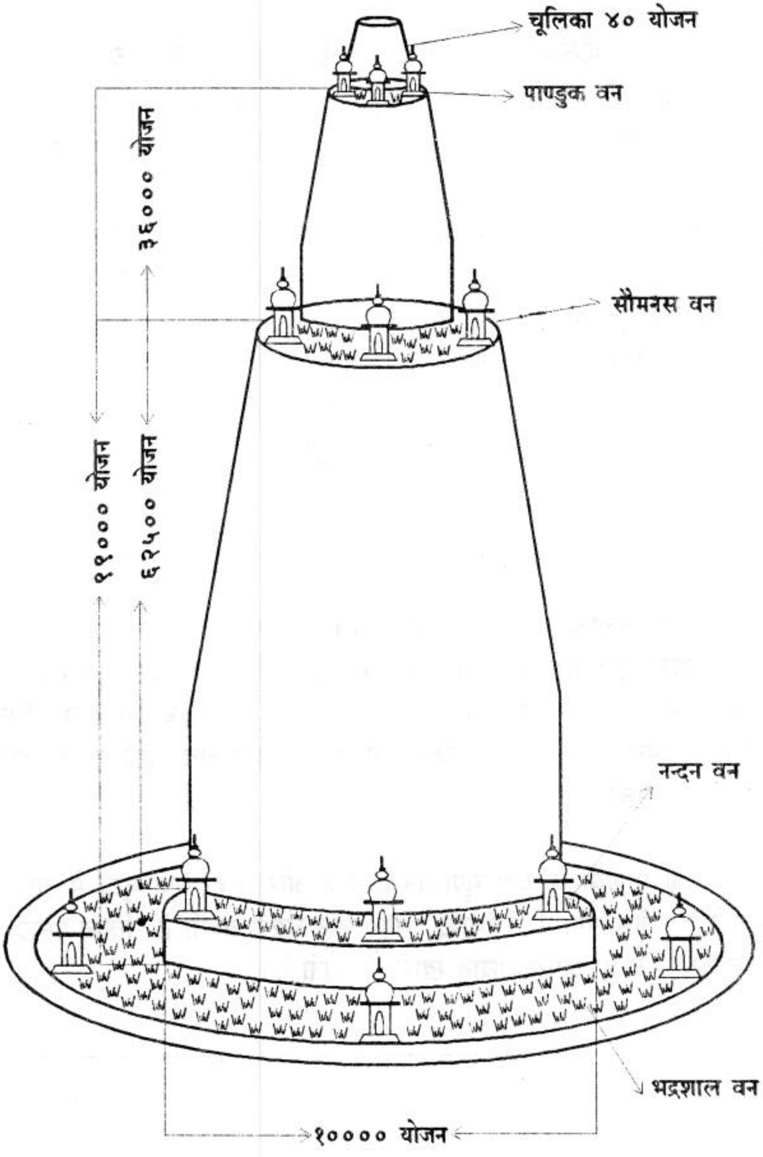

चूलिका ४० योजन
पाण्डुक वन
३६००० योजन
सौमनस वन
९९००० योजन
६२५०० योजन
नन्दन वन
भद्रशाल वन
१०००० योजन

नन्दीश्वर द्वीप

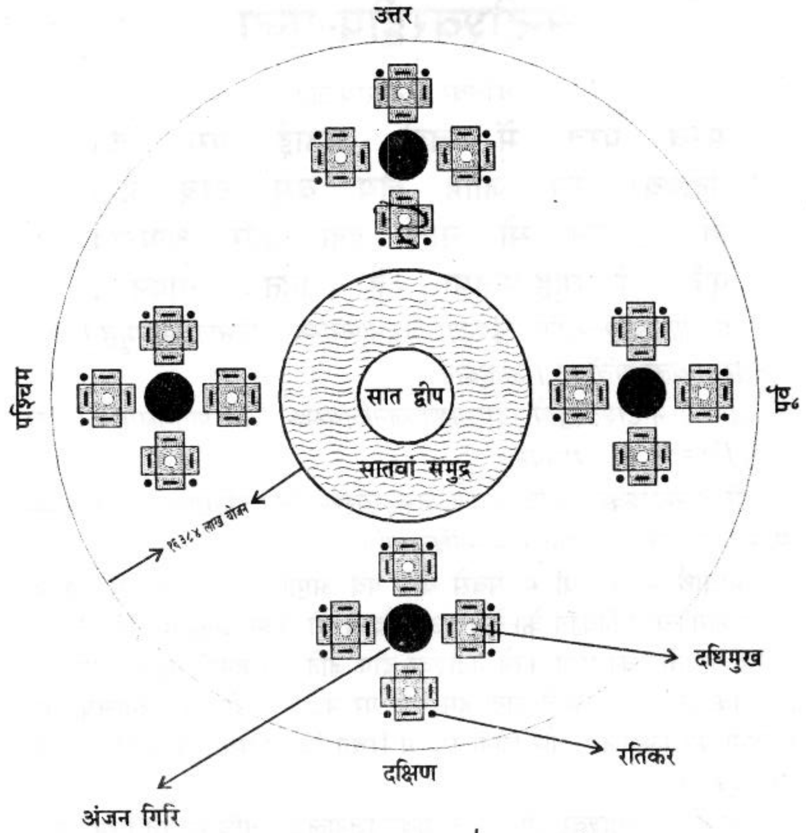

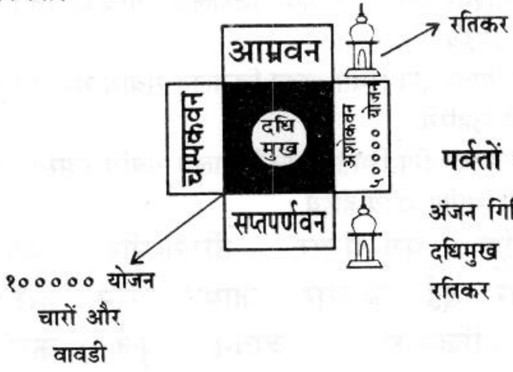

पर्वतों का योग

अंजन गिरि	=	४
दधिमुख	=	१६
रतिकर	=	३२
		५२

नन्दीश्वरद्वीप-पूजा

(कविवर द्यानतराय जी)

सरव परव में बड़ो अठाई परव है।
नंदीश्वर सुर जाहिं लेय वसु दरब है।।
हमैं सकति सो नाहिं इहां करि थापना।
पूजैं जिनगृह-प्रतिमा है हित आपना।।

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थ- जिनप्रतिमासमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् । आह्वानं ।

ओं ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थ- जिन प्रतिमासमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । स्थापनं ।

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थ- जिन प्रतिमासमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् । सन्निधिकरणं ।

भावार्थ—सब पर्वों में सबसे बड़ा पर्व अष्टान्हिका पर्व है इस पर्व में चतुर्णिकाय (चारो निकाय के) केदेव अष्ठ द्रव्य को लेकर अकृत्रिम चैत्यालय में जिनेन्द्र भगवान की पूजा करने नंदीश्वर द्वीप जाते हैं। हमारी शक्ति नंदीश्वर द्वीप तक जाने की नहीं है अतः हम यहीं पर नंदीश्वर द्वीप के जिनालयों की स्थापना कर जिनालय और जिनालयों में स्थित जिन बिम्बों की अपने हित के लिए पूजा करते हैं।

ओं ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीप स्थित बावन जिनालय संबंधि समस्त जिन बिम्ब समूह यहाँ आइये आइये।

ओं ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीप स्थित बावन जिनालय संबंधि समस्त जिन बिम्ब समूह, यहाँ ठहरिये, ठहरिये।

ओं ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीप स्थित बावन जिनालय संबंधि समस्त जिन बिम्ब समूह यहाँ मेरे और समीप होइये होइये।

कंचन-मणि मय-भृंगार, तीरथ-नीर भरा।
तिहुं धार दई निरवार, जामन मरन जरा।।
नंदीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पूज करों।

वसु दिन प्रतिमा अभिराम, आनंद-भाव-धरों ॥
नंदीश्वर द्वीप महान चारों दिशि सोहें।
बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व-पश्चिमोत्तर-दक्षिणदिक्षु द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि० स्वाहा ।1 ।

भावार्थ—हे भगवान स्वर्ण के रत्न जड़ित भृंग (कलश) में तीर्थ का जल भरकर जन्म जरा और मृत्यु को नष्ट करने को आपके चरणों के समक्ष तीन धार देता हूँ। नंदीश्वर द्वीप के बावन जिन मंदिरों की प्रतिमाओं की आठ दिन तक आनंदित होता हुआ उत्साह को धारण कर पूजा करता हूँ। नंदीश्वर द्वीप महान है चारों दिशाओं में सुन्दरता को धारण किये हुए है वहाँ बावन जिन मंदिर है जो देवों और मनुष्यों के मन मोहित करने वाले हैं।

ओं ह्रीं नंदीश्वर द्वीप के बावन जिनालयों में स्थित जिनबिम्बों को जन्म जरा और मृत्यु के नाश करने के लिए जल समर्पित करता हूँ।

भव-तप-हर शीतल वास, सो चंदन नाहीं।
प्रभु यह गुन कीजै सांच, आयो तुम ठाहीं ॥ नंदी० ॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थ- जिनप्रतिमाभ्यो भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।2 ।

हे भगवान भव की ताप को नष्ट करने के लिए शीतल सुगंधित चन्दन समर्थ नहीं है यह गुण तो आप में ही है, अर्थात् भव की ताप नष्ट करने में आप ही समर्थ हो इसलिए चंदन लेकर आपके समीप आया हूँ। नंदीश्वर द्वीप के बावन जिन मंदिरों की आठ दिन सुन्दर प्रतिमाओं की, आनंदित होता हुआ उत्साह से पूजा करता हूँ। नंदीश्वर द्वीप महान है चारों दिशाओं में सुन्दरता को धारण किये हुए हैं वहाँ बावन जिन मंदिर है जो देवों और मनुष्यों के मन को मोहित करने वाले हैं।

ओं ह्रीं नंदीश्वर द्वीप के बावन जिनालयों में स्थित जिन बिम्बों को संसार ताप के नाश करने के लिए चंदन समर्पित करता हूँ।

उत्तम अक्षत जिनराज, पुंज धरे सोहै।
सब जीते अक्ष-समाज, तुमसम, अरु को है ॥नंदी० ॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थ- जिनप्रतिमाभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।3 ।

भावार्थ—हे जिनेन्द्र देव श्रेष्ठ अक्षतों का पुंज आपके समक्ष रखा हुआ बड़ा सुशोभित हो रहा है । आपने सभी इन्द्रिय समूह को जीत लिया है आपके समान और कोई नहीं है । नंदीश्वर द्वीप के बावन जिन मंदिरों की आठ दिन सुन्दर प्रतिमाओं की आनंदित होता हुआ उत्साह से पूजा करता हूँ। नंदीश्वर द्वीप महान है चारों दिशाओं में सुन्दरता को धारण किये हुए है वहाँ बावन जिन मंदिर है जो देवों और मनुष्यों के मन को मोहित करने वाले हैं ।

ओं ह्रीं नंदीश्वर द्वीप के बावन जिनालयों में स्थित जिन बिम्बों को अक्षय पद की प्राप्ति के लिए अक्षत समर्पित करता हूँ ।

तुम काम विनाशक देव, ध्याऊं फूलनसौं।
लहुं शील-लच्छमी एव, छूटों सूलनसों ॥नन्दी० ॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।4 ।

भावार्थ—हे जिनेन्द्र भगवान आप काम को नष्ट करने वाले हो पुष्पों से आपकी पूजा करता हूँ। शील रूपी लक्ष्मी को प्राप्त कर संसार के दुःखों से छूटना चाहता हूँ। नंदीश्वर द्वीप के बावन जिन मंदिरों की आठ दिन सुन्दर प्रतिमाओं की आनंदित होता हुआ उत्साह से पूजा करता हूँ नंदीश्वर द्वीप महान है चारों दिशाओं में सुन्दरता को धारण किये हुए है वहाँ बावन जिन मंदिर है जो देवों और मनुष्यों के मन को मोहित करते हैं ।

ओं ह्रीं नंदीश्वर द्वीप के बावन जिनालयों में स्थित जिन बिम्बों को काम दाह के नष्ट करने के लिए पुष्प समर्पित करता हूँ ।

नेवज इंद्रिय-बलकार, सो तुमने चूरा।
चरु तुम ढिग सोहै सार, अचरज है पूरा ॥नदी० ॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीतिस्वाहा 15 ।

भावार्थ—इन्द्रियों को बलवान बनाने वाला नैवद्य है, हे भगवान उन इन्द्रियों को आपने समाप्त कर दिया है (अब आप अहार नहीं लेते) जो अत्यन्त आश्चर्य की बात है इसीलिए श्रेष्ठ नैवेद्य आपके निकट सुशोभित हो रहा है। नंदीश्वर द्वीप के बावन जिनालयों की आठ दिन, सुन्दर प्रतिमाओं की आनंदित होता हुआ उत्साह से पूजा करता हूँ नंदीश्वर द्वीप महान है चारों दिशाओं में सुन्दरता को धारण किये हुए है वहाँ बावन जिन मंदिर है जो देवों और मनुष्यों के मन को मोहित करते हैं।

ओं ह्रीं नंदीश्वर द्वीप के बावन जिनालयों में स्थित जिन बिम्बों को भूख की वेदना को मिटाने के लिए नैवेद्य समर्पित करता हूँ।

दीपककी ज्योति-प्रकाश, तुम तन मांहिं लसै।
टूटे करमनकी राश, ज्ञान-कणी दरसै ॥नन्दी०॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थ- जिनप्रतिमाभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा 16 ।

भावार्थ—हे भगवान !दीपक की ज्योति का प्रकाश आपके शरीर में सुशोभित हो रहा है। आपकी दीपक से पूजा करने से कर्म नष्ट हो जाते हैं और केवल ज्ञान की किरण फूट पड़ती है। नंदीश्वर द्वीप के बावन जिनालयों की आठ दिन, सुन्दर प्रतिमाओं की आनंदित होता हुआ उत्साह से पूजा करता हूँ। नदीश्वर द्वीप महान है चारों दिशाओं में सुन्दरता को धारण किये हुए है वहाँ बावन जिन मंदिर हैं जो देवों और मनुष्य के मन को मोहित करते हैं।

ओं ह्रीं नंदीश्वर द्वीप के बावन जिनालयों में स्थित जिन बिम्बों को मोह अंधकार के नाश करने को दीप समर्पित करता हूँ।

कृष्णागरु-धूप सुवास, दस-दिशि नारि वरैं।
अति हरष-भाव परकाश, मानों नृत्य करें ॥नन्दी० ॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा 17 ।

भावार्थ—कृष्ण अगर आदि सुगंधित धूप की सुगंधि दशों दिशाओं को इस प्रकार सुगंधित कर रही है मानो दश दिशा रूपी स्त्रियों का वरण ही कर रही हो और अत्यन्त हर्षित होकर हर्ष को प्रकाशित करने को नृत्य ही कर रही हो। नंदीश्वर द्वीप के बावन जिनालयों की आठ दिन, सुन्दर प्रतिमाओं की आनंदित होता हुआ उत्साह से पूजा करता हूँ। नंदीश्वर द्वीप महान है चारों दिशाओं में सुन्दरता को धारण किये हुए है वहाँ बावन जिन मंदिर हैं जो देवों और मनुष्यों के मन को मोहित करते हैं।

ओं ह्रीं नंदीश्वर द्वीप के बावन जिनालयों में स्थित जिन बिम्बों के लिए आठ कर्मों के नाश करने को धूप समर्पित करता हूँ।

बहुविधि फल ले तिहुँ काल, आनंद राचत हैं।
तुम शिव-फल देहु दयाल, तुहि हम जाचत हैं ॥ नन्दी० ॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।8 ।

भावार्थ—बहुत प्रकार के तीनों कालों में उत्पन्न होने वाले अर्थात् छहो ऋतुओं के, आनंद को देने वाले फलों से आपकी पूजा करता हूँ। हे दीनदयाल प्रभु आप मुझे मोक्ष रूपी फल प्रदान करें ऐसी हम आपसे याचना करते हैं। नंदीश्वर द्वीप के बावन जिनालयों में बावन अर्घ्य बनाकर आठ दिन सुन्दर प्रतिमाओं की आनंदित होता हुआ उत्साह से पूजा करता हूँ। नंदीश्वर द्वीप महान है चारों दिशाओं में सुन्दरता को लिए हुए है। वहाँ बावन जिन मंदिर हैं जो देवों और मनुष्यों के मन को मोहित कर रहे हैं।

ओं ह्रीं नंदीश्वर द्वीप के बावन जिनालयों में स्थित जिन बिम्बों को मोक्ष फल की प्राप्ति के लिए फल समर्पित करता हूँ।

यह अरघ कियो निज-हेत, तुमको अर्पतु हों।
'द्यानत' कीज्यो शिव-खेत भूमि समरपतु हों ॥नन्दी० ॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।9 ।

यह अष्ट द्रव्य मय अर्घ्य मैने अपने कल्याण के लिए किया है जिसे मैं आपके चरणों में अर्पित कर रहा हूँ, श्री द्यानत राय जी कहते हैं कि हे नाथ मैंने मोक्ष की खेती की है। उसकी भूमि में बीज स्वरूप यह अर्घ्य समर्पित कर रहा हूँ। नंदीश्वर द्वीप के बावन जिनालयों की आठ दिन सुन्दर प्रतिमाओं की आनंदित होता हुआ उत्साह से पूजा करता हूँ नंदीश्वर द्वीप महान है चारों दिशाओं में सुन्दरता को धारण किये हुए है वहाँ बावन जिनमंदिर हैं जो देवों और मनुष्यों के मन को मोहित करते हैं।

ओं ह्रीं नंदीश्वर द्वीप के बावन जिनालयों में स्थित जिन बिम्बों को अनर्घ्य पद की प्राप्ति के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

जयमाला

दोहा।

कार्तिक फागुन साढके अंत आठ दिन माहिं।
नंदीश्वर सुर जात हैं, हम पूजैं इह ठाहिं ॥1॥

भावार्थ—कार्तिक, फाल्गुन, और आषाढ़ माह के अंतिम आठ दिनों में देव गण नंदीश्वर द्वीप पूजा करने जाते हैं। हम असमर्थ होने के कारण (इसी स्थान पर) यहाँ ही पूजा करते हैं।

एकसौ त्रेसठ कोडि जोजन महा।
लाख चौरासिया एक दिश में लहा॥
आठमों द्वीप नन्दीश्वरं भास्वरं।
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं ॥2॥

भावार्थ—नंदीश्वर द्वीप की एक दिशा का विस्तार चौड़ाई एक सौ त्रेसठ करोड चौरासी लाख महा योजन है। आगम में नंदीश्वर द्वीप आठवां द्वीप कहा गया है सुख को करने वाली बावन जिनालयों में स्थित सर्व प्रतिमाओं को नमस्कार करता हूँ।

सोरठा

नंदीश्वर-जिन-धाम, प्रतिमा-महिमा को कहै।
'द्यानत' लीनो नाम, यही भगति शिव-सुख करै॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व-पश्चिमोत्तर-दक्षिणदिक्षु द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(इत्याशीर्वादः। पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

भावार्थ—नंदीश्वर द्वीप के जिन मंदिरों, एवं प्रतिमाओं की महिमा को कौन कह सकता है द्यानतराय जी कहते हैं कि इनका नाम लेना मात्र ही भक्ति है जो मोक्ष सुख को करने वाली है।

ओं ह्रीं नंदीश्वर द्वीप के बावन जिनालयों में स्थित सभी जिन बिम्बों को अनर्घ्यपद की प्राप्ति के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

(इत्याशीर्वाद)

पूज्यं जिनं त्वार्चयतो जनस्य
सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ।
दोषाय नालं कणिका विषस्य
न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ ॥स्व. स्तो. ॥

हे भगवन्! इन्द्र आदि के द्वारा पूजनीय तथा कर्म रूप शत्रुओं को जीतने वाले आपकी पूजा करने वाले मनुष्य के जो आरम्भादि जनित थोड़ा सा पाप का लेश होता है, वह बहुत भारी पुण्य की राशि में दोष के लिये समर्थ नहीं है, क्योंकि विष की अल्पमात्रा शीतल जल से युक्त समुद्र में दोष उत्पन्न करने वाली नहीं है।

दशलक्षणधर्म-पूजा

(कविवर द्यानतराय जी)

अडिल्ल

उत्तम छिमा मारदव आरजव भाव हैं।
सत्य शौच संयम तप त्याग उपाव हैं।
आकिंचन ब्रह्मचरज धरम दश सार हैं,
चहुँगति-दुखतैं काढ़ि मुकति करतार हैं॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट । आह्वानं ।
ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । स्थापनं ।
ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् । सन्तिधिकरणं ।

भावार्थ—उत्तमक्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव ये जीव के भाव है, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग ये मोक्ष प्राप्ति के उपाय है, उत्तम आकिंचन, उत्तम ब्रह्मचर्य ये दस धर्म में सार है अर्थात् उत्कृष्ट है ये दश धर्म चारों गतियों के दुःखों से निकालकर मोक्ष सुख को करने वाले हैं।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमा आदि दशलक्षण धर्म यहाँ आइये आइये

ओं ह्रीं उत्तमक्षमा आदि दशलक्षण धर्म-यहाँ ठहरिये ठहरिये ।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमा आदि दशलक्षण धर्म यहाँ मेरे और समीप होइये होइये ।

सोरठा

हेमाचलकी धार, मुनि-चित सम शीतल सुरभि।
भव-आताप निवार, दस लच्छन पूजौं सदा॥1॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमा - मार्दवार्जव -सत्य- शौचसंयम- तपस्त्यागाकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्येति दशलक्षणधर्माय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

भावार्थ—हिमवन पर्वत से निकलने वाली धारा के जल, (गंगा नदी का जल) मुनिराजों के मन के समान निर्मल शीतल और सुगंधित जल से भव की

ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की सदा पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं उत्तम क्षमा आदि दश लक्षण धर्म को जन्म जरा मृत्यु के नाश करने को जल समर्पित करता हूँ।

चन्द केशर गार, होय सुवास दशों दिशा।
भव आताप निवार, दस लच्छन पूजौं सदा ॥2॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय चन्दनं निर्व० स्वाहा।

भावार्थ—दशों दिशाओं को सुगंधित करने वाले चन्दन और केशर को घिसकर संसार की ताप को नष्ट करने के लिए दश लक्षण धर्म की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमा आदि दशलक्षण धर्म को संसार ताप के नाश करने के लिए चंदन समर्पित करता हूँ।

अमल अखंडित सार, तंदुल चन्द्र समान शुभ।
भव-आताप निवार, दस लच्छन पूजौं सदा ॥3॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय अक्षतं निर्व० स्वाहा।

भावार्थ—मलरहित, अखण्ड, (जो टूटे हुए न हो) उत्कृष्ट चन्द्रमा के समान श्वेत उज्ज्वल चावलों से भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की हमेशा पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं उत्तम क्षमा आदि दशलक्षण धर्म को अक्षय पद की प्राप्ति करने के लिए अक्षत समर्पित करता हूँ।

फूल अनेक प्रकार, महकें ऊरध-लोकलों।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥4॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

भावार्थ—अनेक प्रकार के पुष्पों से जिनकी सुगंधि ऊर्ध्व लोक तक फैल रही है। भव की ताप को नष्ट करने के लिए 'दश लक्षण' धर्म की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमा आदि दशलक्षण धर्म को कामदाह के नाश करने के लिए पुष्प समर्पित करता हूँ।

नेवज विविध निहार, उत्तम षट-रस-संजुगत।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥5॥

ओं ह्रीं उत्तममक्षमादि-दशलक्षणधर्माय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भावार्थ—अनेक प्रकार के उत्कृष्ट छहों रसों से युक्त नैवेद्य से भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमा आदि दशलक्षण धर्म को भूख की वेदना को नष्ट करने के लिए नैवेद्य समर्पित करता हूँ।

बाति कपूर सुधार, दीपक-ज्योति सुहावनी।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥6॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

भावार्थ—कपूर की बत्ती बनाकर सुन्दर लगने वाले दीपक को धारण कर भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमा आदि दशलक्षण धर्म को मोह अंधकार को नष्ट करने के लिए दीप समर्पित करता हूँ।

अगर धूप विस्तार, फैले सर्व सुगंधता।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥7॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

भावार्थ—अगर आदि से धूप को तैयार कर उसकी सुगंधि को सर्व दिशाओं में फैलाकर भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमा आदि दशलक्षण धर्म को आठ कर्मों के नष्ट करने के लिए धूप समर्पित करता हूँ।

फलकी जाति अपार, घ्राण-नयन-मन-मोहने।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥8॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

भावार्थ—अनेक प्रकार के नासिका को, नेत्रो को और मन को मोहित करने वाले आर्थात् अच्छे लगने वाले फलों से भव की ताप नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमा आदि दशलक्षण धर्म को मोक्ष फल की प्राप्ति के लिए फल समर्पित करता हूँ।

आठों दरब संवार, 'द्यानत' अधिक उछाहसों।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥9 ॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाह।

भावार्थ—जल चन्दन आदि आठों द्रव्यों को सजाकर अत्यन्त उत्साह पूर्वक भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ। ऐसा श्री द्यानतरायजी कहते हैं।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमा आदि दशलक्षण को अनर्घ्य पद की प्राप्ति करने के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

अंगपूजा

(उत्तमाक्षमा)

सोरठा

पीड़ैं दुष्ट अनेक, बाँध मार बहुविधि करैं।
धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजै पीतमा ॥

भावार्थ—बहुत दुर्जन लोग दुःख देवें, बांधकर अनेक प्रकार से मारपीट करे। यातनायें दे वहाँ हे पवित्र आत्मा क्रोध को न करके विवेक पूर्वक उत्तम क्षमा को धारण कीजिए।

उत्तम छिमा गहो रे भाई, इह भव जस, पर भव सुखदाई।
गाली सुनि मन खेद न आनो, गुनको औगुन कहै अयानो ॥
कहि है अयानो वस्तु छीनै, बाँध मार बहुविधि करैं।
घरतैं निकारैं तन विदारैं, बैर जो न तहाँ धरैं ॥
तैं करम पूरब किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा।
अति क्रोध-अगनि बुझाय प्रानी, साम्य जल ले सीयरा ॥

ओं ह्रीं उत्तम-क्षमा-धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥1 ॥

---

* अयानो = अज्ञानी

भावार्थ—हे भाई उत्तमक्षमा को ग्रहण करो, यह क्षमा इस भव में यश और अगले भव में सुख को देने वाली है, कोई अज्ञानी गुणों को अवगुण रूप भी कहता है गालियाँ (अपशब्द) भी देता है तो भी मन में खेद (दुःख) नहीं करना चाहिए। ऐसा वह अज्ञानी अपशब्द कहता हुआ हमारी कोई वस्तु छीन लेवे, बांध देवे अनेक प्रकार से मारे घर से निकाल देवे शरीर का छेदन करे (विदारण करे) तब भी वहां उससे बैर भाव धार ग नहीं करना चाहिए। किन्तु चिन्तन करना चाहिए कि पूर्व भवों में मैंने जोपाप कर्मों का संचय किया या जो पाप कर्म किये हे जीव अब उन्हेंक्यों नहीं सहन करोगे (भोगोगे)। अत्यन्त भीषण क्रोध रूपी अग्नि को हे जीव समता रूपी अत्यन्त शीतल जल से बुझाओ। अर्थात् क्रोध के समय समता धारण करो।

ओं ह्रीं धर्म के अंग उत्तम क्षमा के लिए अनर्घ्य पद की प्राप्ति को अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

उत्तम मार्दव

मान महाविषरूप, करहि नीच गति-जगत में।
कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्रानी सदा॥

भावार्थ—मान महा विष के समान है यह मान (नीच गति) + संसार में नरक गति को करने वाला है कोमलता (मृदुता) रूपी अनुपम अमृत को ग्रहण करने वाले जीव हमेशा सुख प्राप्त करते हैं।

उत्तम मार्दव-गुन मन माना, मान करन को कौन ठिकाना।
वस्यो निगोद माहितैं आया, दमरी रूकन भाग बिकाया॥
रूकन बिकाया भाग-वशतैं, देव इकइंद्री भया।
उत्तम मुआ चांडाल हूवा, भूप कीड़ों में गया॥
जीतव्य जोवन धन गुमान, कहा करै जल-बुदबुदा।
करि विनय बहु-गुन बड़े जनकी, ज्ञान का पावैं उदा॥

+संसार में नीच जाति के अर्थात् अज्ञानी जीव ही मान को करते हैं।

1. मान करने से नीच गौत्र का आस्त्रव करते है। और संसार में नीच जातियों में जन्म लेते हैं।

2. शुभ नामक मिथिला नगर का राजा रानी मनोरमा पुत्र देवरति था।

ओं ह्रीं उत्तम मार्दव धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥2 ॥

भावार्थ—उत्तम मार्दव गुण मन को अच्छा लगने वाला है, मान करने का क्या आधार है क्योंकि अनंत काल से निगोद में रहता था वहाँ से आकर स्थावर में वनस्थति काय का जीव हुआ कभी दमरी (सबसे छोटी मुद्रा) के भाव बिक गया कभी रुकन अर्थात् बिना मूल्य के ही बिक गया भाग्य उदय से यह जीव देव हुआ और देव पर्याय से आकर एकेन्द्री हो गया, उत्तम पर्याय से चांडाल हुआ, राजा भी, कीड़ों में जाकर उत्पन्न हो गया[1] हे आत्मा, क्या जीवन युवावस्था और धन का घमंड करता है । ये सब जल के बुलबुले के समान क्षणभर में नष्ट होने वाले है । जिनमें बहुत गुण है अर्थात् गुणवान, है जिनकी बड़ी आयु है ऐसे माता-पिता आदि की विनय करना चाहिए जिससे ज्ञान की प्राप्ति होती है ।

ओं ह्रीं धर्म के अंग उत्तम मार्दव धर्म को अनर्घ्य पद की प्राप्ति करने के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ ।

उत्तम आर्जव

कपट न कीजै कोय, चोरनके पुर* ना बसै।
सरल सुभावी होय, ताके घर बहु संपदा ॥

भावार्थ—छल कपट नहीं करना चाहिए धन सम्पत्ति चोरों के यहाँ नहीं होती वे हमेशा निर्धन ही होते हैं किन्तु जिनका स्वभाव सरल होता है उनके यहाँ बहुत धन सम्पदा होती ।

उत्तम आर्जव-रीति बखानी, रंचक दगा बहुत दुखदानी।
मनमें हो सो वचन उचरिये, वचन होय सो तनसौं करिये ॥
करिये सरल तिहुँ जोग अपने, देख निरमल आरसी।
मुख करै जैसा लखै तैसा, कपट-प्रीति अंगारसी ॥
नहिं लहै लछमी अधिक, छल करि, कर्म-बंध-विशेषता।
भय त्यागि दूध बिलाव पीवै, आपदा नहिं देखता ॥

ओं ह्रीं उत्तमार्जव धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥3 ॥

*छल कपट नहीं करना चाहिए एवं चोरों के नगर में निवास नहीं करना चाहिए।

भावार्थ—उत्तम आर्जव सरल स्वभाव को कहते हैं रंचमात्र भी दगा दुख को देने वाला है, जो विचार मन में हो वही वचन में रहना और जो वचन से कहा जाय वही काय से किया जाना चाहिए। इस प्रकार से तीनों योगों को सरल करना चाहिए जैसे निर्मल स्वच्छ दर्पण में जैसा अपना मुँह करोगे वैसा ही दिखेगा। छल कपट की प्रीति अंगारों से प्रीति करने के समान है (जैसे अंगारों में ऊपर राख दिखती है और अन्दर अग्नि दहकती रहती है। अधिक छल करके कोई भी धन सम्पदा प्राप्त नहीं कर सकता बल्कि अधिक कर्म बंध करता है उस कर्मबंध का ध्यान नहीं करता और छल करता रहता है जैसे-बिल्ली आंख बंद करके दूध पीते समय भय का त्याग करती है और पीछे मार पड़ेगी ध्यान नहीं रखती उसी प्रकार छल करने वाला कर्मबंध का ध्यान नहीं करते हुए छल करता रहता है।

ओं ह्रीं धर्म के अंग उत्तम आर्जव धर्म के लिए अनर्घ्य पद की प्राप्ति करने के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

उत्तम शौच

धरि हिरदै संतोष, करहु तपस्या देहसों।
शौच सदा निरदोष, धरम बड़ो संसार में॥

भावार्थ—हृदय में संतोष धारण कर शरीर से तपस्या करना चाहिए दोष रहित शौच धर्म ही संसार में सबसे बड़ा धर्म है।

उत्तम शौच सर्व जग जाना, लोभ पाप को बाप बखाना।
आशा-पास महा दुखदानी, सुख पावैं संतोषी प्रानी॥
प्रानी सदा शुचि शील जप, तप, ज्ञान ध्यान प्रभावतैं।
नित गंग जमुन समुद्र नहाये, अशुचि-दोष सुभावतैं।
ऊपर अमल मल भर्‌यो भीतर, कौन विधि घट शुचि कहै।
बहु देह मैली सुगुन-थैली, शौच-गुन साधू लहै॥

ओं ह्रीं उत्तम शौच धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥4 ॥

भावार्थ—उत्तम शौच धर्म सर्व जगत में विख्यात है यह लोभ कषाय के अभाव में होता है। लोभ सर्व पापों को (उत्पन्न) करने वाला है। आशा-इच्छा रूपी पाश भयानक दुःखों को देने वाली है अतः संतोष को धारण करने वाले जीव सुख को प्राप्त करते हैं। इस जीव की शुचिता (पवित्रता) शील, जप, तप,

ज्ञान, ध्यान के प्रभाव से होती है हमेशा गंगा, यमुना आदि नदियों में एवं समुद्र में भी स्नान करने से शुचित्ता अर्थात् पवित्रता नहीं होती क्योंकि इस शरीर का स्वभाव ही अपवित्र है। यह ऊपर तो अत्यन्त निर्मल दिखता है परन्तु इसके अन्दर मल भरा हुआ है ऐसे शरीर को किस प्रकार पवित्र कहा जा सकता है। जिनका शरीर तो मलिन है पर जो गुणों के भंडार हैं ऐसे महाव्रती साधु ही इस शौच गुण को प्राप्त करते हैं।

ओं ह्रीं धर्म के अंग उत्तम शौच धर्म के लिए अनर्घ्य पद की प्राप्ति को अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

उत्तम सत्य

कठिन वचन मत बोल, पर निंदा अरु झूठ तज।
सांच जवाहर खोल, सतवादी जग में सुखी॥

भावार्थ—कठोर वचन, पर निंदा, और झूठ वचनों का त्याग करना सत्यधर्म है सत्य रूपी जवाहर रत्न का उपयोग करना चाहिए क्योंकि सत्यवादी प्राणी संसार में सुखी रहते हैं।

उत्तम सत्य-वरत पालीजे, पर-विश्वासघात नहिं कीजे।
सांचे झूठे मानुष देखो,* आपन पूत स्वपास न पेखो॥
पेखो तिहायत पुरुष सांचे को दरब सब दीजिए।
मुनिराज-श्रावक की प्रतिष्ठा साँच गुण लख लीजिये॥
ऊँचे सिंहासन बैठि वसु नृप, धरम का भूपति भया।
बच झूठ सेती नरक पहुँचा, सुरग में नारद गया॥

ओं ह्रीं उत्तम सत्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥5॥

भावार्थ—उत्तम सत्य धर्म पालन करना चाहिए दूसरों का विश्वासघात नहीं करना चाहिए। सत्यवादी और झूठे मनुष्यों को देखो झूठ बोलने वाले अपने पुत्र पर भी विश्वास नहीं करते अर्थात् झूठे व्यक्तियों पर कोई विश्वास नहीं करता निस्वार्थ सत्यवादी का सभी विश्वास करते हैं और अमानत स्वरूप धन भी देते

+हमने अभी तक सच्चे और झूठे मनुष्य ही देखे हैं लेकिन अपने आत्मा के पवित्र स्वभाव के पास जाकर नहीं देखा यह निश्चय सत्य धर्म का लक्षण है।

सांचे झूठे मनुष्यों को तो देखता है किन्तु अपने अन्तर में स्थित शुद्ध आत्म स्वरूप को नहीं देखता जो आत्मा का सत् स्वरूप है।

हैं। मुनिराजों की और श्रावकों की प्रतिष्ठा (इज्जत) सत्य गुण से सत्यधर्म से ही है। राजा बसु ऊँचे सिंहासन पर बैठकर न्यायकरता था झूठ बोलने के कारण से नरक में गया और सत्य को बोलने वाला नारद स्वर्ग गया।

ओं ह्रीं धर्म के अंग उत्तम सत्य धर्म के लिए अनर्घ्य पद की प्राप्ति को अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

उत्तम संयम

काय छहों प्रतिपाल, पंचेन्द्री मन वश करो।
संयम-रतन संभाल, विषय चोर बहु फिरत हैं॥

भावार्थ—छह काय के जीवों की रक्षा करना और पांच इन्द्रियों और मन को वश में करना उत्तम संयम धर्म है। संयम रूपी रत्न को संभाल कर रखना चाहिए क्योंकि विषय वासना रूपी बहुत चोर घूम रहे हैं।

उत्तम संजम गहु मन मेरे, भव-भवके भाजैं अघ तेरे।
सुरग-नरक-पशुगति में नाहीं, आलस-हरन-करन सुख ठाहीं॥
ठाहीं पृथी जल आग मारुत, रूख त्रस करुना धरो।
सपरसन रसना घ्रान नैना, कान मन सब वश करो॥
जिस बिना नहिं जिनराज सीझे, तू रुल्यो जग कीच में।
इक घरी मत विसरो करो नित, आव जम-मुख बीच में॥

ओं ह्रीं उत्तम संयम धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥6 ॥

भावार्थ—उत्तम संयम धर्म को हे मन धारण करो इसे धारण करने से अनेक भवों के पाप नष्ट हो जाते हैं। यह संयम स्वर्ग, नरक और पशु (तिर्यञ्च) गति में नहीं है। यह संयम आलस का हरण करने वाला और सुख को करने वाला है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और वनस्पति ये स्थावर और त्रस इन छह काय के जीवों पर दयाभाव धारण कर स्पर्शन, रसना, घ्रान, चक्षु, कान और मन को वश करना संयम धर्म है। इस संयम के बिना तीर्थंकर भी मोक्ष को प्राप्त नहीं हुए और जिसके नहीं धारण करने से ही यह आत्मा संसार रूपी कीचड़ में फंसा रहता है। हमें इस संयम को एक क्षण को भी नहीं भूलना चाहिए हम जम अर्थात् मृत्यु के मुँह में आ रहे हैं।

ओं ह्रीं धर्म के अंग उत्तम संयम धर्म के लिए अनर्घ्य पद प्राप्त करने को अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

उत्तम तप

तप चाहे सुरराय, करम-शिखरकों वज्र है।
द्वादशविधि सुखदाय, क्यों न करै निज सकति सम।।

भावार्थ—उत्तम तप को देवों के राजा इन्द्र भी चाहते हैं यह तप कर्म रूपी पर्वत को नष्ट करने के लिए वज्र के समान है यह सुख देने वाला तप बारह प्रकार का है इन तपों को अपनी शक्ति के अनुसार क्यों धारण नहीं करते हो।

उत्तम तप सब माहिं बखाना, करम-शैलको वज्र समाना।
वस्यो अनादि-निगोद-मँझारा, भू-विकलत्रय-पशु-तन धारा।।
धारा मनुष तन महादुर्लभ, सुकुल आयु निरोगता।
श्रीजैनवानी तत्वज्ञानी, भई विषय-पयोगता।।
अति महादुर्लभ त्याग विषय, कषाय जो तप आदरैं।
नर-भव अनूपम कनक घरपर, मणिमयी कलसा धरैं।।

ओं ह्रीं उत्तम तपो धर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।7।।

उत्तम तप धर्म का सब ग्रन्थों में वर्णन मिलता है कर्म रूपी पर्वत को नष्ट करने के लिए यह वज्र के समान है। अनादिकाल से यह जीव निगोद में रह रहा है। वहाँ से निकलकर पृथ्वी आदि स्थावर हुआ स्थावर के बाद त्रस पर्याय में विकलेन्द्री हुआ और फिर पशुओं (तिर्यञ्च) के शरीर को धारण किया अब दुर्लभ यह मनुष्य पर्याय प्राप्त की है उसमें भी उच्चकुल, पूर्णआयु, निरोग शरीर, जिनवाणी का संयोग, तत्व ज्ञान, आत्म चिन्तन में उपयोग अत्यन्त दुर्लभता से प्राप्त किया है जो व्यक्ति अत्यन्त महा दुर्लभ विषय, और कषाय का त्याग कर तप को आदरपूर्वक ग्रहण करते हैं वे मनुष्य भवरूपी स्वर्ण गृह पर रत्नमयों कलशा चढ़ाते हैं अर्थात् नर जन्म धन्य करते हैं।

ओं ह्रीं धर्म के अंग उत्तम तप धर्म के लिए अनर्घ्य पद की प्राप्ति को अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

उत्तम त्याग

दान चार परकार, चार संघ को दीजिए।
धन बिजुली उनहार, नर-भव लाहो लीजिए।।

भावार्थ—दान चार प्रकार के होते ये चारों दान चार संघ अर्थात् मुनि आर्यिका, श्रावक, श्राविका को देना चाहिए। धन सम्पत्ति वैभव बिजली की चमक की तरह है अत: मनुष्य भव का लाभ लेना चाहिए।

उत्तम त्याग कह्यो जग सारा, औषध शास्त्र अभय आहारा।
निहचै राग-द्वेष निरवारै, ज्ञाता दोनों दान संभारै॥
दोनों संभारे कूप-जलसम, दरब घर में परिनया।
निज हाथ दीजे साथ लीजे खाय खोया बह गया॥
धनि साध शास्त्र अभय-दिवैया, त्याग राग विरोध को।
बिन दान श्रावक साधु दोनों, लहै नाहीं बोध को॥

*ओं ह्रीं उत्तम त्याग धर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।***8** *॥*

भावार्थ—उत्तम त्याग समस्त संसार में श्रेष्ठ है। ये दान औषधिदान, शास्त्रदान, अभयदान और आहारदान के भेद से चार प्रकार का है। यह तो व्यवहार त्याग है। निश्चय त्याग, राग द्वेष के त्याग को कहते हैं ज्ञानी जन दोनों दान (निश्चय, और व्यवहार) करते हैं। कुयें का पानी यदि खर्च न हो तो खराब हो जाता है। और यदि खर्च होता रहे तो खराब नहीं होता। उसी प्रकार घर में धन सम्पत्ति वैभव हो तो दान करना चाहिए जो श्रेष्ठ है नहीं तो नष्ट हो जायेगा लेकिन रहने वाला नहीं है। धन्य है वे साधु जो शास्त्र दान, अभय दान के देने वाले है और राग द्वेष का त्याग करने वाले है। बिना दान के श्रावक और साधु दोनों ही सम्यक् ज्ञान को प्राप्त नहीं होते।

ओं ह्रीं धर्म के अंग उत्तम त्याग धर्म के लिए अनर्घ्य पद की प्राप्ति को अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

उत्तम आकिञ्चन

परिग्रह चौबिस भेद त्याग करैं मुनिराज जी।
तिसना भाव उछेद, घटती जान घटाइए॥*

---

*परिग्रह चौबीस भेद, यह व्यवहार आकिंञ्चन धर्म है और तिसना भाव उछेद, यह निश्चय अकिञ्चन धर्म है। परिग्रह के २४ भेद (अंतरंग १४ और बाह्य १०)

अंतरंग - मिथ्यात्व, चार, कषाय तथा नौ कषाय = १४

बाह्य - खेत, मकान, रुपया, सोना, गोधन आदि, अनाज दासी, दास कपड़े तथा बर्तन व मसाले आदि = १० ।

परिग्रह के चौबीस भेद हैं उनका त्याग (व्यवहार आकिंञ्चन) मुनिराज करते हैं और तृष्णा भाव को नष्ट करते हैं (निश्चय आकिञ्चन)। श्रावकों को भी धीरे-धीरे दोनों प्रकार के परिग्रहो को घटाना चाहिए।

उत्तम आकिंचन गुण जानो, परिग्रह-चिंता दुख ही मानो।
फाँस तनकसी तन में सालै, चाह लंगोटी की दुख भालै॥
भालै न समता सुख कभी नर, बिना मुनि-मुद्रा धरै।
धनि नगन* पर तन-नगन ठाढ़े, सुर-असुर पायनि परैं॥
घरमाहिं तिसना जो घटावे, रुचि नहीं संसार सौं।
बहु धन बुरा हू भला कहिये, लीन पर उपगारसौं॥

ओं ह्रीं उत्तमाकिञ्चन्य धर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।9 ॥

उत्तम आकिंञ्चन श्रेष्ठ गुण है, परिग्रह चिन्ता दुःख के ही पर्याय है छोटी सी फाँस भी पूरे शरीर को दुःखी कर देती है उसी प्रकार लंगोटी का आवरण या लगोटी की चाह दुःख को देने वाली होती है। यह मनुष्य, महाव्रत अर्थात् निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि की मुद्रा को धारण किये बिना समता और सुख को प्राप्त नहीं कर सकते । वे मुनिराज धन्य हैं जो पर्वतों पर नग्न खड़े रहकर तप करते हैं उनके चरणों की पूजा सुर असुर आदि सभी करते हैं। घर में रहते हुए भी जो तृष्णा को घटाते हैं, तथा जनको संसार में रूचि नहीं है। ऐसे जीवों का धन यद्यपि धन बुरा ही होता है, परोपकार में लगने के कारण फिर भी अच्छा कहा गया है।

ओं ह्रीं धर्म के अंग उत्तम आकिंञ्चन धर्म करने के लिए अनर्घ्य पद की प्राप्ति को अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

उत्तम ब्रह्मचर्य

शील-बाढ़ नौ राख, ब्रह्म-भाव अन्तर लखो।
करि दोनों अभिलाख, करहु सफल नर-भव सदा॥

---

* धन्य है वे मुनि राज जो अन्तर से नग्न है (अंतरंग परिग्रह से रहित) शरीर से भी नग्न (बाह्य परिग्रह से रहित) खड़े रहते हैं।

शील की रक्षक नौ बाढ़े-१. स्त्री राग वर्धक कथा न सुनना २. स्त्रियों के मनोहर अंगों को न देखना ३. पहले भोगे हुए भोगों को याद न करना ४. गरिष्ठ व स्वादिष्ट भोजन न करना ५. अपने शरीर को श्रृंगारित न करना। ६. स्त्रियों की शय्या या आसन पर न बैठना ७. स्त्रियों से घुल मिल कर बाते न करना ८. भर पेट भोजन न करना ९. कामोत्तेजक नृत्य, फिल्म, टी.वी न देखना।

उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनौ, माता बहिन सुता पहिचानौ।
सहै बान-वरषा बहु सूरे, टिकै न नैन-बान लखि कूरे॥
कूरे तियाके अशुचि तन में, काम-रोगी रति करैं।
बहु मृतक सड़हिं मसान माहीं, काग ज्यों चोंचें भरैं॥
संसार में विष-बेल नारी, तजि गये जोगीश्वरा।
'द्यानत' धरम दस पैंडि चढ़िकै, शिव महल में पग धरा॥

*ओं ह्रीं उत्तम ब्रह्मचर्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥***10** *॥*

भावार्थ—शील को नौ बाड़े लगाकर सुरक्षित रखना चाहिए (व्यवहार ब्रह्मचर्य) और अन्तर में ब्रह्म अर्थात् आत्म चिन्तन करना चाहिए (निश्य ब्रह्मचर्य) शील की नौ बाड़ों की एवं आत्मचिन्तन इन दोनों की प्राप्ति के अभिलाषी बनके मनुष्य जन्म सफल करना चाहिए।

उत्तम ब्रह्मचर्य मन में धारण कर माता, बहिन और पुत्री की पहिचान करना चाहिए। यह जीव रणभूमि में सूरवीरों द्वारा की जाने वाली वाणों की वर्षा को सहन कर लेता है। परन्तु स्त्रीयों के क्रूर नेत्र रूपी वाण को सहन नहीं कर पाता ऐसा काम रोग से पीड़ित स्त्री के अपवित्र शरीर में रति (प्रेम) करता है जिस प्रकार श्मशान में मरे हुए सड़े हुए शरीर में कौआ प्रेम करके चौंचों से मृत शरीर को खाता है। संसार में स्त्री विष बेल+ के समान है। इसलिए सभी मुनिराजों ने स्त्रियों का त्याग कर दिया। श्री द्यानत राय जी कहते हैं कि ये दस धर्म रूपी सीढ़ियां चढ़कर मोक्ष रूपी महल में प्रवेश हो जाता है।

ओं ह्रीं धर्म के अंग उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म के लिए अनर्घ्य पद की प्राप्ति को अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

+ स्त्रीयों को विष बेल कहने का कविका अभिप्राय स्त्रियों के प्रति कामेच्छा रहा है। जैसे बहिन अथवा माता के कारण राग भाव की उत्पत्ति नहीं होती है परन्तु स्त्री मात्र के कारण रागभाव की उत्पत्ती होती है। इससे स्त्रीयों को विषबेल कहा गया है।

1. यहाँ पर व्यवहार ब्रह्मचर्य का और निश्चय ब्रह्मचर्य का वर्णन किया है। शील की नौ बाड़े लगाकर सुरक्षित रखना व्यवहार ब्रह्मचर्य है। और आत्मा में लीन रहना निश्चय ब्रह्मचर्य है।

समुच्चय जयमाला

दोहा

दस लच्छन बंदों सदा, मन वांछित फलदाय।
कहों आरती भारती, हम पर होहु सहाय॥

भावार्थ—दशलक्षण धर्म की सदा वंदना करता हूँ। इससे मन के अनुकूल फल की प्राप्ति होती है दशलक्षण धर्म की आगमानुकूल आरती कहता हूँ, हे भगवान मेरी सहायता कीजिए।

वेसरी छन्द

उत्तम छिमा जहाँ मन होइ, अंतर-बाहिर शत्रु न कोई।
उत्तम मार्दव विनय प्रकासै, नानाभेद ज्ञान सब भासै॥

भावार्थ—उत्तम क्षमा जिनके मन में होती है उनके मन में राग द्वेष आदि विकारभाव आत्मा के शत्रु और बाह्य में भी कोई शत्रु नहीं रहता। उत्तम मार्दव धर्म, विनयगुण का प्रकाशन करके अनेक प्रकार से ज्ञान के आठों भेदों का आभास करवाता है।

उत्तम आर्जव कपट मिटावे, दुरगति त्यागि सुगति उपजावे।
उत्तम सत्य-वचन मुख बोलै, सो प्रानी संसार न डोलै॥

भावार्थ–उत्तम आर्जव धर्म छलकपट को नाश करता है एवं खोटी गतियों से छुड़ाकर श्रेष्ठ गतियों में उत्पन्न करवाता है। जो उत्तम सत्य वचन मुख से बोलते हैं वे जीव संसार में परिभ्रमण नहीं करते।

उत्तम शौच लोभ-परिहारी, संतोषी गुण-रत्न भंडारी।
उत्तम संयम पालै ज्ञाता, नर-भव सफल करै ले साता॥

भावार्थ–उत्तम शौच धर्म लोभ कषाय का नाश करता है, जिनके संतोष है वे गुणों के भंडार होते है । उत्तम संयम धर्म को जो ज्ञानीजन धारण करते है वे साता को प्राप्त करके मनुष्य भव को सफल करते हैं ।

उत्तम तप निरवांछित पालै, सो नर करम-शत्रु को टालै।
उत्तम त्याग करे जो कोई, भोगभूमि-सुर शिवसुख होई॥

भावार्थ–इच्छा रहित उत्तम तप धर्म का पालन करने से मनुष्यों के कर्म रूपी शत्रुओं का नाश हो जाता है । जो व्यक्ति उत्तम त्याग करते हैं वे भोग भूमि और स्वर्ग के सुख भोग कर मोक्ष सुख प्राप्त करते हैं ।

उत्तम आकिंचन व्रत धारे, परम समाधि दशा विस्तारे।
उत्तम ब्रह्मचर्य मन लावै, नर-सुर सहित मुकति-फल पावै॥

भावार्थ–जो उत्तम आकिञ्चन धर्म को धारण करते है वे परम समाधि को प्राप्त होते है । उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म को जो मन में धारण करते हैं वे मनुष्य देव गति को प्राप्त कर मोक्षफल प्राप्त करते हैं ।

दोहा

करै करमकी निरजरा, भव पींजरा विनाश।
अजर अमर पद को लहै, 'द्यानत' सुखकी राश॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य दश-लक्षण-धर्माय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

भावार्थ—यह दस लक्षण धर्म कर्म की निर्जरा कर भव रूपी पिंजरा को नष्ट कर अजर, अमर पद को प्राप्त कर सुख की राशि अर्थात् अनंत सुख की प्राप्ति कराते हैं ऐसा द्यानत राय जी कहते हैं ।

ओं ह्रीं उत्तम क्षमा आदि दशलक्षण धर्म के लिए अनर्घ्य पद की प्राप्ति को अर्घ्य समर्पित करता हूँ ।

दीप रतनमय सार, जोत प्रकाशै जगत में।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्न-त्रय भजूँ ॥६॥

ओं ह्रीं सम्यक् रत्नत्रयाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्व० स्वाहा।

रत्नों के दीपक की ज्योति संसार में प्रकाश करने वाली है ऐसे दीपक से जन्मादिक रोगों के नाश करने को सम्यक् रत्नत्रय की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं सम्यक् रत्नत्रय के लिए मोह के अंधकार को नष्ट करने को दीपक समर्पित करता हूँ।

धूप सुवास विथार, चंदन अगर कपूर की।
जनम-रोग निरवार सम्यक् रत्न-त्रय भजूँ ॥७॥

ओं ह्रीं सम्यक् रत्नत्रयाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्व० स्वाहा।

चंदन अगर और कपूर से निर्मित धूप की सुगंधि को फैलाकर जन्मादिक रोगों के नष्ट करने को सम्यक् रत्नत्रय की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं सम्यक् रत्नत्रय के लिए आठ कर्मों के नाश करने को धूप समर्पित करता हूँ।

फल शोभा अधिकार, लोंग छुहारे जायफल।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्न-त्रय भजूँ ॥८॥

ओं ह्रीं सम्यक् रत्नत्रयाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्व० स्वाहा।

जो अत्यन्त सुन्दर लग रहे हैं ऐसे लोंग छुहारे (खारक) एवं जायफल आदि फलों से जन्मादिक रोगों को नष्ट करने के लिए सम्यक् रत्नत्रय की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं सम्यक् रत्नत्रय के लिए मोक्षफल की प्राप्ति के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

आठ दरब निरधार, उत्तम सों उत्तम लिये।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्न-त्रय भजूँ ॥९॥

ओं ह्रीं सम्यक् रत्नत्रयाय अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्व० स्वाहा।

उत्कृष्ट से उत्कृष्ट आठ द्रव्यों का निर्धारण कर जन्मादिक रोगों के नष्ट करने को सम्यक् रत्नत्रय की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं सम्यक् रत्नत्रय के लिए अनर्घ्य पद प्राप्त करने के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

सम्यक् दरशनज्ञान, व्रत शिव-मग-तीनों मयी।
पार उतारन यान, 'द्यानत' पूजों व्रतसहित ॥१०॥

ओं ह्रीं सम्यक् रत्नत्रयाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक् दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र इन तीनों रूप मोक्ष मार्ग है, ये संसार को पार करने के लिए जहाज के समान है द्यानत राय जी कहते हैं कि मैं रत्नत्रय व्रत को पालन करते हुए सम्यक् रत्नत्रय की पूजा करता हूँ ॥१०॥

ओं ह्रीं सम्यक् रत्नत्रय के लिए अनर्घ्य पद की प्राप्ति के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

सम्यग्दर्शन-पूजा

दोहा

सिद्ध अष्ट-गुनमय प्रगट, मुक्त-जीव-सोपान।
ज्ञान चरित जिहं बिन अफल, सम्यक् दर्शन प्रधान॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। आह्वानम्

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र तिष्ठ तिष्ठः ठः ठः। स्थापनम्

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्। सन्निधिकरणम्

सिद्ध भगवान के आठ गुणों को प्रकट करने के लिए सम्यक् दर्शन ही मुख्य है। जीवों को मुक्ति दिलाने के लिए सीढ़ी के समान है। सम्यक् दर्शन सबमें प्रधान है क्योंकि इसके बिना ज्ञान और चारित्र फल नहीं देते।

ओं ह्रीं अष्ट अंग सहित सम्यक् दर्शन ! यहाँ आइये आइये।

ओं ह्रीं अष्ट अंग सहित सम्यक् दर्शन ! यहाँ ठहरिये ठहरिये।

ओं ह्रीं अष्ट अंग सहित सम्यक् दर्शन ! यहाँ और मेरे समीप होइये होइये।

ओं ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जल, चन्दन, अक्षत, सुन्दर दीप, धूप, फल, पुष्प और नैवेद्य से उत्कृष्ट सम्यक् दर्शन के आठ अंगों की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं आठ अंग सहित सम्यक् दर्शन के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

जयमाला

दोहा

आप आप निहचै लखै, तत्त्व-प्रीति व्योहार।
रहित दोष पच्चीस हैं, सहित अष्ट गुन सार॥१॥

सम्यक् दरशन-रत्न गहीजै, जिन-वचमें संदेह न कीजै।
इह भवविभव-चाह दुखदानी, पर-भव भोग चहै मत प्रानी॥
प्रानी गिलान न करि अशुचि लखि, धरम गुरु प्रभु परखिये।
पर-दोष ढकिये, धरम डिगते को सुथिर कर, हरखिये॥
चहुं संघको वात्सल्य कीजै, धरम की परभावना।
गुन आठसों गुन आठ लहिकै, इहां फेर न आवना॥

ओं ह्रीं अष्टांगसहित पंचविंशति दोषरहित सम्यग्दर्शनाय पूर्णार्घ्यं नि० स्वाहा।

अपने आप पर श्रद्धा करना निश्चय सम्यक् दर्शन है और तत्वों पर श्रद्धान करना व्यवहार सम्यक् दर्शन है।

सम्यक् दर्शन को ग्रहण कीजिए। जिनेन्द्र भगवान् की वाणी में शंका नहीं कीजिए। इस भव में वैभव की चाह, दुख को देने वाली है। अगले भव के भोगों की चाह नहीं करना चाहिए। मुनिराज के शरीर की अशुचिता को न देखकर उनके धर्म को देखिये । दूसरों के दोषों को छुपाना चाहिए और उसे धर्म में स्थिर कर हर्षित होना चाहिए। चतुर्विधि संघ (मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका) से वात्सल्य भाव रखिये और धर्म की प्रभावना कीजिए। इन आठ गुणों को धारण करने से फिर यहाँ (संसार में) पुनः आना नहीं होता।

ओं ह्रीं आठ अंग सहित एवं पच्चीस दोष रहित सम्यक् दर्शन के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

सम्यग्ज्ञान पूजा

दोहा

पंच भेद जाके प्रकट, ज्ञेय-प्रकाशन-भान।
मोह-तपन-हर चंद्रमा, सोई सम्यकज्ञान ॥१ ॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम् ।

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र तिष्ठ तिष्ठः ठः ठः स्थापनम् ।

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् । सन्निधिकरणम्

जिसके पाँच भेद हैं, जो ज्ञेय पदार्थों को प्रकाशित करने केलिए सूर्य के समान हैं, और मोह के ताप को नष्ट करने के लिए चन्द्रमा के समान है वह सम्यग्ज्ञान है ।

ओं ह्रीं आठ प्रकार सम्यक् ज्ञान ! यहाँ आइये आइये ।

ओं ह्रीं आठ प्रकार सम्यक् ज्ञान ! यहाँ ठहरिये ठहरिये ।

ओं ह्रीं आठ प्रकार सम्यक् ज्ञान ! यहाँ मेरे और समीप होइये होइये ।

सोरठा

नीर सुगंध अपार, तृषा हरै मल छय करै ।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥१ ॥

ओं ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

अत्यन्त सुगंधित जल से, प्यास को मिटाने केलिए एवं आत्म मल धोने के लिए दोष रहित आठ प्रकार सम्यक्ज्ञान की हमेशा पूजा करता हूँ ।

ओं ह्रीं आठ प्रकार सम्यक् ज्ञान के लिए जल समर्पित करता हूँ ।

जल केसर घनसार, ताप हरै शीतल करै ।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ-भेद पूजौं सदा ॥२ ॥

ओं ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल के साथ केशर घिसकर ताप को नष्ट करने के लिए एवं शीतलता प्राप्त करने के लिए चन्दन से दोष रहित आठ प्रकार सम्यक् ज्ञान की हमेशा पूजा

करता हूँ।

ओं ह्रीं आठ प्रकार सम्यक् ज्ञान के लिए चंदन समर्पित करता हूँ।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥३॥

ओं ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञान अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

उपमा से रहित, देखने में अच्छे लगने वाले अक्षतों (चावलों) से दरिद्रता को नष्ट करने के लिए एवं सुखों से परिपूर्ण होने के लिए दोष रहित आठ प्रकार सम्यक् ज्ञान की हमेशा पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं आठ प्रकार सम्यक् ज्ञान के लिए अक्षत समर्पित करता हूँ।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥४॥

ओं ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सुगंधित फूलों से, उदारता पूर्वक, दुःख को नष्ट करने के लिए मन की शुचिता अर्थात् मन की पवित्रता के लिए दोष रहित आठ प्रकार सम्यक् ज्ञान की हमेशा पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं आठ प्रकार सम्यक् ज्ञान के लिए पुष्प अर्पित करता हूँ।

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरै थिरता करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥५॥

ओं ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अनेक प्रकार के नैवेद्यों (पकवानों) से, भूख को नष्ट करने के लिए एवं स्थिरता को प्राप्त करने के लिए दोष रहित आठ प्रकार सम्यक् ज्ञान की हमेशा पूजा करता हूँ॥५॥

ओं ह्रीं आठ प्रकार सम्यक् ज्ञान के लिए नैवेद्य समर्पित करता हूँ।

दीप-जोति तम-हार, घट-पट परकाशै महा।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥६॥

ओं ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक की ज्योति से, अंधकार को नष्ट करने के लिए एवं घट पटादि पदार्थों

को प्रकाशित करने के लिए दोष रहित आठ प्रकार सम्यक् ज्ञान की हमेशा पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं आठ प्रकार सम्यक् ज्ञान के लिए दीप समर्पित करता हूँ।

धूप घ्रान-सुखकार रोग विघन जड़ता हरै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥७॥

ओं ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

नासिका को अच्छी लगने वाली धूप से रोगों को नष्ट करने के लिए विघ्नों को दूर करने के लिए एवं अज्ञान को दूर करने के लिए दोष रहित आठ प्रकार सम्यक् ज्ञान की हमेशा पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं आठ प्रकार सम्यक् ज्ञान के लिए धूप समर्पित करता हूँ।

श्रीफल आदि विथार निहचै सुर-शिव फल करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥८॥

ओं ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल (नारियल) आदि विस्तृत फलों से निश्चय ही स्वर्ग और मोक्ष फल को प्राप्त करने के लिए दोष रहित आठ प्रकार सम्यक् ज्ञान की हमेशा पूजा करता हूँ ॥८॥

ओ ह्रीं आठ प्रकार सम्यक् ज्ञान के लिए फल समर्पित करता हूँ।

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥९॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जल, चन्दन, अक्षत, सुन्दर दीप, धूप, फल, पुष्प और नैवेद्य से दोष रहित आठ प्रकार सम्यक् ज्ञान की हमेशा पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं आठ प्रकार सम्यक् ज्ञान के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

जयमाला

दोहा

आप आप जानै नियत, ग्रन्थ पठन व्यौहार।
संशय विभ्रम मोह बिन, अष्ट अंग गुनकार॥

सम्यक् ज्ञान-रतन मन भाया, आगम तीजा नैन बताया।
अच्छर शुद्ध अर्थ पहिचानो, अच्छर अरथ उभय सँग जानो॥
जानो सुकाल-पठन जिनागम, नाम गुरु न छिपाइये।
तप रीति गहि बहु मौन देकै, विनय गुण चित लाइये॥
ये आठ भेद करम उछेदक, ज्ञान-दर्पण देखना।
इस ज्ञान ही सों भरत सीझा, और सब पटपेखना॥

ओं ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अपने आपको जानना निश्चय सम्यक् ज्ञान है और ग्रन्थों को पढ़ना व्यवहार सम्यक् ज्ञान है। संशय, विभ्रम मोह के बिना ही सम्यक् ज्ञान के अंग, गुणों की वृद्धि करने वाले होते हैं।

सम्यक् ज्ञान रूपी रत्न मन को अच्छा लगता है आगम, पदार्थों को जानने के लिए तीसरा नेत्र कहा गया है। आगम के शुद्ध अक्षर और शुद्ध अर्थ को जानना चाहिए। अक्षर एवं अर्थ को एक साथ जानना चाहिए। जैन आगम के पढ़ने का सुयोग्य काल जानकर ही आगम (शास्त्र) पढ़ना चाहिए। अपने गुरु का नाम कभी नहीं छुपाना चाहिए। तप को (स्वाध्याय तप) विधि पूर्वक मौन से धारण करना चाहिए। ये आठ भेद कर्मों का नाश करन वाले हैं। ज्ञान, दर्पण के समान वस्तु के स्वाभाव को प्रकाशित करता है। इस सम्यक् ज्ञान से ही भारत चक्रवर्ती ने मोक्ष प्राप्त किया। और दूसरे ज्ञान तो मात्र पर पदार्थों को देखने वाले हैं।

ओं ह्रीं आठ प्रकार सम्यक् ज्ञान के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

सम्यक्-चारित्र पूजा

दोहा

विषय-रोग औषध महा, दव-कषाय-जल-धार।
तीर्थंकर जाको धरै सम्यक् चारित सार॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक् चारित्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम्।

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक् चारित्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् ।

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक् चारित्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम् ।

सम्यक चरित्र विषय वासना रूपी रोगों के लिए औषधि के समान है और कषाय रूपी दावानल को शान्त करने के लिए जल धारा के समान है जिसे तीर्थंकर भी धारण करते हैं ऐसा सम्यक् चारित्र सारभूत है ।

ओं ह्रीं तेरह प्रकार सम्यक् चारित्र ! यहाँ आइये आइये ।

ओं ह्रीं तेरह प्रकार सम्यक् चारित्र ! यहाँ ठहरिये ठहरिये ।

ओं ह्रीं तेरह प्रकार सम्यक् चारित्र ! यहाँ मेरे और समीप होइये ।

सोरठा

नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरै मल छय करै ।
सम्यक् चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ।।१ ।।

ओं ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

अत्यन्त सुगंधित जल से, प्यास को मिटाने के लिए एवं आत्म मल धोने के लिए उत्कृष्ट तेरह प्रकार सम्यक् चारित्र की पूजा करता हूँ ।

ओं ह्रीं तेरह प्रकार सम्यक् चारित्र के लिए जल समर्पित करता हूँ ।

जल केशर घनसार, ताप हरै शीतल करै ।
सम्यकचारित सार, तेरहविध पूजों सदा ।।२ ।।

ओं ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल के साथ केशर घिसकर ताप को नष्ट करने के लिए एवं शीतलता प्राप्त करने के लिए चन्दन से सारभूत तेरह प्रकार के सम्यक् चारित्र की पूजा करता हूँ ।

ओं ह्रीं तेरह प्रकार सम्यक् चारित्र के लिए चंदन समर्पित करता हूँ ।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै ।
सम्यकचारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ।।३ ।।

ओं ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय अक्षतान् निर्व० ।

उपमा से रहित देखने में अच्छे लगने वाले अक्षतों (चावलों) से दरिद्रता को नष्ट करने केलिए एवं सुखों से परिपूर्ण होने के लिए सारभूत तेरह के प्रकार सम्यक चारित्र की पूजा करता हूँ ।

ओं ह्रीं तेरह प्रकार समयक् चारित्र के लिए अक्षत समर्पित करता हूँ।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै।
सम्यकचारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ।।४ ।।

ओं ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय पुष्पं निर्व० स्वाहा ।

सुगंधित फूलों से, उदारता पूर्वक दुःख को नष्ट करने के लिए और मन की शुचिता को अर्थात् मन को पवित्र करने के लिए सार भूत तेरह प्रकार के सम्यक् चारित्र की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं तेरह प्रकार सम्यक् चारित्र के लिए पुष्प समर्पित करता हूँ।

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरै थिरता करै।
सम्यकचारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ।।५ ।।

ओं ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अनेक प्रकार के नैवेद्यों (पकवानों) से भूख को मिटाने के लिए एवं स्थिरता को प्राप्त करने के लिए तेरह प्रकार के सम्यक् चारित्र की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं तेरह प्रकार सम्यक् चारित्र के लिए नैवेद्य समर्पित करता हूँ।

दीप-ज्योति तम-हार, घट पट परकाशै महा।
सम्यकचारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ।।६ ।।

ओं ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

दीपक की ज्योति से अंधकार को नष्ट करने के लिए एवं घट, पटादि, पदार्थों को प्रकाशित करने के लिए सारभूत तेरह प्रकार के सम्यक् चारित्र की पूजा करता हूँ।

ओं ह्री तेरह प्रकार सम्यक् चारित्र के लिए दीप समर्पित करता हूँ।

धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै।
सम्यकचारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ।।७ ।।

ओं ह्री त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

नासिका को अच्छी लगने वाली धूप से रोगों को नष्ट करने के लिए विघ्नों को दूर करने के लिए एवं अज्ञान को दूर करने सारभूत तेरह प्रकार के सम्यक् चारित्र की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं तेरह प्रकार के सम्यक् चारित्र के लिए धूप समर्पित करता हूँ।

श्रीफल आदि विथार, निहचै सुर शिव फल करै।
सम्यकचारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥८॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल (नारियल) आदि विस्तृत फलों से निश्चय ही स्वर्ग और मोक्ष फल को प्राप्त करने के लिए सारभूत तेरह प्रकार के सम्यक् चारित्र की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं तेरह प्रकार के सम्यक् चारित्र के लिए फल समर्पित करता हूँ।

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यकचारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥९॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविध समयक् चारित्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जल, चन्दन, अक्षत, सुन्दर दीप, धूप, फल, पुष्प और नैवेद्य से सारभूत तेरह प्रकार के चारित्र की पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं तेरह प्रकार सम्यक् चारित्र के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

जयमाला

दोहा

आप आप थिर नियत नय, तप संजम व्यौहार।
स्व-पर-दया दोनों लिये, तेरहविध दुखहार ॥

चौपाई मिश्रित गीताछन्द

सम्यकचारित रतन सँभालौ, पाँच पाप तजिके व्रत पालौ।
पंचसमिति त्रय गुपति गहीजै, नरभव सफलकरहु तनछीजै ॥
छीजै सदा तनको जतन यह, एक संजम पालिये।
बहु रुल्यो नरक-निगोद माहीं, विष-कषायनि टालिये ॥
शुभ करम जोग सुघाट आयो, पार हो दिन जात है।
'द्यानत' धरम की नाव बैठो, शिवपुरी कुशलात है ॥२॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय महार्घ्यं निर्व० स्वाहा।

जयमाला

अपने आप में स्थिर रहना निश्चय नय से सम्यक् चारित्र है। और तप, संयम आदि का पालन करना व्यवहार नय से सम्यक् चारित्र है। तेरह प्रकार का चरित्र, अपनी आत्मा पर एवं दूसरे जीवों पर दया करने वाला है और दुखों को दूर करने वाला है।

सम्यक् चारित्र रूपी रत्न की सम्हाल करना चाहिए। पाँच पापों का त्याग करके पाँच व्रत पालन करना चाहिए। पाँच समितियाँ तीन गुप्तियांग्रहण कर। मनुष्य भव को सफल बनाना चाहिए। इस शरीर को धारण किया है। अतः हमें इस शरीर के द्वारा एक संयम (देश संयम था सकल संयम) अवश्य पालन करना चाहिए। नरक और निगोद में बहुत समय तक रुला हूँ। अब विषय और कषायों का नाश कीजिए क्योंकि शुभकार्य के संयोग से अच्छा घाट प्राप्त हुआ है। हमें शीघ्र ही भव सागर से पार हो जाना चाहिए नहीं तो सूर्य अस्त हो जावेगा (आयु समाप्त हो जावेगी) श्री द्यानत राय जी कहते हैं कि धर्म की नौका में बैठो जिससे मोक्ष रूपी नगर में कुशलता पूर्वक पहुँच जावोगे।

ओं ह्रीं तेरह प्रकार सम्यक् चारित्र के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

समुच्चय-जयमाला

दोहा

सम्यकदरशन-ज्ञान-व्रत, इन बिन मुकतिं न होय।
अन्ध पंगु अरु आलसी, जुदे जलैं दव-लोय ॥१॥

सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र इन के बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती जिस प्रकार अंधा, लंगड़ा, और आलसी व्यक्ति जंगल की आग में अलग-अलग रहने पर जल जाते हैं।

चौपाई १६ मात्रा

जापै ध्यान सुथिर बन आवै, ताके करम-बंध कट जावै।
तासों शिव-तिय प्रीति बढ़ावै, जो सम्यक् रत्न-त्रय ध्यावै॥

जो सम्यक् रत्नत्रय का ध्यान करते हैं उनके ध्यान की स्थिरता बनती है। उनके कर्म के बंध कट जाते हैं। और उससे मोक्ष रूपी स्त्री की प्रीति बढ़ जाती है।

ताको चहुं गति के दुख नाहीं, सो न परै भव-सागर माहीं।
जनम-जरा-मृत दोष मिटावै, जो सम्यक् रत्न-त्रय ध्यावै ॥

जो सम्यक् रत्नत्रय का ध्यान करते हैं उन्हें चारों गतियों के दुःख नहीं होते, वे भव सागर में भ्रमण नहीं करते वे जन्म जरा और मृत्यु के दोषों को मिटा देते हैं ।

सोई दश लच्छन को साधै, सो सोलह कारण आराधै।
सो परमातम पद उपजावै, जो सम्यक् रत्न-त्रय ध्यावै ॥

जो सम्यक् रत्नत्रय का ध्यान करते हैं वे दशलक्षण धर्म की साधना करते हैं, सोलह कारण भावनाओं की आराधना करते हैं और वे ही परमात्म पद की प्राप्ति करते हैं ।

सोई शक्र-चक्रिपद लेई, तीन लोकके सुख विलसेई।
सो रागादिक भाव बहावै, जो सम्यक् रत्न-त्रय ध्यावै ॥

जो सम्यक् रत्नत्रय का ध्यान करते हैं वे इन्द्र और चक्रवर्ति का पद प्राप्त करते हैं । तीनों लोकों के सुखों का भोग करते हैं और वे ही रागादिक भावों का नाश करते हैं ।

सोई लोकालोक निहारै, परमानंद दशा विसतारै।
आप तिरै औरन तिरवावै जो सम्यक् रत्न-त्रय ध्यावै ॥

जो सम्यक् रत्नत्रय का ध्यान करते हैं वे लोक और अलोक को देखते हैं (केवल ज्ञान प्राप्त करते है) परम आनंद की अवस्था को प्राप्त करते हैं और आप संसार से पार होते है और दूसरों को भी संसार से पार उतारते हैं ।

दोहा-एक स्वरूप-प्रकाश निज, वचन कह्यो नहिं जाय।
तीन भेद व्योहार सब, 'द्यानत' को सुखदाय ॥७ ॥

ओं ह्रीं सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्राय महार्घ्यनिर्व० ।

निश्चय नय से सम्यक् रत्नत्रय एक जीव को ही प्रकाशित करता है इन्हें वचन से भी नहीं कहा जा सकता । सम्यक् रत्नत्रय के, सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र ये तीन भेद व्यवहार नय से है । श्री द्यानत राय जी कहते हैं कि ये सुख को देने वाले हैं ।

ओं ह्रीं सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ ।

श्री रविव्रत पूजा।

अडिल्ल छन्द।

यह भविजन हितकार, सु रविव्रत जिन कही।
करहु भव्यजन सर्व, सुमन देकें सही॥
पूजो पार्श्व जिनेन्द्र, त्रियोग लगायके।
मिटै सकल सन्ताप, मिलै निधि आयके॥
मतिसागर इक सेठ, सुग्रन्थन में कहो।
उनने भी यह पूजा कर आनन्द लहो॥
तातें रविव्रत सार, सो भविजन कीजिये।
सुख सम्पति संतान, अतुल निधि लीजिये॥
प्रणमों पार्श्व जिनेश को, हाथ जोड़ सिर नाय।
परभव सुख के कारने, पूजा करूं बनाय॥
रवीवार व्रत के दिना, येहि पूजन ठान।
ता फल सम्पति को लहैं, निश्चय लीजे मान॥

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र !अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र !अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

उज्जल जल भरकें अतिलायो, रतन कटोरन माहीं।
धार देत अति हर्ष बढ़ावत, जन्म जरा मिट जाहीं॥
पारसनाथ जिनेश्वर पूजो, रविव्रत के दिन भाई।
सुख सम्पत्ति बहु होय तुरतही, आनन्द मंगल दाई॥१॥

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामत्युविनाशनाय जलम् नि० स्वाहा।

मलयागिर केशर अतिसुन्दर, कुंकुम रङ्ग बनाई।
धार देत जिन चरनन आगे, भव आताप नशाई॥ पारस

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं नि० स्वाहा।२।

मोतीसम अति उज्जवल तंदुल, लावो नीर पखारो।
अक्षयपद के हेतु भावसों, श्री जिनवर ढिग धारो॥ पारस.
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् अक्षतान् नि०स्वाहा।३।

बेला अरू मचकुंद चमेली, पारिजात के ल्यावो।
चुनचुन श्रीजिन अग्र चढ़ाऊं, मनवांछित फल पावो॥ पारस.
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पम्।४।

बावर फैनी गुजिया आदिक, घृत में लेत पकाई।
कंचन थार मनोहर भरके, चरनन देत चढ़ाई॥ पारस.
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवैद्यम्।५।

मणिनय दीप रतनमय लेकर, जगमग जोति जगाई।
जिनके आगे आरति करके, मोहतिमिर नश जाई॥ पारस.
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोहन्धकारविनाशनाय दीपम्।६।

चूरन कर मलयागिर चंदन, धूप दशांग बनाई।
तट पावक में खेय भाव सों, कर्मनाश हो जाई॥ पारस.
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपम्।७।

श्रीफल आदि बदाम सुपारी, भांति भांति के लावो।
श्रीजिन चरन चढ़ाय हरषकर, तातें शिव फल पावो॥ पारस.
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलम्।८।

जल गंधादिक अष्ट द्रव्य ले, अर्घ बनावो भाई।
नाचत गावत हर्षभाव सों, कंचन थार भराई॥ पारस.
ओं ह्री श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्ध्यप्राप्तये अर्ध्यम्।९।

गीतिका छन्द।

मन वचन काय त्रिशुद्ध करके, पार्श्वनाथ सु पूजिये।
जल आदि अर्घ बनाय भविजन, भक्तिवंत सु हूजिये॥
पूज्य पारसनाथ जिनवर, सकल सुखदातार जी।

जे करत हैं नर नारी पूजा, लहत सौख्य अपार जी।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घ निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

यह जग में विख्यात हैं पारसनाथ महान।
तिन गुण की जयमालिका, भाषा करूं बखान।।
जय जय प्रणामों श्री पार्श्व देव,
इन्द्रादिक तिनकी करत सेव।
जय जय सु बनारस जन्म लीन,
तिहुँ लोक विषैं उद्योत कीन।।
जय जिनके पितु श्री अश्वसेन,
तिनके घर भये सुख-चैन देन।
जय वामा देवी मात जान,
तिनके उपजे पारस महान।।
जय तीन लोक आनन्द देन,
भविजन के दाता भये ऐन।
जय जिनने प्रभु का शरण लीन,
तिनकी सहाय प्रभुजी सो कीन।।
जय नाग नागिनी भये अधीन,
प्रभु चरणन लाग रहे प्रवीन।
तज देह देवगति गये जाय,
धरणेन्द्र पद्मावति पद लहाय।।
जय अञ्जन चोर अधम अजान,
चोरी तज प्रभु को धरो ध्यान।
जय मृत्यु भये वह स्वर्ग जाय।
ऋद्धी अनेक उनने सो पाय।।

जय मतिसागर इक सेठ जान,
तिन अशुभकर्म आयो महान।
तिनकै सुत थे परदेश माहिं,
उनसे मिलने की आश नाहिं॥
जय रविव्रत पूजन करी सेठ,
ता फल कर सब से भई भेंट।
जिन जिन ने प्रभु का शरण लीन,
तिन ऋद्धि सिद्धि पाई नवीन।
जय रविव्रत पूजा करहिं जेय,
ते सौख्य अनन्तानन्त लेय।
धरणेन्द्र पद्मावति हुये सहाय,
प्रभुभक्त जान तत्काल आय॥
पूजा विधान इहिविधि रचाय,
मन वचन काय तीनों लगाय।
जो भक्तिभाव जयमाल गाय,
सोही सुखसम्पत्ति अतुल पाय॥
बाजत मृदंग बीनादि सार,
गावत नाचत नाना प्रकार।
तन नन नन नन नन ताल देत,
सन नन नन नन सुर भर सो लेत॥
ता थेई थेई थेई पग धरत जाय,
छम छम छम छम घुंघरू बजाय।
जे करहिं निरत इहि भांत भांत,
ते लहहिं सुक्ख शिवसुर सुजात॥
रविव्रत पूजा पार्श्व की, करै भविक जन जोय।

सुख सम्पत्ति इह भव लहै, आगे सुर पद होय॥

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घ निर्वपामीति स्वाहा।

रविव्रत पार्श्व जिनेन्द्र, पूज भवि मन धरें।
भव भव के आताप, सकल छिन में टरें॥
होय सुरेन्द्र नरेन्द्र, आदि पदवी लहे।
सुख सम्पत्ति सन्तान, अटल लक्ष्मी रहे॥
फेर सर्व विधि पाय, भक्ति प्रभु अनुसरें।
नानाविधि सुख भोग, बहुरि शिवतिय वरें॥

इत्याशीर्वाद।

सरस्वती पूजन

स्थापना (दोहा)

जनम-जरा-मृतु छय करै, हरै कुनय जड़रीति।
भवसागर सों ले तिरै, पूजे जिन वच प्रीति।

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि। अत्र अवतर अवतर संवौष्ट्। आह्वानम्

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि। अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठःठः स्थापनं।

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि। अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्। सन्निधिकरणम्।

(त्रिभंगी)

क्षीरोदधिगंगा, विमल तरंगा, सलिल अभंगा सुखसंगा।
भरि कंचन झारी, धार निकारी, तृषा निवारी हितचंगा॥
तीर्थंकर की धुनि, गणधरने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई।
सो जिनवर वानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन मानी पूज्य भई॥

ओं ह्रीं जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै जन्मजरामृत्युविनाशानाय जलं नि. स्वा०।

करपूर मंगाया, चंदन आया, केशर लाया रंग भरी।
शारदपद वंदों, मन अभिनंदों पाप निकंदो दाह हरी॥ तीर्थंकर,

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा॥

सुखदास कमोदं धारकमोदं अति अनुमोदं चंदसमं।
बहुभक्ति बढ़ाई, कीरति गाई, होहु सहाई मात ममं॥ तीर्थंकर॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा॥

बहुफूल सुवास, विमल प्रकाशं आनन्दरासं लाय धरे।
मम काम मिटाओ, शील बढ़ाओ, सुख उपजायो दोष हरे॥ तीर्थंकर।

ओं ह्रीं श्रीजनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यैकामबाणविध्वसनाय पुष्पंनि. स्वाहा।

पकवान बनाया, बहुघृत लाया, सब विधि भाया मिष्ट महा।
पूजूँ थुति गाऊँप्रीति बढ़ाऊँ क्षुधा नशाऊँ हर्ष लहा ॥तीर्थंकर।
ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।
करि दीपक जोतं, तमछय होतं, ज्योति उदोतं तुमहिं चढ़ै।
तुम हो परकाशक भरमविनाशक, हम घट भासक ज्ञान बढ़ै॥ तीर्थंकर।
ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।
शुभगंध दशोंकर, पावक में धर धूप मनोहर, खेवत हैं।
सब पाप जलावैं, पुण्य कमावैं, दास कहावैं सेवत हैं॥तीर्थंकर।
ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि. स्वाहा।
बादाम छुहारी, लोंग सुपारी, श्रीफल भारी ल्यावत है।
मनवांछित दाता, मेट असाता तुम गुन माता गावत हैं॥तीर्थंकर।
ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।
नयनन सुखकारी, मृदुगुणधारी, उज्जवल भारी, मोल धरैं।
शुभगंध सम्हारा, वसन निहारा, तुम तन धारा ज्ञान करैं॥तीर्थंकर।
ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै दिव्यज्ञानप्राप्तये वस्त्रं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चंदन अच्छत, फूल चरु अरु, दीप धूप फल अति लावैं।
पूजा को ठानत, जो तुम जानत, सो नर द्यानत सुख पावैं॥तीर्थंकर।
ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

(सोरठा)

ओंकार धुनिसार, द्वादशांगवाणी विमल।
नमों भक्ति उर धार, ज्ञान करै जड़ता हरै॥

(चौपाई)

पहलो आचारांग बखानो, पदअष्टादश सहस प्रमानो।
दूजो सूत्रकृतं अभिलाषं, पद छत्तीस सहस गुरु भाषं॥
तीजो ठाना अंग सु जानं, सहस बियालिस पद सरधानं।
चौथो समवायांग निहारं चौसठ सहस लाख इक धारं॥
पंचम व्याख्या प्रज्ञप्ति दरसं, दोय लाख अट्ठाइस सहसं।
छट्ठो ज्ञातृकथा विस्तारं पाँच लाख छप्पन हजारं॥
सप्तम उपासकाध्ययनंगं सत्तर सहस ग्यारलख भंगं।
अष्टम अन्तकृत दश ईसं, सहस अट्ठाइस लाख तेईसं॥
नवम अनुत्तरदश सुविशालं, लाख बानवै सहस चवालं।
दशम प्रश्न व्याकरण विचारं लाख तिरानवै सोल हजारं॥
ग्यारम सूत्रविपक सु भाखं एक कोड़ि चौरासी लाखं।
चार कोड़ि अरु पन्द्रह लाखं दो हजार सब पद गुरुशाखं॥
द्वादश दृष्टिवाद पनभेदं, इकसौ आठ कोड़िपनवेदं।
अड़सठ लाख सहस छप्पन हैं, सहित पंचपद मिथ्याहन हैं॥
इकसौ बारह कोड़ि बखानो, लाख तिरासी ऊपर जानो।
ठावन सहस पंच अधिकाने, द्वादश अंग सर्व पद माने॥
कोड़िइकावन आठ हि लाखं, सहस चुरासी छह सौ भाखं।
साढ़े इक्कीस श्लोक बताये, एक-एक पद के ये गाये॥

(दोहा)

जा वानी के ज्ञान तै, सूझै लोक-अलोक।
"द्यानत" जग जयवन्त हो, सदा देत हों धोक॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

नवदेवता पूजन।

गीताछन्द।

अरिहंत सिद्धाचार्य पाठक, साधु त्रिभुवन वंद्य हैं।
जिनधर्म जिनआगम जिनेश्वरमूर्ति जिनगृह वंद्य हैं॥
नव देवता ये मान्य जगमें, हम सदा अर्चा करें।
आह्वान कर थापें यहाँ मन में अतुल श्रद्धा धरें॥

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु जिनधर्मजिनागमजिनचैत्य-चैत्यालयसमूह !अत्र अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं... अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं... अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधीकरणं।

अथाष्टक।

गंगानदी का नीर निर्मल, बाह्य मल धोवे सदा।
अंतर मलों के क्षालने को नीर से पूजूं मुदा॥
नवदेवताओं की सदा जो भक्ति से अर्चा करें।
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल पाय शिवकांता वरें॥१॥

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन चैत्य-चैत्यालयेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

कर्पूर मिश्रित गंध चंदन, देह ताप निवारता।
तुम पाद पंकज पूजते, मन ताप तुरतहिं वारता॥
नवदेवताओंकी सदा जो भक्ति से अर्चा करें।
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल पाय शिवकांता वरें॥२॥

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन चैत्य-चैत्यालयेभ्यो भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षीरोदधी के फेन सम सित तंदुलों को लायके।
उत्तम अखंडित सौख्य हेतु, पुंज नव सुचढ़ायके॥नव.॥३॥

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन चैत्य-चैत्यालयेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

चंपा चमेली केवड़ा, नाना सुगंधित ले लिये।
भव के विजेता आपको, पूजन सुमन अर्पण किये ।।नव. ।।४ ।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन चैत्य-चैत्यालयेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पायस मधुर पकवान मोदक, आदि को भर थाल में।
निज आत्म अमृत सौख्य हेतु पूजहूँ नत भाल मैं ।।नव. ।।५ ।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन चैत्य-चैत्यालयेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीतिस्वाहा।

कर्पूर ज्योति जगमगे दीपक लिया निज हाथ में।
तुअ आरती तम वारती, पाऊं सुज्ञान प्रकाश मैं ।।नव. ।।६ ।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन चैत्य-चैत्यालयेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशगंधधूप अनूप सुरभित, अग्नि में खेऊं सदा।
निज आत्मगुण सौरभ उठे, हों कर्म सब मुझको विदा ।।नव. ।।७ ।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन चैत्य-चैत्यालयेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अंगूर अमरख आम्र अमृत, फल भराऊं थाल में।
उत्तम अनूपम मोक्ष फल के, हेतु पूजूं आज मैं ।।नव. ।।८ ।।

ॐ ह्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन चैत्य-चैत्यालयेभ्यो मोक्षफलप्राप्ते फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंध अक्षत पुष्प चरू दीपक सुधूप फलार्घ्य ले।
वर रत्नत्रय निधि लाभ यह बस अर्घ्य से पूजत मिले ।।नव. ।।९ ।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन चैत्य-चैत्यालयेभ्यो अनर्घपदप्राप्ते अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा

जलधारा से नित्य मैं जगकी शांतये हेत।
नवदेवों को पूजहूँ, श्रद्धा भक्ति समेत ॥१०॥

शांतये शांतिधारा।

नाना विध के सुमन ले, मन में बहु हरषाय।
मैं पूजूं नवदेवता, पूष्पांजली चढ़ाय ॥११॥

दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्म जिनागमजिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो नमः।

(८, २७ या १०८ बार जपें)

जयमाला।

सोरठा

चिच्चिंतामणिरत्न, तीन लोक में श्रेष्ठ हो।
गाऊं गुणमणिमाल, जयवंते वर्तो सदा ॥१॥

चाल—हे दीनबंधु श्रीपति...।

जय जय श्री देवदेव हमारे।
जय घातिया को घात सकल जंतु उबारे॥
जय जय प्रसिद्ध सिद्ध की मैं वंदना करूं।
जय अष्ट कर्ममुक्त की मैं अर्चना करूं ॥२॥
आचार्य देव गुण छत्तीस धार रहे हैं।
दीक्षादि दे असंख्य भव्य तार रहे हैं॥
जैवंत उपाध्याय गुरू ज्ञान के धनी।
सन्मार्ग के उपदेश की वर्षा करें घनी ॥३॥
जय साधु अठाईस गुणों को धरें सदा।
निजआतमा की साधना से च्युत न हों कदा॥

ये पंचपरमदेव सदा वंद्य हमारे।
संसार विषम सिंधु से हमको भी उबारें।।४।।
जिनधर्म चक्र सर्वदा चलता ही रहेगा।
जो इसकी शरण ले वो सुलझता ही रहेगा।।
जिन की ध्वनि पियूष का जो पान करेंगे।
भव रोग दूर कर वे मुक्ति कांत बनेंगे।।५।।
जिन चैत्य की जो वंदना त्रिकाल करे हैं।
वे चित्स्वरूप नित्य आत्म लाभ करे हैं।।
कृत्रिम व अकृत्रि जिनालयों को जो भजें।
वे कर्मशत्रु जीत शिवालय में जा बसें।।६।।
नव देवताओं की जो नित आराधना करें।
वे मृत्युराज की भी तो विराधना करें।।
मैं कर्मशत्रु जीतने के हेतु ही जजूं।
संपूर्ण "ज्ञानमति" सिद्धि हेतु ही भजूं।।७।।

दोहा

नवदेवों को भक्तिवश, कोटि कोटि प्रणाम।
भक्ति का फल मैं चहूँ, निजपद में विश्राम।।८।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्म जिनागमजिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो जयमाला अर्घ्यं...।

शांतिधारा, पुष्पांजलिः।

गीताछन्द

जो भव्य श्रद्धाभक्ति से नव देवता पूजा करें।
वे सब अमंगल दोष हर, सुख शांति में झूला करें।
नवविधि अतुल भंडार लें, फिर मोक्ष सुख भी पावते।
सुखसिंधु में हो मग्न फिर, यहाँ पर कभी न आवते।।९।।

इत्याशीर्वादः।

स्वयंभू स्तोत्र भाषा

चौपाई

राजविषै जुगलनि सुख कियो, राजत्याग भवि शिवपद लियो।
स्वयंबोध स्वयंभू भगवान, बंदौं आदिनाथ गुणखान ॥१ ॥
इन्द्र क्षीरसागर जल लाय, मेरू न्हवाये गाय बजाय।
मदनविनाशक सुखकरतार, बंदौंअजित अजित-पदकार ॥२ ॥
शुक्लध्यानकरि करमविनाशि, घाति अघाति सकलदुखराशि।
लह्यो मुकतिपद सुख अविकार, बंदौं संभव भव दुख टार ॥३ ॥
माता पश्चिम रयनमंझार, सुपने देखे सोलह सार।
भूप पूछि फल सुनि हरषाय, बंदौं अभिनंदन मनलाय ॥४ ॥
सब कुवाद वादी सरदार, जीते स्याद्वाद धुनि धार।
जैनधरम परकाशक स्वाम, सुमतिदेवपद करहुँ प्रणाम ॥५ ॥
गर्भ अगाऊ धनपति आय, करी नगर शोभा अधिकाय।
बरसे रतन पंचदश मास, नमों पदमप्रभु सुख की राश ॥६ ॥
इन्द्र फणीन्द्र नरेन्द्र त्रिकाल, बानी सुनि सुनि होहिं खुशाल।
द्वादश सभा ज्ञानदातार, नमों सुपारसनाथ निहार ॥७ ॥
सुगुन छियालीस हैं तुम माहिं, दोष अठारह कोऊ नाहिं।
मोहमहातम नाशक दीप, नमों चंद्रप्रभु राख समीप ॥८ ॥
द्वादश विध तप करम विनाश, तेरह विध चारित्र प्रकाश।
निज अनिच्छ भवि इच्छकदान, बंदौं पुष्पदंत मन आन ॥९ ॥
भविसुखदाय सुरगतैं आय, दशविधि धरम कह्यो जिनराय।
आप समान सबनि सुख देह, बंदौं शीतल धर्मसनेह ॥१० ॥
समता सुधा कोपविष नाश, द्वादशांग वानी परकाश।

चारसंघ-आनंद-दातार, नमों श्रेयांस जिनेश्वर सार ॥११ ॥
रतनत्रय शिवमुकुट विशाल, शौभै कंठ सुगुन मनिमाल।
मुक्तिनार भर्त्ता भगवान, वासुपूज्य बंदौं धर ध्यान ॥१२ ॥
परम समाधि-स्वरूप जिनेश, ज्ञानी ध्यानी हित उपदेश।
कर्मनाशि शिवसुख विलसंत, बंदौं विमलनाथ भगवंत ॥१३ ॥
अन्तर बाहिर परिग्रह डारि, परम दिगंबरव्रत को धारि।
सर्वजीवहित-राह दिखाय, नमों अनंत वचन-मनलाय ॥१४ ॥
सात तत्व पंचास्ति काय, नव पदार्थ छह द्रव्य बताय।
लोक अलोक सकलपरकास, बंदौं धर्मनाथ अविनाश ॥१५ ॥
पंचम चक्रवर्ति निधिभोग, कामदेव द्वादशम मनोग।
शाँतिकरण सोलम जिनराय, शाँतिनाथ बंदौं हरषाय ॥१६ ॥
बहुथुति करे हरष नहिं होय, निंदे दोष गहैं नहिं कोय।
शीलवान परब्रह्मस्वरूप, बंदौं कुंथुनाथ शिवभूप ॥१७ ॥
द्वादशगण पूजें सुखदाय, थुति बंदना करें अधिकाय।
जाकी निजथुति कबहुँ न होय, बंदौं अरजिनवर-पद दोय ॥१८ ॥
परभव रतनत्रय-अनुराग, इह भव ब्याह समय वैराग।
बाल ब्रह्म-पूरन व्रत धार, बंदों मल्लिनाथ जिनसार ॥१९ ॥
बिन उपदेश स्वयं वैराग, थुति लौकांत करै पगलाग।
नमः सिद्ध कहि सब व्रत लेहिं, बंदौं मुनिसुव्रत व्रत देहिं ॥२० ॥
श्रावक विद्यावंत निहार, भगति भावसों दियो अहार।
बरसि रतनराशि तत्काल, बंदौं नमिप्रभु दीनदयाल ॥२१ ॥
सब जीवन की बंदी छोर, रागद्वेष द्वै बंधन तोर।
राजुल तज शिवतियसों मिले, नेमिनाथ बंदौं सुखनिले ॥२२ ॥
दैत्य कियो उपसर्ग अपार, ध्यान देखि आयो फनधार।
गयो कमठ शठ मुखकरश्याम, नमो मेरूसम पारसस्वाम ॥२३ ॥

भवसागरतैं जीव अपार, धरम पोत में धरे निहार।
डूबत काढ़े दया विचार, वर्द्धमान बंदौं बहुबार॥२४॥

दोहा।

चौबिसों पदकमलजुग, बंदौं मनवचकाय।
'द्यानत' पढ़े सुने सदा, सो प्रभु क्यों न सहाय॥

निर्वाणकाण्ड (भाषा)

दोहा-वीतराग वंदौं सदा, भावसहित सिरनाय।
कहूं काण्ड निर्वाणकी, भाषा सुगम बनाय ।।

चौपाई

अष्टापद आदीश्वर स्वामि, वासुपूज्य चंपापुरि नामि।
नेमिनाथ स्वामी गिरनार, बंदौं भाव-भगति उर धार ।२।
चरम तीर्थंकर चरम-शरीर, पावापुरि स्वामी महावीर।
शिखरसम्मेद जिनेसुर बीस, भावसहित बंदौं निश-दीस ।३।
वरदत्तराय रु इंद्र मुनिंद्र, सायरदत्त आदि गुणवृंद।
नगर तारवर मुनि उठकोड़ि, बंदौं भावसहित कर जोड़।४।
श्रीगिरनार शिखर विख्यात, कोड़ि बहत्तर अरु सौ सात।
संबु-प्रद्युम्न कुमर द्वै भाय, अनिरुद्ध आदि नमूं तसु पाय।५।
रामचंद्र के सुत द्वै वीर, लाड-नरिंद आदि गुणधीर।
पांच कोडि मुनि मुक्ति मंझार, पावागिरि वंदौं निरधार।६।
पांडव तीन द्रविड-राजान, आठ कोड़ि मुनि मुकति पयान।
श्रीशत्रुंजय-गिरि के सीस, भावसहित वंदौं निश-दीस।७।
जे बलभद्र मुकति में गये, आठ कोड़ि मुनि औरहु भये।
श्रीगजपंथ शिखर सुविशाल, तिनके चरण नमूं तिहूं काल।८।
राम हनू सुग्रीव सुडील, गवय गवाख्य नील महानील।
कोड़ि निन्याणवै मुक्ति पयान, तुं गीगिरि वंदौं धरि ध्यान।९।
नंग अनंग कुमार सुजान, पांच कोड़ि अरु अर्ध प्रमान।
मुक्ति गये सोनागिरि-शीश, ते वंदौं त्रिभुवनपति ईस।१०।
रावण के सुत आदिकुमार, मुक्ति गये रेवा-तट सार।

कोटि पंच अरु लाख पचास, ते वंदौं धरि परम हुलास।११।
रेवानदी सिद्धवर, कूट, पश्चिम दिशा देह जहं छूट।
द्वै चक्री दश कामकुमार, ऊठकोड़ि वंदौं भव पार।१२।
बड़वानी बड़नयर सुचंग, दक्षिण दिशि गिरि चूल उतंग।
इंद्रजीत अरु कुंभ जु कर्ण, ते वंदौं भव-सायर तर्ण।१३।
सुवरण-भद्र आदि मुनि चार, पावागिरि-वर-शिखर मंझार।
चेलना-नदी-तीरके पास, मुक्ति गये वंदौं नित तास।१४।
फलहोड़ी बड़गाम अनूप, पच्छिम दिशा द्रोणगिरि रूप।
गुरुदत्तादि-मुनीसुर जहां, मुक्ति गये वंदौं नित तहां।१५।
बाल महाबाल मुनि दोय, नागकुमार मिले त्रय होय।
श्रीअष्टापद मुक्ति मंझार, ते वंदौं नित सुरत संभार।१६।
अचलापुर की दिश ईसान, जहां मेंढगिरि नाम प्रधान।
साढ़े तीन कोड़ि मुनिराय, तिनके चरण नमूं चित लाय॥
वंसस्थल वनके ढिग होय, पच्छिम दिशा कुं थुगिरि सोय।
कुलभषण देशभूषण नाम, तिनके चरणनि करूं प्रणाम॥
जसरथ राजा के सुत कहे, देश कलिंग पांचसौ लहे।
कोटिशिला मुनि कोटि प्रमान, वंदन करूं जोड़ जुग पान॥
समवसरण श्रीपार्श्व-जिनंद, रेसिंदीगिरि नयनानंद।
वरदत्तादि पंच ऋषिराज, ते वंदौं नित धरम-जिहाज।२०।
तीन लोकके तीरथ जहाँ, नित प्रति वंदन कीजै तहां।
मन-वच-काय सहित सिरनाय, वंदन करहिं भविक गुणगाय।
संवत सतरहसौ इकताल, आश्विन सुदि दशमी सुविशाल।
'भैया' वंदन करहिं त्रिकाल, जय निर्वाकांड गुणमाल॥

अर्घावली

देव शास्त्र गुरु का अर्घ्य

जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूं।
वर धूप निरमल फल विविध, बहु जनम के पातक हरूं॥
इहि भाँति अर्घ चढ़ाय नित भवि करत शिवपंकति मचूं।
अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरु निरग्रन्थ नित पूजा रचूं॥
वसुविधि अर्घ संयोजके, अति उछाह मन कीन।
जासों पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥१॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

विद्यमान बीस तीर्थंकरों का अर्घ

जल फल आठों द्रव्य, अरघ कर प्रीति धरी है
गणधर इन्द्रनहूतैं, थुति पूरी न करी है।
द्यानत सेवक जानके (हो) जगतैं लेहु निकार
सीमंधर जिन आदि दे, बीस विदेह मंझार।
श्री जिनराज हो, भव तारण तरण जहाज॥

ओं ह्री विद्यमान-विंशति- तीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्व० स्वाह।२।

अकृत्रिम चैत्यालयों का अर्घ

कृत्याकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान् नित्यं त्रिलोकीगतान्,
वंदे भावन-व्यंतर-द्युतिवरान् स्वर्गमरावासगान्।
सद्गंधाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीपधूपैः फलैर्,
नीराद्यैश्च यजे प्रणम्य शिरसा दुष्कर्मणां शांतये।३।

ओं ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसंबंधि जिनबिम्बेभ्योऽर्घ्यं निव० स्वाहा।

सिद्ध परमेष्ठी (संस्कृत)

गन्धाढ्यं सुपयो मधुव्रत-गणैः संगं वरं चन्दनं,
पुष्पौघं विमलं सदक्षत-चयं रम्यं चरुं दीपकम्।
धूपं गन्धयुतं ददामि विविधं श्रेष्ठं फलं लब्धये,
सिद्धानां युगपत्क्रमाय विमलं सेनोत्तरं वांच्छितम्॥

ओं ह्रीं सिद्ध-चक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।४।

सिद्ध परमेष्ठी (भाषा)

जल फल वसुवृंदा अरघ अमंदा, जजत अनंदा के कंदा।
मेटो भवफंदा सब दुखदंदा, 'हीराचंदा' तुम वंदा॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवन नामी, अंतरयामी अभिरामी।
शिवपुर विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी शिरनामी॥

ओं ह्रीं श्रीअनाहतपराक्रमाय सर्वकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।५।

पाँच बालयति

सजि वसुविधि द्रव्य मनोज्ञ, अरघ बनावत हैं,
वसुकर्म अनादि संयोग ताहि नशावत हैं।
श्री वासूपूज्य मलि नेम पारस वीर अती,
नमूं मन वच तन धरि प्रेम पाँचों बालयती॥

ओं ह्रीं श्री वासुपूज्य मल्लिनाथ नेमिनाथ पार्श्वनाथ महावीर स्वामी, श्री पंचबालयति तीर्थंकरेभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।६।

तीस चौबीसी का अर्घ

द्रव्य आठों जु लीना है, अर्घ करमें नवीना है।
पूजतां पाप छीना है, भानुमल जोर कीना है॥

दीप अढ़ाई सरस राजै, क्षेत्र दशताविषै छाजै।
सातशत बीस जिनराजै, पूजतां पाप सब भाजै॥

ओं ह्रीं पांच भरत, पांच ऐरावत, दस क्षेत्र के विषैं तीस चौबीसी के सात सौ बीस जिनेन्द्रभ्योऽर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा ।२५ ।

समुच्चय चौबीसी

जल फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ करों।
तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों॥
चौबीसों श्रीजिनचंद, आनंदकंद सही।
पद जजत हरत भवफंद, पावत मोक्ष मही॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादि-वीरांत-चतुर्विंशति- तीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्य पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।७ ।

श्री आदिनाथ जिनेन्द्र

शुचि निर्मल नीरं गंध सुअक्षत, पुष्प चरू ले मन हरषाय।
दीप धूप फल अर्घ सुलेकर, नाचत ताल मृदंग बजाय॥
श्रीआदिनाथ के चरण कमलपर, बलिबलि जाऊं मनबचकाय।
हो करुणानिधि भव दुख मेटो, यातै मैं पूजों प्रभु पाय॥

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।८ ।

श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र

सजि आठों दरब पुनीत, आठों अंग नमों।
पूजों अष्टम जिन मीत, अष्टम अवनिगमों॥
श्रीचन्द्र नाथ दुति चंद, चरनन चंद लगै।
मन वच तन जजत अमंद आतम ज्योति जगै॥

ओं ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अनर्घ्य पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वा० स्वाहा ।९ ।

श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्र

जलफल दरव मिलाय गाय गुन, आठों अंग नमाई।
शिवपदराज हेत हे श्रीपति! निकट धरों यह लाई॥
वासुपूज्य वसुपूज-तनुज-पद, वासव सेवत आई।
बालब्रह्मचारी लखि जिनको, शिवतिय सनमुख धाई॥

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्राय अनर्घ्य पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वा० स्वाहा।१०।

श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्र

जल फलादि वसु द्रव्य संवारे अर्घ चढ़ाये मंगल गाय।
'बखत रतन' के तुम ही साहिब दीजे शिवपुर राज कराय॥
शांतिनाथ पंचम चक्रेश्वर द्वादश मदन तनों पद पाय।
तिनके चरण कमल के पूजे रोग शोक दुख दारिद जाय॥

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्य पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व० स्वाहा।११।

श्रीनेमिनाथ जिनेन्द्र

जलफल आदि साजशुचि लीने, आठों दरब मिलाय।
अष्ठम छितिके राज करनको, जजों अंग वसु नाय॥
दाता मोक्षके, श्रीनेमिनाथ जिनराय, दाता०

ओं ह्रीं श्रीनेमिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व० स्वाहा।१२।

श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र

नीर गन्ध अक्षतान् पुष्प चरु लीजिये।
दीप धूप श्रीफलादि अर्घ तें जजीजिये॥
पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करूं सदा।
दीजिये निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्य पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।१३।

श्री महावीर जिनेन्द्र

जल फल वसु सजि हिम थार, तन मन मोद धरों।
गुणगाऊँ भवदधितार, पूजत पाप हरों॥
श्री वीर महा अतिवीर, सन्मति नायक हो।
जय वर्द्धमान गुणधीर, सन्मति दायक हो॥

ओं ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अनर्घ्य पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व० स्वाहा।१४।

श्री बाहुबली जिनेन्द्र

वसु विधिके वस वसुधा सब ही परवश अति दुख पावै,
तिहि दुख दूर करने को भविजन अर्घ जिनाग्र चढ़ावै।
परम पूज्य वीराधिवीर जिन बाहुबलि बलधारी,
जिनके चरण कमलको नित प्रति धोक त्रिकाल हमरी॥

ओं ह्री श्री बाहुबली जिनेन्द्राय अनर्घ्य पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व० स्वाहा।१५।

सोलहकारण

जल फल आठों दरव चढ़ाय द्यानत वरत करों मनलाय।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥
दरशविशुद्धि भावना भाय सोलह तीर्थंकर-पद-पाय।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्योऽनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्य निर्व० स्वाहा।१६।

पंचमेरु जिनालय

आठ दरवमय अरघ बनाय 'द्यानत' पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥
पांचों मेरु असी जिन धाम, सब प्रतिमा को करों प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥

ओं ह्रीं सुदर्शन विजय-अचल-मंदर-विद्युन्मालि- पंचमेरु-सम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।१७ ।

नन्दीश्वरद्वीप जिनालय

यह अरघ कियो निज-हेत, तुमको अरपतु हों।
'द्यानत' कीज्यो शिव-खेत, भूमि समरपतु हों॥
नन्दीश्वर श्रीजिनधाम बावन पूज करों।
वसुदिन प्रतिमा अभिराम आनन्द भाव धरों॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो अनर्घ्य पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।१८ ।

दशलक्षणधर्म

आठों दरब संवार, 'द्यानत' अधिक उछाहसों।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।१९ ।

श्रीरत्नत्रय

आठ दरब निरधार, उत्तम सों उत्तम लिये।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्न-त्रय भजूं॥

ओं ह्रीं सम्यक् रत्नत्रयाय अनर्घ्य पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व० स्वाहा ।२० ।

सप्तर्षि

जल गंध अक्षत पुष्प चरुवर, दीप धूप सु लावना।
फल ललित आठौं द्रव्य-मिश्रित, अर्घ कीजे पावना॥
मन्वादि चारण-ऋद्धि-धारक, मुनिनकी पूजा करूं।
ता करें पातक हरें सारे, सकल आनंद विस्तरूं॥

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।२१ ।

सरस्वती

जल चंदन अक्षत फूल चरू, अरु दीप धूप अति फल लावै।
पूजा को ठानत जो तुम जानत, सो नर द्यानत सुखपावै ॥
तीर्थंकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई।
सो जिनवर वानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन-मानी पूज्य भई ॥

ओं ह्रीं श्री जिन-मुखोद्‌भव-सरस्वतीदेव्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।२२।

आचार्य विद्यासागर

यह अर्घ समर्पित आज तुमको अर्पित हो।
हो रवि सम तेज प्रकाश तुम्हें समर्पित हो॥
पंचम युग के ऋषिराज विद्यासागर हो।
दो ज्ञान हमें मुनिराज तुम तो गुणानिधि हो॥

ओं ह्रीं १०८ आचार्य विद्यासागर जी मुनिराजेभ्यो अर्घ्यं निर्वा० स्वाहा।२३।

निर्वाण क्षेत्र

जल गंध अच्छत फूल चरु फल, दीप धूपायन धरौं।
'द्यानत' करो निरभय जगतसों, जोर कर विनती करौं॥
सम्मेदगढ़ गिरनार चंपा, पावापुरि कैलाशकों।
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाणभूमि-निवासकों॥

ओं ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं निर्व० स्वाहा।२४।

समुच्चय महार्घ

मैं देव श्री अर्हन्त पूजूँ सिद्ध पूजूँ चाव सों।
आचार्य श्री उवझाय पूजूँ साधु पूजूँ भाव सो ॥१॥
अर्हन्त भाषित बैन पूजूँ द्वादशांग रचे गनी।
पूजूँ दिगम्बर गुरु चरण शिव हेतु सब आशाहनी ॥२॥
सर्वज्ञ भाषित धर्म दशविध दयामय पूजूँ सदा।
जजुँ भावना षोडश रत्नत्रय, जा बिना शिव नहीं कदा ॥३॥
त्रैलौक्यके कृत्रिम अकृत्रिम चैत्य चैत्यालय जजूँ।
पनमेरु नन्दीश्वर जिनालय खचर सुर पूजित भजूँ ॥४॥
कैलाश श्रीसम्मेद श्री गिरनार गिरि पूजूँ सदा।
चम्पापुरी पावापुरी पुनि और तीरथ सर्वदा ॥५॥
चौबीस श्री जिन राज पूजूँ बीस क्षेत्र विदेह के।
नामावली इक सहस बसु जपि होय पति शिव गेह के ॥६॥
दोहा—जल गंधाक्षत पुष्प चरु दीप धूप फल लाय।
सर्वपूज्य पद पूज हूँ बहु विधि भक्ति बढ़ाय ॥७॥

ओं ह्रीं अर्हंत जी, सिद्धजी, आचार्य जी, उपाध्याय जी, सर्वसाधु जी, द्वादशांग जिन वाणी, दशलाक्षणिक धर्म, सोलह कारण भावना सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र, रत्नत्रय, तीन लोक संबंधि कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय, पंच मेरु संबंधि अस्सी चैत्यालय, नंदीश्वर द्वीप संबंधि बावन जिन चैत्यालय, श्री सम्मेद शिखर, कैलाश गिर, गिरनार, चंपापुर, आदि सिद्ध क्षेत्र, अतिशयक्षेत्र, विद्यमान बीस तीर्थंकर भगवान के एक हजार आठ नाम, श्री वृषभादि महावीर पर्यन्त चतुर्विंशति तीर्थंकरमेभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शान्ति पाठ

शान्तिनाथ मुख शशि उनहारी, शील गुणव्रत संयमधारी।
लखन एक सौ आठ विराजे, निरखत नयन कमल दल लाजै ॥

हे शान्तिनाथ भगवान ! आपका चन्द्रमा के समान निर्मल मुख है। आप शील गुण व्रत और संयम के धारक हैं। आपकी देह में १०८ शुभ लक्षण हैं और आपके नेत्रों को देखकर कमल दल भी शरमा जाते हैं। आप मुनियों में श्रेष्ठ हैं मैं आपको नमस्कार करता हूं।

पंचम चक्रवर्ति पदधारी, सोलम तीर्थंकर सुखकारी।
इन्द्रनरेन्द्र पूज्य जिननायक, नमो शान्ति हित शान्ति विधायक ॥

आप पांचवे चक्रवर्ती हैं। सुख को देने वाले हे शान्तिनाथ भगवान आप सोलहवे तीर्थंकर है। आपकी इन्द्र तथा नरेन्द्र सदा पूजन करते हैं मैं चारों गणों (मुनि आर्यिका श्रावक और श्राविका) की शांति की इच्छा से शान्ति कर्ता सोलहवें तीर्थंकर शांतिनाथ को नमस्कार करता हूँ।

दिव्य विटप पहुपन की वर्षा, दुन्दुभि आसन वाणी सरसा।
छत्र चमर भामण्डल भारी, ये तुम प्रातिहार्य मनहारी ॥

(१) अशोक वृक्ष, (२) देवों द्वारा की गई फूलों की बरसा, (३) दुंदुभि (नगाड़ों का) बजना, (४) सिंहासन, (५) एक योजन तक दिव्य ध्वनि का पहुंचना, (६) सिर पर तीन छत्रों का होना, (७) चमरों का ढुरना, (८) भामण्डल का होना ये आठ प्रातिहार्य मन को हरण करने वाले होते हैं। इनसे आप शोभायमान हैं।

शान्ति जिनेश शान्ति सुखदाई, जगत पूज्य पूजौं सिर नाई।
परम शान्ति दीजै हम सबको, पढ़े तिन्हें पुनि चार संघ को ॥

संसार में पूजनीय और शान्ति करने वाले और सुख को देने वाले श्री शान्तिनाथ तीर्थंकर को मस्तक नवाँ कर नमस्कार करता हूँ। वे शान्तिनाथ भगवान चतुर्विध संघ को, मुझे, और पढ़ने वाले को सदा परम शान्ति प्रदान करें।

पूजैं जिन्हें मुकुटहार किरीट लाके,
इन्द्रादि देव अरु पूज्य पदाब्ज जाके।
सो शान्तिनाथ वरवंश जगत प्रदीप,
मेरे लिए करहु शान्ति सदा अनूप।।

मुकुट कुण्डल हार और रत्नों को धारण करने वाले इन्द्र आदि देव जिनके चरण कमलों की पूजा करते हैं। ऐसे इक्ष्वाकु आदि उत्तम वंश में उत्पन्न होने वाले और संसार को प्रकाशित करने वाले तीर्थंकर शान्तिनाथ मुझे अनुपम शान्ति प्रदान करें।

संपूजको को प्रतिपालकों को, यतीनकों औ यति नायकों को।
राजा प्रजा राष्ट्र सुदेश को ले, कीजे सुखी हे जिन शान्ति को दे।।

हे जिनेन्द्र देव ! आप पूजन करने वालों को, रक्षा करने वालों, को सामान्य मुनियों को, आचार्यों को, देश राष्ट्र, नगर प्रजा और राजा को सदा शांति प्रदान करें।

हौवे सारी प्रजा को सुख, बलयुत को धर्मधारी नरेशा।
हौवे वर्षा समय पै, तिलभर न रहे व्यधियों का अंदेशा।।
होवै चोरी न जारी, सुसमय बरते, हो न दुष्काल मारी।
सारे ही देश धारें, जिनवर वृषको, जो सदा सौख्यकारी।।

सब प्रजा का कुशल हो, राजा बलवान और धर्मात्मा हो मेघ (बादल) समय-समय पर वर्षा करें। सब रोगों का नाश हो, संसार में प्राणियों को एक क्षण भी दुर्भिक्ष चोरी अग्नि और बीमारी आदि के दुख न हों और सब संसार सदा जिनवर धर्म को धारण करे।जो सदैव सुख देने वाला है।

घाति कर्म जिन नाश करि, पायों केवल राज।
शान्ति करो सब जगत में, वृषभादिक जिनराज।।

चार घातिया कर्मों को नष्ट करने वाले केवल ज्ञानरूपी सूर्य अर्थात् केवल ज्ञानी वृषभादि जिनेन्द्र भगवान जगत को शान्ति प्रदान करें।

(यह पढ़कर झारी में जल चंदन की तीन धारा छोड़े।)

शास्त्रों का हो पठन सुखदा, लाभ सत्संगती का।
सदव्रतों का सुजस कहके, दोष ढाकूं सभी का॥
बोलूं प्यारे वचन हित के, आपका रूप ध्याऊं।
तौलों सेऊं चरण जिनके मोक्ष जौलों न पाऊं॥

हे भगवान ! सुखकारी शास्त्रों का स्वाध्याय हो और सदा उत्तम पुरुषों की संगति रहे सदाचारी पुरुषों का गुणगान करें । (सभी के दोष छिपाऊँ) सभी जीवों का हित करने वाले वचन बोलें और जब तक हमें मोक्ष की प्राप्ति न हो जावे तब तक प्रत्येक जन्म में आपके रूप का अवलोकन करूं आत्मा के स्वभाव को पाने की भावना रखूं और आपके चरणों की सदा सेवा करता हूँ ।

तब पद मेरे हिये में, मम हिय तेरे पुनीत चरणों में।
तब लौ लीन रहूँ प्रभु, जब लो पाया न मुक्ति पद मैंने॥

हे जिनेन्द्र देव ! तब तक आपके दोनों चरण मेरे हृदय में विराजमान रहें और मेरा हृदय आपके पवित्र चरणों में लीन रहे जब तक मुझे आपके समान मोक्ष की प्राप्ति न हो जावे ।

अक्षर पद मात्रा से दूषित, जो कुछ कहा गया मुझसे।
क्षमा करो प्रभु सो सब करुणा करि पुनि छुड़ाहु भव दुःख से॥
हे जग बंधु जिनेश्वर पाऊँ, तब चरण शरण बलिहारी।
मरण समाधि सुदुर्लभ, कर्मों का क्षय सुबोध सुखकारी॥

हे परमात्मा ! मैं आपकी पूजा करने में अक्षर पद और मात्रा से हीन (कम) जो कुछ कहा हो उसे आप करुणा करके क्षमा करें और मेरे संसार के दुःखों का नाश कर दे । हे जगद्बन्धु । आपके चरणों की कृपा से मेरे दुःखों का नाश हो दुर्लभ समाधि मरण प्राप्ति हो और कर्मों का क्षय हो सुख देने हो रत्नत्रय की प्राप्ति वाले मोक्ष प्राप्ति हो । (यहां पुष्पांजलि का क्षेपण करें ।)

विसर्जन पाठ

बिन जाने व जान के, रही टूट जो कोय।
तुम प्रसाद तें परम गुरु सो सब पूरन होय॥

हे जिनेन्द्र भगवान आपकी पूजा करने में जानकर या अनजाने में यदि कोई कमी रह गयी हो तो हे परमगुरु (अरहंत भगवान) आपके प्रसाद से (आशीर्वाद से) सभी कमियां पूरी हो जाये।

पूजन विधि जानू नहीं नहिं जानूं आह्वान।
और विसर्जन हू नहीं, क्षमा करो भगवान॥

हे भगवान मैं पूजन की समीचीन विधि नहीं जानता हूँ। आह्वान और विसर्जन भी नहीं जानता हूँ अतः मुझे क्षमा करो।

मंत्र हीन धन हीन हूँ क्रिया हीन जिन देव
क्षमा करहु राखहु मुझे देहु चरण की सेव॥

हे जिनेन्द्र देव मैं मंत्र विधि के ज्ञान से रहित हूँ धन से रहित हूँ एवं क्रिया से रहित हूँ मुझे क्षमा कर अपनी शरण में ले लीजिए और चरणों की सेवा करने का सौभाग्य प्रदान कीजिए।

चौबीसों जिनराज को पूजें भक्ति प्रमान।
भाव विसर्जन मैं करु सदा करो कल्याण॥

चौबीसों तीर्थंकर भगवान की, अपनी शक्ति के अनुसार पूजन भक्ति की अब मैं भावों का विसर्जन करता हूँ हे भगवान सदा कल्याण करो।

(पुष्पांजलि)

चौबीसों जिनराज को पूजें भक्ति प्रमान।
पूजन विसर्जन में करुं सदा करो कल्याण॥

चौबीसों तीर्थकर भगवान की, अपनी शक्ति के अनुसार पूजन भक्ति की अब मैं पूजन का विसर्जन करता हूँ। हे भगवान सदा कल्याण करो।

(पुष्पांजलि)

चौबीसों जिनराज को पूजे भक्ति प्रमान
क्रिया विसर्जन मैं करुं सदा करो कल्याण।

चौबीसों तीर्थंकर भगवान की, अपनी शक्ति के अनुसार पूजन भक्ति की अब मैं पूजन की क्रिया का विसर्जन करता हूँ। हे भगवान सदा कल्याण करो।

(पुष्पांजलि)

जिणवयणमोसहामिणं विसयसुहविरेयणं अभिदभूयं।
जर-मरण-वाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खणां ॥१७॥ द.प्र.॥

यह जिनवचनरूपी औषधि विषयसुख को दूर करने वाली है, अमृतरूप है, जरा और मरण रूपी व्याधि को हरने वाली है, तथा सब दुःखों का क्षय करने वाली है।

सम्मत्त-णाण-दंसण-बल-वीरिय-वड्ढमाण जे सव्वे।
कलि-कलुसपावरहिया वरणाणी होंति अइरेण ॥६।.द.प्रा.॥

जो समस्त भव्य जीव सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, बल और वीर्य से निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होते हैं वे शीघ्र ही घातिया कर्मों से रहित हो उत्कृष्ट ज्ञानी होते हैं अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त कर तीर्थंकर होते हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द

महावीराष्टक-स्तोत्रम्

[कविवर भागचन्द]

शिखरिणी छन्द

महावीराष्टक

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः
समं भान्ति ध्रौव्य व्यय-जनि-लसन्तोऽन्तरहिताः।
जगत्साक्षी मार्ग-प्रकटन परो भानुरिव यो
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥१ ॥

जिस प्रकार सम्मुख समागत पदार्थ दर्पण में झलकते हैं, उसी प्रकार जिनके केवल ज्ञान में समस्त जीवादि, अनन्त पदार्थ, उत्पाद व्यय ध्रौव्य सहित युगपत् प्रतिभासित होते रहते हैं। अतः जिस प्रकार सूर्य लौकिक मार्गों को प्रकाशित करता है उसी प्रकार मोक्ष मार्ग को प्रकाशित करने वाले जो जगत के ज्ञाता दृष्टा हैं, वे भगवान महावीर मेरे नयन पथ गामी हो अर्थात् मुझे दर्शन दें।

अताम्रं यच्चक्षुः कमल-युगलं स्पन्द-रहितं
जनान्कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि।
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥२ ॥

स्पन्द अर्थात् टिमकार (पलक झपकना) और लालिमा रहित जिनके दोनों नेत्र कमल मनुष्यों को बाह्य और अभ्यन्तर क्रोधादि विकारों का अभाव प्रगट कर रहे हैं और जिनकी मुद्रा स्पष्ट रूप से पूर्णशान्त और अत्यन्त निर्मल (विमल) है। वे भगवान महावीर स्वामी मेरे नयन पथगामी बने अर्थात् मुझे दर्शन दें।

नमन्नाकेन्द्राली-मुकुट-मणि-भा जाल जटिलं
लसत्पादाम्भोज-द्वयमिह यदीयं तनुभृताम्।
भवज्ज्वाला-शान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥३ ॥

नम्रीभूत इन्द्रों के समूह के मुकुटों की मणियों के प्रभाजाल से मिश्रित जिनके कान्तिमान दोनों चरण कमलों का स्मरण करने मात्र से ही शरीर धारियों की सांसारिक दुःख ज्वालाओं का जल के समान शमन कर देते हैं। वे भगवान महावीर स्वामी मेरे नयन पथगामी बने अर्थात् मुझे दर्शन दें।

यदर्चा-भावेन प्रमुदित-मना दर्दुर इह
क्षणादासीत्स्वर्गी गुण-गण-समृद्धः सुख-निधिः।
लभन्ते सद्भक्ताः शिव-सुख-समाजं किमुतदा
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥४॥

जब पूजा करने के भाव मात्र से प्रसन्न चित्त मेंढक ने क्षण मात्र में गुण गणों से समृद्ध सुख की निधि स्वर्ग सम्पदा को प्राप्त कर लिया, तब यदि उनके सद्भक्त मुक्ति सुख को प्राप्त कर लें तो कौन-सा आश्चर्य है ? अर्थात् उनके सद्भक्त अवश्य ही मुक्ति को प्राप्त करेंगें। वे भगवान महावीर स्वामी मेरे नयन पथ गामी बनें, अर्थात् मुझे दर्शन दें।

कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगत-तनुर्ज्ञान-निवहो
विचित्रात्माप्येको नृपति-वर-सिद्धार्थ-तनयः।
अजन्मापि श्रीमान् विगत-भव-रागोऽद्भुत-गतिर्
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥५॥

जो अंतरंग दृष्टि से ज्ञान शरीरी (केवल ज्ञान पुंज) एवं बहिरंग दृष्टि से तप्त स्वर्ण के समान आभामय शरीर होने पर भी शरीर से रहित है। अनेक ज्ञेय उनके ज्ञान में झलकते हैं अतः अनेक होते हुए भी एक हैं। महाराजा सिद्धार्थ के पुत्र होते हुए भी अजन्मा है और केवल ज्ञान तथा समवशरणादि लक्ष्मी से युक्त होने पर भी संसार के राग से रहित हैं। इस प्रकार आश्चर्यों के निधान भगवान महावीर स्वामी मेरे नयन पथगामी बने अर्थात् मुझे दर्शन दें।

यदीया वाग्गङ्गा विविध-नय-कल्लोल-विमला
बृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति।
इदानीमप्येषा बुध-जन-मरालैः परिचिता
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥६॥

जिनकी वाणी रूप गंगा नाना प्रकार के नयरूपी कल्लोलों के कारण निर्मल है और अगाधज्ञान रूपी जल से जगत की जनता को स्नान कराती रहती है तथा इस समय भी विद्वत् जन रूपी हंसों के द्वारा परिचित हैं। वे महावीर स्वामी मेरे नयनपथगामी बनें अर्थात् मुझे दर्शन दें।

अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवन-जयी काम-सुभटः
कुमारावस्थायामपि निज-बलाद्येन विजितः
स्फुरन्नित्यानन्द-प्रशम-पद-राज्याय स जिनः
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥७॥

अनिर्वार है वेग जिसका और जिसने तीनों लोकों को जीत लिया है ऐसे काम रूपी सुभट (योद्धा) को भगवान आपने स्वयं अपने आत्म बल से कुमारावस्था (बाल्यावस्था) में ही जीत लिया है। जिससे अनंत शक्ति का साम्राज्य एवं शाश्वत सुख स्फुरायमान हो रहा है। वे महावीर भगवान मेरे नयन पथ गामी हों। अर्थात् मुझे दर्शन दें।

महामोहातंक-प्रशमन-पराकस्मिक-भिषक्
निरापेक्षो बन्धु र्विदित-महिमा मंगलकरः।
शरण्यः साधूनां भव-भयभृतामुत्तमगुणो
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥८॥

आप महामोह रूपी रोग को शान्त करने के लिए निरपेक्ष वैद्य हैं। जो जीव मात्र के निस्वार्थ बन्धु हैं। जिनकी महिमा से सारा लोकपरिचित है, जो महा मंगल के करने वाले हैं। तथा भवभय से भयभीत साधुओं को जो शरण हैं वे उत्तम गुणों के धारी भगवान महावीर स्वामी मेरे नयन-पथ-गामी हों अर्थात् मुझे दर्शन दें।

महावीराष्टकं स्तोत्रं भक्त्या 'भागेन्दु' ना कृतम्।
यः पठेच्छृणुयाच्चापि स याति परमां गतिम् ॥९॥

जो कविवर भाग चंद्र द्वारा भक्तिपूर्वक रचित इस महावीराष्टक स्तोत्र का पाठ करता है व सुनता है वह परम गति (मोक्ष) को पाता है।

भक्तामर स्तोत्र (भाषा)

[अनुवादक श्री पं. हेमराज जी]

आदिपुरूष आदीश जिन, आदि सुविधि करतार।
धरम-धुरंधर परमगुरू, नमों आदि अवतार॥

सुर-नत-मुकुट रतन-छवि करैं,
अंतर पार-तिमिर सब हरैं।
जिनपद वंदो मन वच काय,
भव-जल-पतित उधरन-सहाय॥१॥

श्रुत-पारग इंद्रादिक देव,
जाकी थुति कीनी कर सेव।
शब्द मनोहर अरथ विशाल,
तिस प्रभु की वरनों गुन-माल॥२॥

विबुध-वंद्य-पद मैं मति-हीन,
हो निलज्ज थुति-मनसा कीन।
जल-प्रतिबिंब बुद्ध को गहै,
शशि-मंडल बालक ही चहै॥३॥

गुन-समुद्र तुम गुन अविकार,
कहत न सुर-गुरू पावै पार।
प्रलय-पवन-उद्धत जल-जन्तु,
जलधि तिरै को भुज बलवन्तु॥४॥

सो मैं शक्ति-हीन थुति करूँ,
भक्ति-भाव-वश कछु नाहिं डरूँ।
ज्यों मृगि निज-सुत पालन हेतु,
मृगपति सन्मुख जाय अचेत॥५॥

मैं शठ सुधी हँसन को धाम,
मुझ तव भक्ति बुलावै राम।
ज्यों पिक अंब-कली परभाव,
मधु-ऋतु मधुर करै आराव ॥६ ॥
तुम जस जंपत जन छिनमाहिं,
जनम जनम के पाप नशाहिं।
ज्यों रवि उगै फटै तत्काल,
अलिवत नील निशा-तम-जाल ॥७ ॥
तब प्रभावतैं कहूँ विचार,
होसी यह थुति जन-मन-हार।
ज्यों जल-कमल पत्रपै परै,
मुक्ताफल की द्युति विस्तरै ॥८ ॥
तुम गुन-महिमा हत-दुख-दोष,
सो तो दूर रहो सुख-पोष।
पार-विनाशक है तुम नाम,
कमल-विकाशी ज्यों रवि-धाम ॥९ ॥
नहिं अचंभ जो होहिं तुरन्त,
तुमसे तुम गुण वरणत सन्त।
जो अधीन को आप समान,
करै न सो निंदित धनवान ॥१० ॥
इकटक जन तुमको अविलोय,
अवर-विषैं रति करै न सोय।
को करि क्षीर-जलधि जल पान,
क्षार नीर पीवे मतिमान ॥११ ॥
प्रभु तुम वीतराग गुण-लीन,
जिन परमाणु देह तुम कीन।
हैं तितने ही ते परमाणु,

यातैं तुम सम रूप न आनु ॥१२ ॥
कहँ तुम मुख अनुपम अविकार,
सुर-नर, नाग, नयन, मनहार ।
कहाँ चन्द्र-मंडल-सकलंक,
दिन में ढाक-पत्र सम रंक ॥१३ ॥
पूरन चन्द्र-ज्योति छविवंत,
तुम गुन तीन जगत लंघंत ।
एक नाथ त्रिभुवन आधार,
तिन विचरत को करै निवार ॥१४ ॥
जो सुर-तिय विभ्रम आरम्भ,
मन न डिग्यो तुम तौ न अचंभ ।
अचल चलावै प्रयल समीर,
मेरू-शिखर डगमगै न धीर ॥१५ ॥
धूमरहित बाती गत नेह,
परकाशै त्रिभुवन-घर एह ।
बात-गम्य नाहीं परचण्ड,
अपर दीप तुम बलो अखंड ॥१६ ॥
छिपहु न लुपहु राहुकी छांहि,
जग परकाशक हो छिनमांहि ।
घन अनवर्त दाह विनिवार,
रवितैं अधिक धरो गुणसार ॥१७ ॥
सदा उदित विदलित मनमोह,
विघटित मेघ राहु अविरोह ।
तुम मुख-कमल अपूरव चन्द,
जगत-विकाशी जोति अमंद ॥१८ ॥
निश-दिन शशि रवि को नहीं काम,

तीन छत्र तुम दिपैं अगोप।
तीन लोक की प्रभुता कहैं,
मोती-झालरसों छवि लहैं ॥३१ ॥
दुंदुभि-शब्द गहर गंभीर,
चहुँ दिशि होय तुम्हारे धीर।
त्रिभुवन-जन शिव-संगम करै,
मानूँ जय जय रव उच्चरै ॥३२ ॥
मंद पवन गंधोदक इष्ट,
विविध कल्पतरू पुहुप-सुवृष्ट।
देव करैं विकसित दल सार,
मानों द्विज-पंकति अवतार ॥३३ ॥
तुम तन-भामंडल जिनचन्द,
सब दुतिवंत करत है मन्द।
कोटि शंख रवि तेज छिपाय,
शशि निर्मल निशि करे अछाय ॥३४ ॥
स्वर्ग-मोख-मारग-संकेत,
परम-धरम उपदेशन हेत।
दिव्य वचन तुम खिरें अगाध,
सब भाषा-गर्भित हित साध ॥३५ ॥

दोहा

विकसित-सुवरन-कमल-दुति, नख-दुति मिलि चमकाहिं।
तुम पद पदवी जहं धरो, तहं सुर कमल रचाहिं ॥३६ ॥
ऐसी महिमा तुम विषै, और धरै नहिं कोय।
सूरज में जोत है, नहिं तारा-गण होय ॥३७ ॥

षटपद्।

मद-अवलिप्त-कपोल-मूल अलि-कुल झंकारें।
तिन सुन शब्द प्रचंड क्रोध उद्धत अति धारैं॥
काल-वरन विकराल, कालवत सनमुख आवै।
ऐरावत सो प्रबल सकल जन भय उपजावै॥
देखि गयंद न भय करै तुम पद-महिमा लीन।
विपति-रहित संपति-सहित वरतैं भक्त अदीन॥३८॥
अति मद-मत्त-गयंद कुंभ-थल नखन विदारै।
मोती रक्त समेत डारि भूतल सिंगारै॥
बांकी दाढ़ विशाल वदन में रसना लोलै।
भीम भयानक रूप देख जन थरहर डोलै॥
ऐसे मृग-पति पग-तलैं जो नर आयो होय।
शरण गये तुम चरण की बाधा करै न सोय॥३९॥
प्रलय-पवनकर उठी आग जो तास पटंतर।
वमैं फुलिंग शिखा उतंग परजलैं निरंतर॥
जगत समस्त निगल्ल भस्म करहैगी मानों।
तडतडाट दव-अनल जोर चहुं-दिशा उठानों॥
सो इक छिन में उपशमैं नाम नीरतुम लेत
होय सरोवर परिनमैं विकसित कमलसमेत ॥४०॥
कोकिल-कंठ-समान श्याम-तन क्रोध जलन्ता।
रक्त-नयन फुंकार मार विष-कण उगलंता॥
फण को ऊंचा करे वेग ही सन्मुख धाया।
तब जन होय निशंक देख फणपतिको आया॥
जो चापैं निज पगतलैं व्यापै विष न लगाए।
नाग-दमनि तुम नामकी है जिनके आधार॥४१॥

भक्तामरस्तोत्रम्

(श्री मानतुङ्गाचार्य)

भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित-पाप-तमो-वितानम्।
सम्यक्-प्रणम्य जिन-पाद-युगं युगादा-
वालम्बनं भव-जले पततां जनानाम् ॥१॥

जो भक्ति वश नमस्कार करते हुए देवों के मुकुटों की रत्न कान्ति को दीप्तमान करते हैं पापान्धकार को दूर करते हैं तथा कर्म युग के प्रारम्भ में संसार सागर में भटकने वाले प्राणियों की रक्षा करने वाले हैं ऐसे जिनेन्द्र भगवान के चरणों को प्रणाम करके उन आदिनाथ भगवान की स्तुति करता हूँ।

यः संस्तुतः सकल-वाङ्मय-तत्त्व-बोधा-
दुद्भूत-बुधि-पटुभिः सुर-लोकनाथैः।
स्तोत्रैर्जगतत्रितय-चित्त-हरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्॥२॥

जिनका स्तवन समस्त शास्त्रों के जानकार परम बुद्धिमान इन्द्रों ने तीनों लोकों के जीवों का मन मोहित करने वाले बड़े सुन्दर स्तोत्रों से किया है उन प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ भगवान की स्तुति करता हूँ।

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चित-पाद-पीठ
स्तोतुं समुद्यत-मतिर्विगत-त्रपोऽहम्।
बालं विहाय जल-संस्थितमिन्दु-बिम्ब-
मन्यः क इच्छित जनः सहसा ग्रहीतुम्॥३॥

हे विद्वानों द्वारा पूज्य चरण भगवान मैं आपकी स्तुति करने योग्य बुद्धि न रखता हुआ भी लज्जा छोड़कर आपकी स्तुति करने को तैयार हुआ हूँ। जैसे पानी में चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को बच्चे के सिवाय अन्य कौन बुद्धिमान मनुष्य पकड़ना चाहता है कोई नहीं।

वक्तुँ गुणान्गुण-समुद्र ! शशाङ्क-कान्तान्
कस्ते क्षमः सुर-गुरु-प्रतिमोऽपि बुद्ध्या।
कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्र-चक्रं
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥४ ॥

हे गुण सागर प्रभो आपके चन्द्र समान उज्ज्वल गुणों को बृहस्पति के समान बुद्धिमान विद्वान भी अपनी बुद्धि से नहीं कह सकता। जैसे प्रलय समय की प्रवल वायु से उद्वेलित मगरमच्छों से भरे हुए समुद्र को अपनी भुजाओं से कौन पार कर सकता है अर्थात् कोई भी नहीं।

सोऽहं तथापि तव भक्ति-वशान्मुनीश
कर्तुं स्तवं विगत-शक्तिरपि प्रवृत्तः।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रं
नाभ्येति किं निज-शिशोःपरिपालनार्थम् ॥५ ॥

हे मुनिनाथ भगवान ! फिर भी शक्ति हीन मैं भक्तिवश आपकी स्तुति करने को तैयार हआ हूँ। जिस तरह सिंह द्वारा पकड़े गये अपने बच्चे को छुड़ाने के लिए मोहवश अपनी अल्प शक्ति का विचार न करके हिरनी सिंह का सामना करने के लिए जा पहुँचती है।

अल्प-श्रुतं श्रुतवतां परिहास-धाम
त्वद्‌भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति
तच्चाम्र-चारू-कलिका-निकरैक-हेतु ॥६ ॥

भगवान ! मैं बुद्धिमानों के उपहास करने योग्य अल्पज्ञ हूँ। फिर भी आपकी भक्ति ही मुझे आपका स्तवन करने को प्रेरित करती है जैसे बसन्त ऋतु में जो कोयल मीठी वाणी बोलती है उसका कारण आम के वृक्षों पर आने वाला फूल ही है।

त्वत्संस्तवेन भव-सन्तति-सन्निबद्धं

पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम्।

आक्रान्त-लोकमलि-नीलमशेषमाशु

सूर्यांशु-भिन्नमिव शार्वरमन्धकारम्॥७॥

हे नाथ ! आपकी स्तुति करने से जीवों के अनेक भावों के संचित पाप कर्म क्षणभर में क्षय हो जाते हैं। जैसे की प्रातः समय सूर्य की किरणों से भौरे की तरह काला जगत में फैला हुआ रात्रि का अन्धकार तत्काल छिन्न-भिन्न हो जाता है।

मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद-

मारभ्यते तनु-धियापि तव प्रभावात्।

चेतो हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु

मुक्ता-फलद्युतिमुपैति ननूद-बिन्दुः ॥८॥

हे नाथ ! आपके स्तवन की ऐसी महिमा मानकर मैं अल्प बुद्धि भी आपकी स्तुति प्रारम्भ करता हूँ आपके प्रभाव से यह स्तुति सत्पुरुषों का चित्त करेगी। जैसे कमल के पत्ते पर पड़ी हुई पानी की बूंद मोती सरीखी शोभायमान होती है।

आस्तां तव स्तवनमस्त-समस्त-दोषं

त्वत्सङ्कथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति।

दूरे सहस्त्रकिरणः कुरुते प्रभैव

पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥९॥

हे प्रभो सर्व दुख दोष नाशिनी आपकी स्तुति की बात ही क्या केवल आपका नाम लेना भी जगत के पाप नष्ट कर डालता है जिस तरह सूर्य बहुत दूर रहता हुआ भी प्रकाश करता है तथा कमलों के वन में कमल के फूलों को विकसित कर देता है।

नात्यद्भुतं भुवन-भूषण भूत-नाथ !

भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः

तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा

भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति॥१०॥

हे जगत भूषण जगदीश्वर। संसार में जो भक्त पुरुष आपके गुणों का कीर्तन करके आपका स्तवन करते हैं वे आपके समान भगवान बन जाते हैं इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है क्योंकि वह स्वामी भी किस काम का जो कि अपने दास को अपने समान न बना सके। सदा दास ही बनाये रखे।

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेष-विलोकनीयं

नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।

पीत्वा पयः शशिकर-द्युति-दुग्ध-सिन्धोः

क्षारं जलं जल-निधेरसितुं क इच्छेत्॥११॥

हे भगवन्! बिना पलक झपकाये आपका दर्शन कर लेने पर मनुष्य के नेत्र अन्य किसी को देखने में संतुष्ट नहीं होते जिस तरह चन्द्र समान उज्ज्वल क्षीरसागर का मीठा जल पीकर खारे समुद्र का खारा पानी कौन पीना चाहता है अर्थात् कोई नहीं।

यैः शान्त-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं

निर्मापितस्त्रिभुवनैक-ललाम-भूत!

तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां

यत्ते समानमपरं न ही रूपमस्ति ॥१२॥

हे त्रिजगत के अलंकार! जिन शान्तिमय परमाणुओं से आपके शरीर का निर्माण हुआ। संसार में वे परमाणु उतने ही थे इसी कारण आपके समान शान्त वीतराग रूप, और किसी देव का नहीं दिखाई देता।

वक्त्रं क्व ते सुर-नरोरग-नेत्र-हारि

निःशेष-निर्जित-जगत्त्रितयोपमानम्।

बिम्बं कलङ्क-मलिनं क्व निशाकरस्य

यद्वासरे भवति पाण्डु-पलाश कल्पम्॥१३॥

हे भगवान सुर नर असुर के नेत्रों को अपनी ओर आकर्षित करने वाले समस्त जगत में अनुपम, आपके मुखमण्डल की बराबरी चन्द्रमा कहाँ कर सकता है जिसमें काला लांछन लगा हुआ है तथा जो दिन के समय ढाक के पत्ते की तरह कान्ति हीन हो जाता है।

सम्पूर्ण-मण्डल-शशाङ्क-कला-कलाप-

शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति।

ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वर-नाथमेकं

कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥१४॥

हे भगवान पूर्ण चन्द्र समान उज्ज्वल आपके गुण तीन लोकों को भी लाँघ गये हैं सो ठीक ही है जो एक त्रिलोकी नाथ के ही आश्रय रहें उनको यथेच्छ विहार करते हुए कौन रोक सकता है ? (कोई नहीं) ।

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि-

र्नीतं मनागपि मनो न विकार-मार्गम्।

कल्पान्त-काल-मरुता चलिताचलेन

किं मन्दराद्रि-शिखरं चलितं कदाचित् ॥१५॥

प्रभो ! इसमें क्या आश्चर्य की बात है कि सुन्दरी देवागंनाओं का हाव भाव देखकर भी आपका मन जरा भी विकृत नहीं हुआ। क्योंकि प्रलय काल की जिस प्रबल वायु से अन्य पर्वत चल विचल हो जाते हैं उस वायु से क्या कभी मन्दराचल (सुमेरु पर्वत) का शिखर भी चलाय मान होता है ? (कभी नहीं) ।

निर्धूम-वर्तिरपवर्जित-तैल-पूरः

कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटी-करोषि।

गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां

दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः ॥१६॥

हे विश्व प्रकाशक आप समस्त संसार को प्रकाशित करने वाले अनोखे दीपक हैं। क्योंकि अन्य दीपकों की बत्ती से धुआं निकलता है परन्तु आपका वर्ति (मार्ग) निर्धूम पाप रहित है। अन्य दीपक तैल की सहायता से ही प्रकाश (ज्ञान) फैलाते हैं। अन्य दीपक जरा भी हवा की झोंक से बुझ जाते हैं परन्तु आप प्रलय काल की हवा से भी विकार को प्राप्त नहीं होते तथा अन्य दीपक थोड़े से ही स्थान को प्रकाशित करते हैं। परन्तु आप समस्त लोक को प्रकाशित करते हैं।

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहु-गम्यः

स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति।

नाम्भोधरोदर-निरुद्ध-महा-प्रभावः

सूर्यातिशायि-महिमासि मुनीन्द्र! लोके ॥१७॥

हे मुनिनाथ आपकी महिमा सूर्य से भी अधिक है क्योंकि सूर्य सन्ध्या समय अस्त हो जाता है। परन्तु आप सदा प्रकाशित रहते हैं। सूर्य को राहु ग्रस लेता है परन्तु आज तक वह आपका स्पर्श तक नहीं कर सका। सूर्य दिन में क्रम क्रम से केवल एक द्वीप के अर्धभाग को ही प्रकाशित करता है परन्तु आप समस्त लोक को एक साथ प्रकाशित करते हैं और सूर्य के प्रकाश को मेघ ढ़क लेते हैं परन्तु आपके प्रकाश (ज्ञान) को कोई भी नहीं ढक सकता।

नित्योदयं दलित-मोह-महान्धकारं

गम्यं न राहु-वदनस्य न वारिदानाम्।

विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति

विद्योतयज्जगदपूर्व-शशाङ्क-बिम्बम् ॥१८॥

हे चन्द्र वदन! आपका मुख कमल एक विलक्षण चन्द्रमा है क्योंकि प्रसिद्ध चन्द्र तो रात्रि में उदित होता है परन्तु आपका मुख चन्द्र सदा उदित रहता है चन्द्रमा साधारण अन्धकार का ही नाश करता है परन्तु आपका मुख चन्द्र मोह रूपी महान अंधकार को नष्ट कर देता है। चन्द्रमा को राहु ग्रह लेता है और बादल छिपा देते हैं परन्तु आपके मुख चन्द्र को न राहु ग्रस सकता है बादल छिपा सकते हैं। चन्द्र की कान्ति कृष्ण पक्ष में घट जाती है परन्तु आपके मुख चन्द्र की कान्ति सदा सदृश रहती है तथा चन्द्रमा रात्रि में क्रम-क्रम से केवल अर्ध्द द्वीप प्रकासित करता है। परन्तु आपका मुख चन्द्र समस्त लोक को एक साथ प्रकाशित करता है।

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा

युष्मन्मुखेन्दु-दलितेषु तमःसु नाथ।

निष्पन्न-शालि-वन-शालिनि जीव-लोके

कार्यं कियज्जलधरैर्जल-भार-नम्रैः ॥१९॥

हे त्रिलोकी नाथ ! जिस प्रकार अनाज के पक जाने पर जल का बरसना व्यर्थ है उस जल से कीचड़ होने के सिवाय और कोई लाभ नहीं होता उसी प्रकार आपके मुख चन्द्र के द्वारा जहाँ अन्धकार नष्ट हो चुका है वहाँ दिन में सूर्य से और रात्रि में चन्द्र से कोई लाभ नहीं।

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं
नैवं तथा हरि-हरादिषु नायकेषु।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं
नैवं तु काच-शकले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥

हे सर्वज्ञ निज और पर का प्रकाशक तथा निर्मल जैसा ज्ञान आप में सुशोभित होता है वैसा ज्ञान ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि किसी अन्य देव में नहीं होता क्यों कि तेज की शोभा महामणि में ही होती है न की काँच के टुकड़ों में।

मन्ये वरं हरि-हरादय एव दृष्टा
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ॥२१॥

हे लोकोत्तम दूसरे देवों के देखने से तो आप में संतोष होता है यह लाभ है परन्तु आपके देखने से अन्य किसी देव की ओर चित्त नहीं जाता यह हानि है अथवा हरि हरादि देवों का देखना अच्छा है क्योंकि वे रागी द्वेषी हैं उनके दर्शन से चित्त सन्तुष्ट नहीं होता तब आपके दर्शन को लालायित है कि मृत्यु के बाद भी दूसरे देव का दर्शन नहीं करना चाहता।

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्र-रश्मिं
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥

हे मही तिलक ! जिस प्रकार सूर्य को पूर्व दिशा ही उत्पन्न करती है अन्य दिशायें नहीं, उसी प्रकार एक आपकी ही माता ऐसी है जो आप जैसे पुत्र रत्न को पैदा कर सकी अन्य किसी माता को ऐसे पुत्ररत्न को पैदा करने का सौभाग्य उपलब्ध नहीं हुआ।

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-

मादित्य-वर्णममलं तमसः पुरस्तात्।

त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं

नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र! पन्थाः ॥२३॥

हे योगीन्द्र! मुनिजन आपको परम पुरुष, कर्म मल रहित होने से निर्मल, मोहान्धकार का नाशक होने से सूर्य के समान तेजस्वी, आपकी प्राप्ति से मृत्यु न होने के कारण मृत्युञ्जय तथा आपके अतिरिक्त कोई दूसरा निरुपद्रव मोक्ष का मार्ग नही होने से आपको ही मोक्ष का मार्ग मानते हैं।

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं

ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम्।

योगीश्वर विदित-योगमनेकमेकं

ज्ञान-स्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥२४॥

हे गुणार्णव! आपके आत्मा का कभी नाश नहीं होने से आप अव्यय (अविनाशी) ज्ञान के लोकत्रय व्यापी होने से अथवा कर्म नाश में समर्थ होने से स्वरूप से अचित्य संख्यातीत या अद्‌भुत गुणयुक्त होने से असंख्य युगादि जन्मा या वर्तमान चौबीसी के प्रथम होने से आद्य (प्रथम), कर्म रहित या निवृत्ति रूप होने से ब्रह्मा, कृतकृत्य होने से ईश्वर, अन्तरहित होने से अनंत काम नाश के लिए केतु ग्रह के समान उदय होने से अनंग केतु मुनियों के स्वामी होने से योगीश्वर रत्नत्रय रूप योग के ज्ञाता होने से विदित योग गुणों और पर्यायों की अपेक्षा अनेक तीर्थंकरीय भेद की अपेक्षा एक केवल ज्ञानी होने से ज्ञानरूप तथा कर्ममल रहित होने से अमल कहे जाते हैं अर्थात् ऋषिगण पृथक-पृथक गुणों की अपेक्षा आपकी अव्यय आदि नामों से स्तुति करते हैं।

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित-बुद्धि-बोधात्

त्वं शङ्करोऽसि भुवन-त्रय-शङ्करत्वात्।

धातासि धीर! शिव-मार्ग-विधेर्विधानात्

व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥

हे पुरुषोत्तम! विश्व की चराचर वस्तुओं को एक साथ एक समय में जान

लेने वाला आपका बुद्धिबोध (केवल ज्ञान) देव देवेन्द्रों द्वारा पूजित होने से आप बुद्ध कहे जाते हैं। सब प्राणियों को बिना भेदभाव के सुख शान्ति का पथ प्रदर्शन कर उन्हें आत्म कल्याण की ओर अग्रसर करते हैं अतः आपको शंकर कहते हैं। आपने कर्म बंधन युक्त जीवों को संसार से छुटकारा पाने का रास्ता बताकर प्रतिबोध दिया है अतः आपको ब्रह्मा कहते हैं। अवनीतल पर आपके समान उपरोक्त गुण वाला कोई दूसरा पुरुष पैदा नहीं हुआ है अतः आपको पुरुषोत्तम कहते हैं।

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्ति-हराय नाथ
तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय
तुभ्यं नमो जिन भवोदधि-शोषणाय ॥२६॥

हे नमस्करणीय देव! हम आपकी भक्ति करते हैं विनय करते हैं। स्तुति करते हैं नमस्कार करते हैं क्यों? इसलिए कि आप सब जीवों के समस्त दुःखों को दूर कर उन्हें राहत पहुँचाते हैं आप ही अवनीतल के सर्वोत्तम अलंकार है आप ही तीनों लोकों के एकमात्र उपास्य उत्कृष्ट ईश्वर हैं आप ही संसार समुद्र को सुखाकर मानवों को अजर अमर पद देने वाले सत्य देव हैं अतः हम बार-बार प्रणाम करते हैं पुनश्च आप पूजक को जगपूज्य बना देते हैं अतः आप अति नमस्करणीय है ॥२६॥

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश।
दोषैरुपात्तविविधाश्रय-जात-गर्वैः
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥

हे गुण निधान लोक के समस्त गुणों ने आप में सहसा इस तरह निवास कर लिया है कि कुछ भी स्थान शेष नहीं रहा और दोषों ने यह सोचकर अभिमान से आपकी ओर देखा भी नहीं कि जब लोक के बहुत से देवों ने हमें अपना आश्रय दे रखा है तब हमें एक जिन देव की क्या परवाह है यदि उनमें हमें स्थान नहीं मिला तो न सही सारांश यह है कि आपमें केवल गुणों का ही निधान है दोषों का नाम निशान भी नहीं।

उच्चैरशोक-तरु-संश्रितमुन्मयूख-
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम्।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्त-तमो-वितानं
बिम्बं रवेरिव पयोधर-पार्श्ववर्ति ॥२८॥

हे अतिशय रूप ऊंचे और हरे अशोक वृक्ष के नीचे आपका स्वर्णमय उज्ज्वल रूप ऐसा मालूम होता है जैसे काले काले मेघ के समीपवर्ती पीत वर्ण सूर्य का मण्डल।

सिंहासने मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलता-वितानं
तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्र-रश्मेः ॥२९॥

हे रत्न जड़ित सिंहासनस्थ देव! तपाये हुए सोने की चमकती आभा के समान कान्तिमान दिव्य सुन्दर मनोहारी आपका शरीर झिल मिलाती रत्नमणियों की किरण पंक्ति से सुशोभित आश्चर्य जनक सिहासन पर ऐसा ही शोभा देता है जैसा कि उदयांचल पर्वत के उन्नत शिखर पर सहस्र प्रखर किरण समूह का वितान मंडप तानता हुआ सुन्दर सूर्य बिम्ब।

कुन्दावदात-चल-चामर-चारु-शोभं
विभ्राजते तव वपुः कलधौत-कान्तम्।
उद्यच्छशांक-शुचि-निर्झर-वारि-धार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥३०॥

हे चमराधिपते! जिस पर देवों द्वारा सफेद चँवर ढोरे जा रहे हैं ऐसा आपका सुवर्णमय शरीर ऐसा सुहावना मालूम होता है जैसा झरने सफेद जल से शोभित सुमेरू पर्वत का तट।

छत्र-त्रयं तव विभाति शशांक-कान्त-

मुच्चैः स्थितं स्थगित-भानु-कर-प्रतापम्।

मुक्ता-फल-प्रकर-जाल-विवृद्धशोभं

प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥३१॥

हे छत्रत्रयाधिपते आपके सिर पर सुशोभित चन्द्र के समान रमणीय सूर्य को किरणों के संताप का रोधक और रत्नों के जड़ाव से सुशोभित छत्रत्रय आपके तीनों लोकों के स्वामीपन को प्रकट करता है।

गम्भीर-तार-रव-पूरित-दिग्विभाग-

स्त्रैलोक्य-लोक-शुभ-सङ्गम-भूति-दक्षः।

सद्धर्म राज-जय-घोषण-घोषकः सन्

खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥३२॥

हे दुन्दुभिपते ! अपने गम्भीर और उच्च शब्दों से दिशाओं का व्यापक त्रैलोक्य के प्राणियों को शुभ समागम की विभूति प्राप्त कराने में दक्ष और जैन धर्म के समीचीन स्वामि जिन देव का यशोगान करने वाला दुन्दुभि बाजा आपका सुयश प्रकट कर रहा है।

मन्दार-सुन्दर-नमेरु-सुपारिजात-

सन्तानकादि-कुसुमोत्कर-वृष्टि-रुद्धा।

गन्धोद-बिन्दु-शुभ-मन्द-मरुत्प्रपाता

दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ॥३३॥

हे कुसुम वर्षाधिपते ! आकाश से कल्प वृक्षों के फूलों की सुगंधित जल और मन्द मन्द हवा के साथ जो उर्ध्वमुखी और देव कृत वर्षा होती है वह आपकी मनोहर वचना वली के समान शोभायमान होती है।

शुम्भत्प्रभा-वलय-भूरि-विभा विभोस्ते

लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ति।

प्रोद्यद्दिवाकर-निरन्तर-भूरि-संख्या

दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम-सौम्याम् ॥३४॥

हे भामण्डलाधिपते ! आपके भामण्डल की प्रभा यद्यपि कोटि सूर्य के समान तेजोयुक्त है तथापि सन्ताप करने वाली नहीं है चन्द्र के समान सुन्दर होने पर भी कान्ति से रात्रि को जीतती है अर्थात् रात्रि का अभाव करती है ।

स्वर्गापवर्ग-गम-मार्ग विमार्गणेष्टः
सद्धर्म-तत्व-कथनैक-पटुस्त्रिलोक्याः ।
दिव्य-ध्वनिर्भवति ते विशदार्थ-सर्व-
भाषा-स्वभाव-परिणाम-गुणैः-प्रयोज्यः ॥३५ ॥

हे दिव्य ध्वनिपते ! आपकी दिव्यध्वनि स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग बतलाती है सब जीवों को धर्मत्व (हित) का उपदेश देती है अर्थात जो प्राणी जिस भाषा का जानकार होता है आपकी दिव्य ध्वनि उसके कान के पास पहुँच कर उसी भाषा रूप हो जाती है ।

उन्निद्र-हेम-नव-पंकज-पुञ्ज-कान्ति
पर्युल्लसन्नख-मयूख-शिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६ ॥

हे पूज्य पाद धर्मोपदेश देने के लिए जब आप आर्य खण्ड में विहार करते हैं तब देव गण आपके चरणों के नीचे कमलों की रचना करते हैं ।

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र
धर्मोपदेशन-विधौ-न तथा परस्य ।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा
तादृक्कुतो ग्रह-गणस्य विकाशिनोऽपि ॥३७ ॥

हे संभवशरणाधिपते ! धर्मोपदेश के समय समवशरणादिक जैसी विभूति आपको प्राप्त हुई वैसी विभूति अन्य किसी देव को प्राप्त नहीं हुई । ठीक ही है कि जैसी कांति सूर्य की होती है वैसी कान्ति शुक्र आदि ग्रहों को प्राप्त हो सकती है क्या अर्थात् नहीं ।

श्च्योतन्मदाविल-विलोल-कपोल-मूल-

मत्त-भ्रमद्-भ्रमर-नाद-विवृद्ध-कोपम्।

ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं

दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम्॥३८॥

हे अभय प्रद जो प्राणी आपका शरण लेते हैं वे मदोन्मत्त उच्छृखंल आक्रमणकारी और अवश हाथी को देखकर भी भयभीत नहीं होते।

भिन्नेभ-कुम्भ-गलदुज्ज्वल-शोणिताक्त-

मुक्ता-फल-प्रकार-भूषित-भूमि-भागः।

बद्ध-क्रमः क्रम-गतं हरिणाधिपोऽपि

नाक्रामति क्रम-युगाचल-संश्रितं ते॥३९॥

उन्नत गण्डस्थलों को अपने नुकीले नाखूनों से क्षत-विक्षत करके उनसे निकलने वाले रुधिर से सने मुक्ताओं को बिखेर कर अवनीतल को अलंकृत कर दिया और अपने शिकार पर छलांग भरकर आक्रमण करने के लिए उद्यत ऐसे दहाड़ते हुए खूंखार सिंह के पंजे के बीच पड़े हुए आपके परम भक्तों पर वह वार नहीं कर सकता।

कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-वह्नि-कल्पं

दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिङ्गम्।

विश्वं जिघित्सुमिव संमुखमापतन्तं

त्वन्नाम-कीर्तन-जलं शमयत्यशेषम्॥४०॥

हे भगवान प्रलय समय जैसी तेज वायु से धधकती हुई वन की अग्नि, जिसमें कि भयानक फुलिंग (चिनगारी) बहुत ऊँचे निकल रहे हो ऐसी भयानक हो कि मानो सारे संसार को भस्म कर डालेगी, उसके सामने आ जाने पर हृदय में लिया हुआ आपका नाम रूपी जल तत्काल उसको बुझा कर शांत कर देता है।

रक्तेक्षणं समद-कोकिल-कण्ठ-नीलं
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम्।
आक्रामति क्रम-युगेण निरस्त-शंक-
स्त्वन्नाम-नाग-दमनी हृदि यस्य पुंसः ॥४१ ॥

हे शातिशय नाम वाले देव आपके पाप विमोचक पुण्यवर्धक शुभ नाम रूपी नागदमनी (जड़ी बूटी) को भक्ति सहित गाढ़ श्रद्धापूर्वक अन्तःकरण में धारण करने वाले मानव उस भयंकर उद्धत फुंकार करते हुए जहरीले नाग को भी निर्भय होकर रौंधते हुए चले जाते हैं कि जिसके नेत्र धधकते हुए अंगारे की तरह आरक्त वर्ण हो रहे हो और जो काली कोयल के कंठ के समान काला हो तथा जो क्रोधोन्मत्त होकर विशाल फण फैलाये डँसने के लिए अतिशीघ्रता से पवन वेग सा झपटा चला आता हो।

वल्गत्तुरङ्ग-गज-गर्जित-भीमनाद-
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम्।
उद्यद्दिवाकर-मयूख-शिखापविद्धं
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥४२ ॥

हे महासमरभय विनाशक देव जैसे उदयाचल के उच्च शिखर से उदीयमान दिनकर के किरण समूह के समक्ष रात्रि का काला अंधकार स्थिर नहीं रह सकता वैसे ही समरांगण में आपके पुण्योत्पादक नाम की माला जपने वाले एक निर्बल पुरुष के सामने चौकड़ी भरते हुए तेज तुरंगों की हिनहिनाहट और चिघाड़ते हुए हस्तिदल समेत युद्ध में संलग्न धीर वीर राजाओं की शस्त्र सुसज्जित पराक्रमी सेना भी अपना अस्तित्व रखने में विफल हो जाती है।

कुन्ताग्र-भिन्न-गज-शोणित-वारिवाह-
वेगावतार-तरणातुर-योध-भीमे।
युद्धे जयं विजित-दुर्जय-जेय-पक्षा-
स्त्वत्पाद-पंकज-वनाश्रयिणो लभन्ते ॥४३ ॥

हे दुर्जेय शत्रु मान भय भंजक देव ! जिस महा समर में बरछी की नुकीली

नौकों से भेदे गये हाथियों के विशाल काय शरीर से निःसृत रक्त रूपी अभर्यादित जल प्रवाह के कहते हुए उसे तैर कर अविलम्ब विजय प्राप्त करने के लिए अधीर वीर योद्धाओं से जो प्रचण्ड युद्ध हो रहा है ऐसे महायुद्ध में आपके पुनीत पादपद्मों की पूजा करने वाले भक्त जन अजेय शत्रु का अभिमान चूर-चूरकर बड़ी शान के साथ विजय पताका फहराते हुए आनंद विभोर हो जाते हैं।

अम्भोनिधौ क्षुभित-भीषण-नक्र-चक्र-
पाठीन-पीठ-भय-दोल्वण-वाडवाग्नौ।
रङ्गत्तरङ्ग-शिखर-स्थित-यान-पात्रा-
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥४४॥

हे भक्त वत्सल ! आपके निष्कलंक अनन्त गुणों का बारम्बार चिन्तन करने वाले शरणागत मानवों के विकराल मुँह फैलाए हुए इधर उधर लहराते विशालकाय मच्छ मगर आदि जल जन्तुओं से ओत-प्रोत और भयावनी वाड़वाग्नि से विक्षुब्ध हो रहे समुद्र की तूफानी लहरों में डगमगाते जल पोत बिना विपत्ति के निर्भयता पूर्वक अपार पारावार समुद्र से पार हो जाते हैं। अर्थात् आपके स्मरण से भक्तों पर आई हुई आकस्मिक आपत्तियाँ अविलम्ब शक्तिविहीन हो जाती हैं।

उद्भूत-भीषण-जलोदर-भार-भुग्नाः
शोच्याँ दशामुपगताश्च्युत-जीविताशाः।
त्वत्पाद-पंकज-रजोऽमृत-दिग्ध-देहा
मर्त्या भवन्ति मकरध्वज-तुल्यरूपाः ॥४५॥

हे पूज्यवाद ! जैसे अमृत के लेप से मनुष्य निरोग और सुन्दर हो जाता है उसी प्रकार आपके चरण कमल के रज रूपी अमृत के लेप से (चरणों की सेवा से) भीषण जलोदर आदि रोगों से पीड़ित मनुष्य भी कामदेव के समान सुन्दर हो जाते हैं।

आपाद-कण्ठमुरु-श्रृंखल-वेष्टिताङ्गा
गाढं बृहन्निगड-कोटि-निघृष्ट-जङ्घाः ।
त्वन्नाम-मन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः
सद्यः स्वयं विगत-बन्ध-भया भवन्ति ॥४६ ॥

हे महा महिम ! लोहे की बड़ी-बड़ी वजनदार साँकलो से जिनके सिर से लेकर पाँव तक शरीर के समस्त अवयव बहुत ही मजबूती से जकड़े हुए हैं और हाथों पैरों में पड़ी दो लोह शलाकों की बेड़ियों के पड़े रहने से निरन्तर उनकी बार-बार रगड़ से घुटने और जंघाए छिल गई है । ऐसे लोह श्रृंखला बद्ध मानव भी आपके शुभ नाम रूपी पाप विनाशक पवित्र मन्त्र का सत्य हृदय से स्मरण कर क्षण भर में अपने आप ही बन्धन की कठोर यातना से छुटकारा पाकर निर्द्वन्द और निर्भय हो जाते हैं ।

मत्तद्विपेन्द्र-मृगराज-दवानलाहि-
सङ्ग्राम वारिधि-महोदर-बन्धनोत्थम् ।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥४७ ॥

हे वृषमेश्वर ! इस प्रकार जो विवेकशील बुद्धिमान पुरुष आपके इस परम पवित्र स्तोत्र का रात दिन श्रद्धा सहित चिन्तवन अध्ययन आराधना और मनन करते हैं उने मदोन्मत्त हाथी विकराल सिंह भभकता दावानल भयंकर सर्प वीभत्स संग्राम विक्षुब्ध समुद्र शस्त्र प्रहार और बन्धन जनित भय भी व्याकुल होकर अति शीघ्र नष्ट हो जाते हैं फिर लौट कर आपके भक्त जनों की ओर बार नहीं करते ।

स्तोत्रस्त्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां
भक्त्या मया रुचिर-वर्ण-विचित्र-पुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कण्ठ-गतामजस्त्रं
तं 'मानतुङ्ग' मवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८ ॥

जैसे पुष्प माला धारण करने से मनुष्य को शोभा (लक्ष्मी) प्राप्त होती है उसी प्रकार इस स्त्रोत रूपी माला पहिनने (सदापाठ करने) से मनुष्य को परम्परा से मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त होती है ।

तत्त्वार्थ सूत्र (हिंदी अनुवाद सहित)

मंगलाचरण

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये ॥

जो मोक्ष मार्ग के नेता हैं, कर्मरूपी पर्वतों को भेदने वाले हैं और विश्व तत्वों के ज्ञाता हैं उनकी मैं उनके समान गुणों की प्राप्ति के लिए वन्दना करता हूँ।

प्रथम अध्याय

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्ष-मार्गः ॥१॥ तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥२॥ तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥३॥ जीवाजीवास्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्षास्तत्त्वम् ॥४॥ नाम-स्थापना-द्रव्य-भावतस्तन्न्यासः ॥५॥ प्रमाण-नयैरधिगमः ॥६॥ निर्देश-स्वामित्व-साधनाधिकरण स्थिति विधानतः ॥७॥ सत्संख्या-क्षेत्र-स्पर्शन-कालान्तर-भावाल्पबहुत्वैश्च ॥८॥ मति-श्रुतावधि-मनः पर्यय-केवलानि ज्ञानम् ॥९॥ तत्प्रमाणे ॥१०॥ आद्ये परोक्षम् ॥११॥ प्रत्यक्षमन्यत् ॥१२॥ मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥१३॥ तदिन्द्रियानिन्द्रिय निमित्तम् ।१४॥ अवग्रहेहावाय-धारणाः ॥१५॥ बहु-बहुविध-क्षिप्रानिः सृतानुक्त-ध्रुवाणां सेतराणाम् ॥१६॥ अर्थस्य ॥१७॥ व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥१८। न चक्षु रनिन्द्रियाभ्याम् ॥१९॥ श्रुतं मति-पूर्वं द्व्यनेक- द्वादश-भेदम् ॥२०॥ भवप्रत्ययो-ऽवधिर्देव नारकाणाम् ॥२१॥क्षयोपशम निमितः षड् विकल्पः शेषाणाम्॥२२॥

ऋजु-विपुलमती मनः पर्ययः ॥२३॥ विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥२४॥ विशुद्धि-क्षेत्र-स्वामी-विषयेभ्योऽवधि-मनः पर्यययोः ॥२५॥ मति-श्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्व-पर्यायेषु ॥२६॥ रुपिष्ववधेः ॥२७॥ तदनन्त-भागे मनः पर्ययस्य ॥२८॥ सर्व-द्रव्य-पर्यायेषु केवलस्य ॥२९॥ एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः ॥३०॥ मति-श्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥३१॥ सदसतोरविशेषाद्य दृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥३२॥ नैगम-संग्रह- व्यवहारर्जु-सूत्र-शब्द-समभिरूढैवंभूता नयाः ॥३३॥

इति तत्वार्थाधिगमे-मोक्षशास्त्रे प्रथमोध्यायः ॥१॥

प्रथम अध्याय

सम्यक् दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक चारित्र ये तीनों मिलकर मोक्ष का मार्ग है। (१) अपने-अपने स्वरूप के अनुसार पदार्थों का जो श्रद्धान होता है वह सम्यक् दर्शन है। (२) वह सम्यग्दर्शन् निसर्ग से और अधिगम से उत्पन्न होता है (३) जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्व हैं (४) नाम स्थापना द्रव्य और भाव रूप से उनका अर्थात् सम्यग-दर्शन आदि और जीव आदि का न्यास अर्थात् निक्षेप होता है (५) प्रमाण और नयों से पदार्थों का ज्ञान होता है (६) निर्देश. स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थित और विधान से सम्यक दर्शन आदि विषयों का ज्ञान होता है। (७) सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्प बहुत्व से भी सम्यक दर्शन आदि विषयों का ज्ञान होता है (८) मतिज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान, मनः पर्यय ज्ञान और केवल ज्ञान ये पाँच ज्ञान हैं। (९) वह पाँचों प्रकार का ज्ञान दो प्रमाण रूप हैं (१०) प्रथम दो ज्ञान परोक्ष प्रमाण है (११) शेष सब ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण है (१२) मंति, स्मृति, संज्ञा चिन्ता, और अभिनिबोध ये पर्याय वाची नाम है (१३) वह (मतिज्ञान) इन्द्रिय और मन रूप निमित्त से होता है (१४) अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये मति ज्ञान के चार भेद हैं (१५) सेतर (प्रतिपक्ष सहित) बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिः सृत अनुक्त और ध्रुव, के अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा रूप मैतिज्ञान होते हैं। (१६)

अर्थ के (वस्तु के) अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चारों मतिज्ञान होते हैं (१७) व्यंजन का अवग्रह ही होता है। (१८) चक्षु और मन से व्यंजनावग्रह नहीं होता। (१९) श्रुत ज्ञान, मतिज्ञान पूर्वक होता है। वह दो प्रकार का अनेक प्रकार का और बारह प्रकार का है। (२०) भव प्रत्यय अवधि ज्ञान देव और नारकियों के होता है। (२१) क्षयोप शमिक निमित्तक अवधि ज्ञान छह प्रकार का जो शेष अर्थात् तियचों और मनुष्यों के होता है। (२२) ऋजु मति और विपुल मति मनः पर्याय ज्ञान है। (२३) विशुद्धि और अप्रतिपात की अपेक्षा इन दोनों में अन्तर है। (२४) विशुद्धि, क्षेत्र, स्वामी और विषय की अपेक्षा अवधि ज्ञान और मनः पर्याय ज्ञान के भेद है (२५) मति ज्ञान और श्रुत ज्ञान की प्रवृत्ति कुछ पर्यायों से युक्त सब द्रव्यों में होती है। (२६) अवधि ज्ञान की प्रवृत्ति रूपी पदार्थों में होती है। (२७) मनः पर्याय ज्ञान की प्रवृत्ति रूपी पदार्थों में होती है। (२७) मनः पर्याय ज्ञान की प्रवृत्ति अवधि ज्ञान के विषय के अनन्तवें भाग में होती है। (२८) केवल ज्ञान की प्रवृत्ति सब द्रव्य और उनकी सब पर्यायों में होती है। (२९) एक आत्मा में एक साथ एक सेलेकर चार तक ज्ञान भजना से होते हैं। (३०) मति, श्रुत और अवधि ये तीन विपर्यय भी हैं (३१) वास्तविक और अवास्तविक के अन्तर के बिना यदृच्छोपलब्धि (जब जैसा जी में आया उस रूप ग्रहण होने) के कारण उन्मत्त की तरह ज्ञान भी अज्ञान ही है। (३२) नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजु सूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवं भूत ये सात नय हैं।

श्री उमा स्वामी द्वारा रचित तत्वार्थ सूत्र के हिन्दी रूपान्तर का
प्रथम अध्याय पूर्ण हुआ।

औपशमिक क्षयिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्वमौदयिक-पारिणामिकौ च ॥१॥ द्वि-नवाष्टादशैकविंशति-त्रिभेदा यथाक्रमम् ।२२॥ सम्यक्त्व-चारित्रे ॥३॥ ज्ञान दर्शन-दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणि च ॥४॥ ज्ञानाज्ञान दर्शन-लब्धयश्चतुस्त्रित्रि-पञ्च-भेदा सम्यक्त्व-चारित्र-संयमा संयमाश्च ॥५॥ गति-कषाय-लिंग-मिथ्यादर्शनाज्ञानासंयता सिद्ध-लेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैक-षड्भेदाः ॥६॥ जीव-भव्या भव्यत्वानि च ॥७॥ उपयोगो लक्षणम् ॥८। स द्विविधोऽष्ट-

चतुर्भेदः ॥९॥ संसारिणो मुक्ताश्च ॥१०॥ समनस्का-मनस्काः ॥११॥ संसारिणस्त्रस-स्थावराः ॥१२॥ पृथिव्यप्तेजो-वायु वनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥ द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥१४॥ पञ्चेन्द्रियाणि ॥१५॥ द्विविधानि ॥१६॥ निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥१७॥ लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥१८॥ स्पर्शनरसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्राणि ॥१९॥ स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दास्तदर्थाः ॥२०॥ श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥२१॥ वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥२२॥ कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीनामेकैक-वृद्धानि ॥२३॥ संज्ञिनः समनस्काः ॥२४॥ विग्रहगतौ कर्म योगः ॥२५॥ अनुश्रेणि गतिः ॥२६॥ अविग्रहा जीवस्य ॥२७॥ विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ॥२८॥ एक-समयाऽविग्रहा ॥२९॥ एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः ॥३०॥ संमूर्छन-गर्भोपपादा जन्म ॥३१॥ सचित्त-शीत-संवृताः सेतरा मिश्रा-श्चैकशस्तद्योनयः ॥३२॥ जरायुजाण्डज-पोतानां गर्भः ॥३३॥ देव-नारकाणामुपपादः ॥३४॥ शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ॥३५॥ औदारिक-वैक्रियिकाहारक-तैजस-कार्मणानि शरीराणि ॥३६॥ परं परं सूक्ष्मम् ॥३७॥ प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात् ॥३८॥ अनन्त-गुणे परे ॥३९॥ अप्रतीघाते ॥४०॥ अनादि-सम्बन्धे च ॥४१॥ सर्वस्य ॥४२॥ तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥४३॥ निरुपभोगमन्त्यम् ॥४४॥ गर्भ-संमूर्च्छनजमाद्यम् ॥४५॥ औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥४६॥ लब्धिप्रत्ययं च ॥४७॥ तैजसमपि। ।४८॥ शुभं विशुद्ध-मव्याघाति-चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥४९॥ नारक-संमूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥५०॥

न देवाः ॥५१॥ शेषास्त्रिवेदाः ॥५२॥ औपपादिक-चरमोत्तमदेहासंख्येय-वर्षा, युषोऽनपवर्त्यायुषः ॥५३॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

दूसरा अध्याय

औपशमिक, क्षायिक, मिश्र, औदायिक और पारिणामिक ये जीव के स्वतत्व हैं। (१) उक्त पांच भावों के क्रम से दो, नौ, अठारह, इक्कीस, और तीन भेद हैं। (२) औपशमिक भाव के दो भेद हैं औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र। (३) क्षायिक भाव के नौ भेद हैं—क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिक वीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र। (४) क्षयोपशमिक भाव के अठारह भेद हैं— चार ज्ञान, तीन अज्ञान, तीन दर्शन, पाँच दानादि लब्धियां, सम्यक्त्व, चारित्र और संयमा-संयम ।(५) औदयिक भाव के इक्कीस भेद हैं- चार गति, चार कषाय, तीन लिंग, एक मिथ्या दर्शन, एक अज्ञान, एक असंयम, एक असिद्ध भाव और छह लेश्यायें। (६)

पारिणामिक भाव के तीन भेद हैं—जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व (७) उपयोग जीव का लक्षण है। (८) वह उपयोग दो प्रकार का है—ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग। ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है और दर्शनोपयोग चार प्रकार का है। (९) जीव दो प्रकार के हैं—संसारी और मुक्त। (१०) मन वाले और मन रहित ऐसे संसारी जीव हैं (११) तथा संसारी जीव त्रस और स्थावर के भेद से दो प्रकार हैं। (१२) पृथ्वीकायिक जल कायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पति कायिक ये पाँच स्थावर हैं। (१३) दो इन्द्रिय आदि त्रस हैं। (१४) इन्द्रियां पाँच हैं। (१५) वे प्रत्येक दो-दो प्रकार की हैं। (१६) निर्वृत्ति और उपकरण रूप द्रव्येन्द्रिय है। (१७) लब्धि और उपयोग रूप भावेन्द्रिय है। (१८) स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, और श्रोत्र ये इन्द्रियां हैं। (१९) स्पर्शन, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द ये क्रम से उन इन्द्रियों के विषय हैं। (२०) श्रुत मन का विषय है। (२१) वनस्पति कायिक तक के जीवों के एक अर्थात् प्रथम इन्द्रिय होती है।

(२२) कृमि पिपीलिका, भ्रमर और मनुष्य आदि के क्रम से एक एक इंद्रिय अधिक होती है। (२३) मन वाले जीव संज्ञी होते हैं। (२४) विग्रह गति में कर्म योग होता है (२५)।

गति श्रेणी के अनुसार होती है। (२६) मुक्त जीव की गति विग्रह रहित होती है। (२७) संसारी जीव की गति विग्रह रहित और विग्रह वाली होती है उसमें विग्रह वाली गति चार समय से पहले अर्थात् तीन समय तक होती है। (२८) एक समय वाली गति विग्रह रहित होती है। (२९) एक, दो या तीन समय तक जीव अनाहारक रहता है। (३०) सम्मूर्च्छन, गर्भ और उपपाद ये तीन जन्म हैं। (३१) सचित्त, शीत और संवृत तथा इनकी प्रतिपक्ष भूत अचित्त, उष्ण, और विवृत तथा मिश्र अर्थात सचित्ताचित्त, शीतोष्ण और संवृतविवृत ये उसकी अर्थात् जन्म की योनियां हैं (३२)।

जरायुज, अण्डज, और पोत जीवों का गर्भ जन्म होता है। (३३) देव और नारकियों का उपपाद जन्म होता है। (३४) शेष सब जीवों का सम्मूर्च्छन जन्म होता है। (३५) औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण ये पाँच शरीर हैं। (३६) आगे आगे का शरीर सूक्ष्म है। (३७) तैजस से पूर्व तीन शरीरों में आगे आगे का शरीर प्रदेशों की अपेक्षा अनंतगुणा है। (३८) परवर्ती दो शरीर प्रदेशों की अपेक्षा उत्तरोत्तर अनंतगुणें हैं। (३९) प्रतिघात रहित है। (४०) आत्मा के साथ अनादि संबंध वाले हैं। (४१) तथा सब संसारी जीवों के होते हैं। (४२) एक साथ एक जीव के तैजस और कार्माण से लेकर चार शरीर तक विकल्प से होते हैं। (४३) अन्तिम शरीर उपभोग रहित है। (४४) पहला शरीर गर्भ और सम्मूर्च्छन जन्म से पैदा होता है। (४५)

वैक्रियिक शरीर उपपाद जन्म से पैदा होता है। (४६) तथा लब्धि से भी पैदा होता है। (४७) तैजस शरीर भी लब्धि से पैदा होता है। (४८) आहारक शरीर शुभ-विशुद्ध और व्याघात रहित है और वह प्रमत्त संयत के ही होता है। (४९) नारक और सम्मूर्च्छन नपुंसक होते हैं। (५०) देव नपुंसक नहीं होते। (५१) शेष सब जीव तीन वेद वाले होते हैं। (५२) उपपाद वाले, चरमोत्तम देह

वाले और असंख्यात वर्ष की आयु वाले जीव अनपवर्त्य आयु वाले होते हैं। (५३)

श्रीमद उमास्वामी द्वारा रचित तत्वार्थ सूत्र के हिन्दी रूपान्तर
का दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ।

रत्न-शर्करा-बालुका-पङ्क-धूम-तमो-महातमः - प्रभाभूमयो घनाम्बुवाताकाश - प्रतिष्ठाः सप्ताऽधोऽधः ॥१॥ तासु-त्रिंशत्पंच - विंशति - पंचदश - दश - त्रि - पंचोनैक - नरक शतसहस्राणि पंचचैव यथाक्रमम् ॥२॥ नारका नित्याशुभ-तरलेश्या-परिणाम-देह-वेदना-विक्रियाः ॥३॥ परस्परो-दीरितदुःखाः ॥४॥ संक्लिष्टाऽसुरोदीरितदुःखाश्च प्राक्-चतुर्थ्याः ॥५॥ तेष्वेक-त्रिसप्त-दश- सप्तदश- द्वाविंशति-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥६॥ जंबूद्वीप-लवणोदादयः शुभ-नामानो द्वीपसमुद्राः ॥७॥ द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्व-पूर्व-परिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥८॥ तन्मध्ये मेरु- नाभि-वृत्तो योजन-शतसहस्र-विष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥९॥ भरतहैमवत-हरि-विदेह - रम्यक-हैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥१०॥ तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषध-नील- रुक्मि-शिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥११॥ हेमार्जुन-तपनीय-वैडूर्य- रजत- हेममयाः ॥१२॥ मणि-विचित्र-पार्श्वा उपरिमूले च तुल्य -विस्ताराः ॥१३॥ पद्म-महापद्म- तिगिंछ-केशरि-महापुण्डरीक- पुंडरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥१४॥ प्रथमो योजन-सहस्रायामस्तदर्द्धविष्कम्भो ह्रदः ॥१५॥ दश-योजनावगाहः ॥१६॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥१७॥ तद् द्विगुण-द्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥१८॥ तन्निवासिन्यो देव्यः

श्री- ह्री- धृति- कीर्ति- बुद्धि- लक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिक-परिषत्काः ॥१९॥ गङ्गा-सिन्धु- रोहिद्रोहितास्या- हरिद्धरिकान्ता-सीता-सीतोदा- नारी -नर- कान्ता - सुवर्ण- रूप्यकूला- रक्ता-रक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥२०॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥२१॥ शेषास्त्वपरगाः ॥२२॥ चतुर्दश-नदी-सहस्र-परिवृता गंगा-सिन्ध्वादयो नद्यः ॥२३॥ भरतः षड्विंशति-पंच-योजन-शत-विस्तारः षट् चैकोन- विंशतिभागा योजनस्य ॥२४॥ तद् द्विगुण-द्विगुण-विस्तारा वर्षधर-वर्षा विदेहान्ता :॥२५॥ उत्तरा दक्षिण-तुल्याः ॥२६॥ भरतैरावतयोर्वृद्धि-ह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥२७॥ ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥२८॥ एक-द्वि-त्रि- पल्योपम- स्थितयो हैमवतक-हारिवर्षक-दैवकुरवकाः ॥२९॥ तथोत्तराः ॥३०॥ विदेहेषु-संख्येय-कालाः ॥३१॥ भरतस्य विषकम्भो जम्बूद्वीपस्य नवति-शत-भागः ॥३२॥ द्विर्धात- कीखण्डे ॥३३॥ पुष्करार्द्धे च ॥३४॥ प्राङ्मानुषोत्त- रान्मनुष्याः ॥३५॥ आर्या म्लेच्छाश्च ॥३६॥ भरतैरावत- विदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ॥३७॥ नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥३८॥ तिर्यग्योनिजानां च ॥३९॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

तीसरा अध्याय

रत्नप्रभा, शर्करा प्रभा, बालुका प्रभा, पंकप्रभा, धूम प्रभा, तमः प्रभा और महा तमः प्रभा ये सात भूमियां घनाम्बु, वात और आकाश के सहारे स्थित हैं तथा क्रम से नीचे नीचे है (१)। उन भूमियों में क्रम से तीस लाख, पच्चीस लाख, पन्द्रह लाख, दस लाख, तीन लाख पाँच कम एक लाख और पाँच नरक हैं (२)। नारकी

निरंतर अशुभ तर लेश्या, परिणाम, देह वेदना और विक्रिया वाले हैं (३)। तथा वे परस्पर उत्पन्न किये गये दुःख वाले होते हैं (४)।

और चौथी भूमि से पहले तक वे संक्लिष्ट असुरों के द्वारा उत्पन्न किए गये दुःख वाले भी होते हैं। (५) उन नरकों में जीवों की उत्कृष्ट स्थिति क्रम से एक, तीन, सात, दस, सत्रह, बाईस और तैंतीस सागर है। (६) जम्बूद्वीप आदि शुभ नाम वाले द्वीप और लवणोद आदि शुभ नाम वाले समुद्र हैं। (७) वे सभी द्वीप और समुद्र दूने दूने व्यास वाले, पूर्व पूर्वद्वीप और समुद्र को वेष्टित करने वाले और चूड़ी के आकार वाले हैं। (८) उन सबके बीच में गोल और एक लाख योजन विष्कम्भ वाला जम्बूद्वीप है जिसके बीच में मेरु पर्वत है। (९) भरत वर्ष, हेमवत वर्ष, हरि वर्ष, विदेह वर्ष, रम्यक वर्ष, हैरण्य वंत वर्ष, और ऐरावत वर्ष ये सात क्षेत्र हैं। (१०) उन क्षेत्रों को विभाजित करने वाले और पूर्व पश्चिम लम्बे ऐसे हिमवान, महा हिमवान, निषध, नील रुक्मी और शिखरणी ये छह वर्षधर पर्वत हैं (११)।

ये छहों पर्वत क्रम से सोना, चांदी, तपाया हुआ सोना, वैडूर्यमणि चांदी और सोना इनके समान रंग वाले हैं। (१२) इनके पार्श्व मणियों से चित्र विचित्र हैं तथा वे ऊपर मध्य और मूल में समान विस्तार वाले हैं। (१३) इन पर्वतों के ऊपर क्रम से पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केशरी, महापुण्डरीक पुण्डरीक ये तालाब हैं। (१४) पहला तालाब एक हजार योजन लम्बा और इससे आधा चौड़ा है। ९१५) दश योजन गहरा है। (१६) इसके बीच में एक योजन का कमल है। (१७) आगे के तालाब और कमल दूने दूने हैं। (१८) इनमें श्री, ह्रीं, धृति, कीर्ति, बुद्धि, और लक्ष्मी ये देवियां सामानिक और परिषद देवों के साथ निवास करती हैं तथा इनकी आयु एक पल्य की है। (१९) इन भरत आदि क्षेत्रों में से गंगा, सिन्धु, रोहित, रोहितास्या, हरित, हरिकान्ता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्ण कूला, रूप्यकूला रक्ता और रक्तोदा नदियां बहती हैं। (२०) दो-दो नदियों में से पहली पहली नदी पूर्व समुद्र को जाती है। (२१) किन्तु शेष नदियां पश्चिम समुद्र को जाती हैं। (२२) गंगा और सिन्धु आदि नदियों की चौदह चौदह हजार परिवार नदियां हैं (२४)।

भरत क्षेत्र का विस्तार पाँच सौ छब्बीस सही छह बटे उन्नीस ५२६$\frac{६}{१९}$ योजन है। (२४) विदेह पर्यन्त पर्वत और क्षेत्र का विस्तार भरत क्षेत्र के विस्तार से दूना

दूना है । (२५) उत्तर के क्षेत्रों और पर्वतों का विस्तार दक्षिण के क्षेत्र और पर्वतों के समान हैं (२६) भरत और ऐरावत क्षेत्रों में उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के छह समयों की अपेक्षा वृद्धि और ह्रास होता रहता है । (२७) भरत और ऐरावत के सिवा शेष भूमियां अवस्थित हैं (२८) । हैमवत, हरिवर्ष और देवकुरु के प्राणियों की स्थिति क्रम से एक, दो और तीन पल्य प्रमाण है (२९) ।

दक्षिण के समान उत्तर में है । (३०) विदेहों में संख्यात वर्ष की आयु वाले प्राणी हैं । (३१) भरत क्षेत्र का विस्तार जम्बूद्वीप का एक सौ नब्बे वाँ भाग है । (३२) धातकी खण्ड में क्षेत्र तथा पर्वत आदि जम्बूद्वीप से दूने हैं । (३३) पुष्करार्ध में उतने ही हैं । (३४) मानुषोत्तर पर्वत के पहले ही मनुष्य हैं । (३५) मनुष्य दो प्रकार के हैं—आर्य और म्लेच्छ । (३६) देव कुरु और उत्तर कुरु के सिवा भरत ऐरावत, और विदेह, ये सब कर्मभूमि हैं । (३७) मनुष्य की उत्कृष्ट तीन पल्य और जघन्य अन्तर्मुहुर्त है । (३८) तिर्यंचों की स्थिति भी उतनी ही है ।(३९)

श्रीमद् उमा स्वामी द्वारा रचित तत्त्वार्थ सूत्र के हिन्दी रूपान्तर
का तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ ।

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥१॥ आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ॥२॥ दशाष्ट-पञ्च-द्वादश-विकल्पाः कल्पोपपन्न पर्यन्ताः ॥३॥ इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंश-पारिषदात्मरक्ष- लोकपालानीक-प्रकीर्णकाभियोग्य-किल्विषिकाश्चैकशः ॥४॥ त्रायस्त्रिंश-लोकपाल-वर्ज्या व्यन्तर-ज्योतिष्काः ॥५॥ पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥६॥ काय-प्रवीचारा आ ऐशानात् ॥७॥ शेषाः स्पर्श-रूप-शब्द-मनः प्रवीचाराः ॥८॥ परेऽप्रवीचाराः ॥९॥ भवनवासिनोऽसुरनाग-विद्युत्सुपर्णाग्नि - वातस्तनितोदधिद्वीप-दिक्कुमाराः ॥१०॥ व्यन्तरा किन्नर- किंपुरुष-महोरगगन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूतपिशाचाः ॥११॥ ज्योतिष्काः सूर्या-चन्द्रमसौ ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्णक-तारकाश्च ॥१२॥ मेरु-प्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥१३॥ तत्कृतः काल-विभागः ॥१४॥ बहिरवस्थिताः ॥१५॥ वैमानिकाः ॥१६॥

अपेक्षा ऊपर ऊपर के देव हीन हैं (२१)। दो, तीन कल्प युगलों में और शेष में क्रम से पीत पद्म और शुक्ल लेश्या वाले देव हैं (२२)। ग्रैवेयकों से पहले तक कल्प हैं (२३) लौकान्तिक देवों का ब्रह्मलोक निवास स्थान है (२४)। सारस्वत, आदित्य, वन्हि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध अरिष्ठ ये लौकान्तिक देव हैं (२५)। विजयादिक में दो चरम वाले देव होते हैं (२६)। उपपाद जन्म वाले और मनुष्यों के सिवा शेष सब जीव तिर्यंच योनि वाले हैं (२७)। असुर कुमार, नाग कुमार, सुपर्ण कुमार, द्वीप कुमार और शेष भवनवासियों की उत्कृष्ठ स्थिति क्रम से एक सागर, तीन पल्य, ढाई पल्य दो पल्य और डेढ़ पल्य प्रमाण है (२८)। सौधर्म और ऐशान कल्प में दो सागर से कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है (२९)।

सानत्कुमार और माहेन्द्र कल्प में सात सागर से कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है (३० । ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर युगल से लेकर प्रत्येक युगल में आरण-अच्युत तक क्रम से साधिक तीन से अधिक सात सागरोपम, साधिक सात से अधिक सात सागरोपम, साधिक नौ से अधिक सात सागरोपम, साधिक ग्यारह से अधिक सात सागरोपम तेरह से अधिक सात सागरोपम और पंद्रह से अधिक सात सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति है (३१)। आरण अच्युत के ऊपर नौ ग्रैवेयक में से प्रत्येक में नौ अनुदिश में, चार विजयादिक में एक एक सागर अधिक उत्कृत्ट स्थिति है। तथा सर्वार्थ सिद्धि में पूरी तैंतीस सागर स्थिति है (३२)। सौधर्म और ऐशान कल्प में जघन्य स्थिति साधिक एक पल्य है (३३)। आगे-आगे पूर्व-पूर्व की उत्कृष्ट स्थिति अनन्तर-अनन्तर की जघन्य स्थिति है (३४)। दूसरी आदि भूमियों में नारकों की पूर्व-पूर्व की उत्कृष्ट स्थिति ही अनन्तर अनन्तर की जघन्य स्थिति है। (३५)। प्रथम भूमि में दस हजार वर्ष जघन्य स्थिति है (३७)। भवन वासियों में भी दस हजार वर्ष जघन्य स्थिति है (३८)। और उत्कृष्ट स्थिति साधिक एक पल्य है (३९)। ज्योतिषियों की उत्कृष्ट स्थिति साधिक एक पल्य है (४०)। ज्योतिषियों की जघन्य स्थिति उत्कृष्ट स्थिति का आठवां भाग है (४१)। सब लौकान्तिकों की स्थिति आठ सागर है (४२)।

श्रीमद् उमा स्वामी द्वारा रचित तत्त्वार्थ सूत्र के हिन्दी रूपान्तर का चौथा अध्याय पूर्ण हुआ ॥४॥

अजीव-काया धर्माधर्माकाश-पुद्गलाः ॥१॥ द्रव्याणि ॥२॥ जीवाश्च ॥३॥ नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥ रूपिणः पुद्गलाः ।.५॥ आ आकाशादेकद्रव्याणि ।.६॥ निष्क्रियाणि च ॥७॥ असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैक-जीवानाम् ॥८॥ आकाशस्यानन्ताः ॥९॥ संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ।.१०॥ नाणोः ॥१३॥ लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥ धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥११॥ एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥१४॥ असंख्येय-भागादिषु जीवानाम् ॥१५॥ प्रदेश-संहार-विसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ।.१६॥ गति-स्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥१७॥ आकाशस्यावगाहः ॥१८॥ शरीर-वाङ्मनः-प्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥१९॥ सुख-दुःख-जीवितमरणोपग्रहाश्च ॥२०॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम् । ॥२१॥ वर्तना-परिणाम-क्रिया- परत्वापरत्वे च कालस्य ॥२२॥ स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवन्तः पुद्गलाः ॥२३॥ शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद-तमश्छाया- तपोद्योतवन्तश्च ॥२४॥ अणवः स्कन्धाश्च ॥२५॥ भेद-संघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥२६॥ भेदादणुः ॥२७॥ भेद-संघाताभ्यां चाक्षुषः ॥२८॥ सद् द्रव्य-लक्षणम् ॥२९॥ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्तं सत् ॥३०॥ तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥३१॥ अर्पितानर्पित-सिद्धेः ॥३२॥ स्निग्ध-रूक्षत्वाद्बन्धः ॥३३॥ न जघन्य गुणानाम् ॥३४॥ गुण साम्ये सदृशानाम् ॥३५॥ द्व्यधिकादि- गुणानां तु ॥३६॥ बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥३७॥ गुण-पर्ययवद् द्रव्यम् ॥३८॥ कालश्च ॥३९॥ सोऽनन्त- समयः ॥४०॥ द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥४१॥ तद्भावः परिणामः ॥४२॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रमे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

॥१९॥ सरागसंयम- संयमा- संयमाकामनिर्जरा- बालतपांसि दैवस्य ॥२०॥ सम्यक्त्वं च ॥२१॥ योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥२२॥ तद्विपरीतं शुभस्य ॥२३॥ दर्शन- विशुद्धिर्विनयसम्पन्नता- शील- व्रतेष्वन- तीचारोऽभीक्ष्ण- ज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्याग-तपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्य- करणमर्हदाचार्य- बहुश्रुत-प्रवचन- भक्तिरावश्यका- परिहाणिर्मार्ग- प्रभावना प्रवचन-वत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ॥२४॥ परात्म-निन्दा-प्रशंसे सदसद्गुणोच्छा- दनोद्भावने च नीचै गौत्रस्य॥२५॥ तद्विपर्ययो नीचैर्वृ त्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥२६६॥ विघ्नकरणमन्तरायस्य ॥२७॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

छठवाँ अध्याय

काय, वचन और मन की क्रिया योग है ॥१॥ वही आस्रव है ॥२॥ शुभ योग पुण्य का और अशुभ योग पाप का आस्रव है। ॥३॥ कषाय सहित और कषाय रहित आत्मा का योग क्रम से साम्परायिक और ईर्यापथ कर्म के आस्रव रूप है ॥४॥ पूर्व के अर्थात् साम्परायिक कर्मास्रव के इन्द्रिय कषाय, अव्रत और क्रिया रूप भेद हैं जो क्रम से पाँच, चार, पाँच और पच्चीस हैं ॥५॥ तीव्र भाव, मन्दभाव, ज्ञात भाव, अज्ञात भाव अधिकरण और वीर्य विशेष के भेद से उसकी (आस्रव) की विशेषता होती है ॥६॥ अधिकरण जीव और अजीव रूप हैं ॥७॥ पहला जीवाधिकरण संरम्भ, समारम्भ, आरम्भ, और के भेद से तीन प्रकार का योगों के भेद से तीन प्रकार का कृतकारित और अनुमत के भेद से तीन प्रकार का तथा कषायों के भेद से चार प्रकार का होता हुआ परस्पर मिलने से १०८ प्रकार का है ॥८॥ पर अर्थात् अजीवाधिकरण क्रम से दो, चार और तीन भेद वाले निर्वर्तना, निक्षेप संयोग और निसर्ग रूप है ॥९॥ ज्ञान और दर्शन के विषय में प्रदोष निह्नव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादन उपघात ये ज्ञानावरण और

दर्शनावरण के आस्रव हैं ॥१० ॥ अपने में, दूसरे में या दोनों में विद्यमान, दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध और परिदेवन ये असाता वेदनीय कर्म के आस्रव हैं ॥११ ॥

भूत अनुकम्पा, व्रती अनुकम्पा दान और सराग संयम आदि का योग तथा क्षान्ति और शौच ये साता वेदनीय कर्म के आस्रव हैं ॥१२ ॥ केवली, श्रुत, संघ धर्म और देव इनका अवर्णवाद दर्शन मोहनीय कर्म का आस्रव है ॥१३ ॥ कषाय के उदय से होने वाला तीव्र आत्म परिणाम चारित्र मोहनीय कर्म का आस्रव है ॥१४ ॥ बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह वाले का भाव नरकायु का आस्रव है ॥१५ ॥ माया तिर्यंचायु का आस्रव है ॥१६ ॥ अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह वाले का भाव मनुष्यायु का आस्रव है ॥१८ ॥ स्वभाव की मृदुता भी मनुष्यायु का आस्रव है ॥१८ ॥ शील रहित और व्रत रहित होना सब आयुओं का आस्रव है ॥१९ ॥ सराग संयम, संयमासंयम अकाम निर्जरा और बाल तप ये देवायु के आस्रव हैं ॥२० ॥

सम्यक्त्व भी देवायु का आस्रव है ॥२१ ॥ योग वक्रता और विसंवाद ये अशुभ नाम कर्म के आस्रव हैं ॥२२ ॥ उससे विपरीत अर्थात् योग की सरलता और अविसंवाद ये शुभ नाम कर्म के आस्रव हैं ॥२३ ॥ दर्शन विशुद्धि, विनय सम्पन्नता, शील और व्रतों का अतिचार रहित पालन करना, ज्ञान में सतत उपयोग, सतत संवेग, शक्ति के अनुसार त्याग, शक्ति के अनुसार तप, साधु समाधि वैयावृत्त्य करना, अरिहंत भक्ति, आचार्य भक्ति, बहुश्रुत भक्ति, प्रवचन भक्ति, आवश्यक क्रियाओं को न छोड़ना, मोक्षमार्ग की प्रभावना और प्रवचन वात्सल्य ये तीर्थंकर नाम कर्म के आस्रव हैं ॥२४ ॥ पर निन्दा आत्म प्रशंसा, सद्गुणों का उच्छादन, और असद गुणों का उद्भावन ये नीच गौत्र के आस्रव हैं ॥२५ ॥ उनका विपर्यय अर्थात् पर प्रशंसा, आत्म निन्दा, सद्गुणों का उद्भावन और असद गुणों का उच्छादन तथा नम्र वृत्ति और अनुत्सेक ये उच्च गौत्र के आस्रव हैं ॥२६ ॥ दानादिक में विघ्न डालना अन्तराय कर्म के आस्रव हैं ॥२७ ॥

श्रीमद् उमास्वामी द्वारा रचित तत्वार्थ सूत्र के हिन्दी रूपान्तर का छठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हिंसाऽनृत-स्तेयाब्रह्म-परिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥१॥ देश सर्वतोऽणु-महती ॥२॥ तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च-पञ्च ॥३॥ वाङ् मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपण-समित्यालोकितपान- भोजनानि पञ्च ॥४॥ क्रोध-लोभ-भीरुत्व-हास्य-प्रत्याख्यानान्यनुवीचि-भाषणं च पञ्च ॥५॥ शून्यागार-विमोचितावास-परोपरोधाकरण-भैक्ष्यशुद्धि- सधर्माविसंवादाः पञ्च ॥६॥ स्त्री राग कथा श्रवण तन्मनोहरांग निरीक्षण पूर्व-रतानु स्मरण-वृष्येष्यट- रस-स्वशरीर-संस्कार-त्यागाः पञ्च ॥७॥ मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रिय-विषय-राग- द्वेष वर्जनानि पञ्च ॥८॥ हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ॥९॥ दुःखमेव वा ॥१०॥ मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ्यानि च सत्त्व-गुणाधिक-क्लि- श्यमानाविनयेषु ॥११॥ जगत्काय-स्वभावौ वा संवेग-वैराग्यार्थम् ॥१२॥ प्रमत्तयोगात्प्राण-व्यपरोपणं हिंसा ॥१३॥ असदभिधानमनृतम् ॥१४॥ अदत्तादानं स्तेयम् ॥१५॥ मैथुनमब्रह्म ॥१६॥ मूर्छा परिग्रहः ॥१७॥ निःशल्यो व्रती ॥१८॥ अगार्यनगारश्च ॥१९॥ अणुव्रतोऽगारी ॥२०॥ दिग्देशानर्थदण्ड-विरति- सामायिक- प्रोषधोपवा-सोपभोगपरिभोग- परिमाणातिथि- संविभाग- व्रत- सम्पन्नश्च ॥२१॥ मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता ।.२२॥ शंका-कांक्षाविचिकित्सान्यदृष्टि- प्रशंसा- संस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः ॥२३॥ व्रत-शीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥२४॥ बन्धवध-च्छेदातिभारारोपणान्नपान-निरोधाः ॥२५॥ मिथ्योपदेश-रहोभ्याख्यान-कूटलेखक्रिया-न्यासापहार-साकारमन्त्र-भेदाः ॥२६॥ स्तेनप्रयोग-तदाहृतादान-विरुद्धराज्यातिक्रम- हीनाधि-कमानोन्मान-प्रतिरूपक व्यवहाराः ॥२७॥ परवि वाहकरणे-

त्वरिका-परिगृहीतापरिगृहीता-गमनानङ्गक्रीड़ा- कामतीव्राभिनिवेशाः ॥२८॥ क्षेत्रवास्तु-हिरण्यसुवर्ण-धन-धान्य-दासीदास-कुप्यप्रमाणातिक्रमाः ॥२९॥ ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रम - क्षेत्रवृद्धि - स्मृत्यन्तराधानानि ॥३०॥ आनयन - प्रेष्यप्रयोग - शब्द - रूपानुपात - पुद्गलक्षेपाः ॥३१॥ कन्दर्प- कौत्कुच्य-मौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोग परिभोगानर्थक्यानि ॥३२॥ योग- दुःप्रणिधानानादर-स्मृत्यनुपस्थानानि ॥३३॥ अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादान-संस्तरोपक्रमणा नादरस्मृत्य नुपस्थानानि ॥३४॥ सचित्त-संबंध-सम्मिश्राभिषव- दुःपक्वा हाराः ॥३५॥ सचित्त-निक्षेपापिधान- परव्यपदेश-मात्सर्य्य- कालातिक्रमाः ॥३६॥ जीवित - मरणाशंसा - मित्रानुराग - सुखानुबन्ध - निदानानि ॥३७॥ अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥३८॥ विधि-द्रव्य-दातृ-पात्र-विशेषात्तद्विशेषः ॥३९॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

सातवाँ अध्याय

हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह से निवृत्त होना व्रत है ॥१॥ हिंसादिक से एक देश निवृत्त होना अणुव्रत है और सब प्रकार से निवृत्त होना महाव्रत है ॥२॥ उन व्रतों को स्थिर करने के लिए प्रत्येक व्रत की पाँच-पाँच भावनायें हैं ॥३॥ वचनगुप्ति, मनोगुप्ति, ईर्या समिति, आदान निक्षेपण समिति और आलोकित पान भोजन ये अहिंसा व्रत की पांच भावनायें हैं ॥४॥ क्रोध प्रत्याख्यान, लोभ प्रत्याख्यान, भीरूत्व प्रत्याख्यान, हास्य प्रत्याख्यान और अनुवीची भाषण ये सत्य व्रत की पाँच भावनायें हैं ॥५॥

शून्यागारावास, विमोचितावास, परोपरोधाकरण, भैक्षशुद्धि और सधर्मा विसंवाद ये अचौर्य व्रत की पाँच भावनायें हैं ॥६॥ स्त्रियों में राग को पैदा करने

वाली कथा के सुनने का त्याग, स्त्रियों के मनोहर अंगों को देखने का त्याग पूर्व भोगों के स्मरण का त्याग, गरिष्ठ और इष्ट रस का त्याग, तथा अपने शरीर के संस्कार का त्याग ये ब्रह्मचर्य व्रत की पाँच भावनायें हैं ॥७॥ मनोज्ञ और अमनोज्ञ इन्द्रियों के विषयों में क्रम से राग और द्वेष का त्याग करना ये अपरिग्रह व्रत की पाँच भावनायें हैं ॥८॥ हिंसादिक पाँच दोषों में ऐहिक और पारलौकिक अपाय और अवद्य का दर्शन भावने योग्य है ॥९॥ अथवा हिंसादिक दुख ही हैं ऐसी भावना करना चाहिए ॥१०॥ प्राणीमात्र में मैत्री गुणाधिकों में प्रमोद क्लिश्यमानों में करुणा वृत्ति और अविनेयों में माध्यस्थ्य भावना करनी चाहिए ॥११॥ संवेग और वैराग्य के लिए जगत के स्वभाव और शरीर के स्वभाव की भावना करनी चाहिए ॥१२॥ प्रमत्त योग से प्राणों का वध करना हिंसा है ॥१३॥ असत् बोलना अनृत है ॥१४॥ बिना दी हुई वस्तु लेना स्तेय है ॥१५॥ मैथुन अबह्म है ॥१६॥ मूर्च्छा परिग्रह है ॥१७॥ जो शल्य रहित है वह व्रती है ॥१८॥ उनके अगारी और अनागार ये दो भेद हैं ॥१९॥ अणुव्रतों का धारी अगारी है ॥२०॥ वह दिग्विरति, देशविरति, अनर्थ दण्डविरति सामायिक व्रत प्रोषधोपवास व्रत, उपभोग परिभोग परिमाण व्रत और अतिथि संविभाग व्रत इन व्रतों से भी सम्पन्न होता है ॥२१॥ तथा वह मारणान्तिक संलेखना का प्रीतिपूर्वक सेवन करने वाला होता है ॥२२॥ शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टि प्रशंसा और अन्य दृष्टि संस्तवये सम्यक दृष्टि के पाँच अतिचार हैं ॥२३॥

व्रतों और शीलों में पाँच-पॉच अतिचार हैं जो क्रम से इस प्रकार हैं ॥२४॥ बन्ध, वध, छेद, अतिभार का आरोपण और अन्नपान का निरोध ये अहिंसा अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं ॥२५॥ मिथ्योपदेश, रहोभ्याख्यान, कूटलेख क्रिया, न्यासापहार और साकार मंत्रभेद ये सत्याणुव्रत के पाँच अतिचार हैं ॥२६॥ स्तेन प्रयोग, अहृतादान, विरुधराज्यातिक्रम हीनाधिक मनोन्मान, प्रतिरूपक व्यवहार से अचौर्य अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं ॥२७॥ पर विवाह करण, इत्वरिका परिगृहीतागमन, इत्वारिका अपरिगृहीतागमन, अनङ्गक्रीड़ा और काम तीव्राभिनिवेश, येस्वदार सन्तोष अणुवत के पाँच अतिचार हैं ॥२८॥ क्षेत्र और वास्तु के प्रमाण का अतिक्रम, हिरण्य और सुवर्ण के प्रमाण का अतिक्रम, धन और धान्य के प्रमाण का अतिक्रम, दासी और दास के प्रमाण का अतिक्रम,

तथा कुप्य के प्रमाण का अतिक्रम ये परिग्रह परिमाण व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥२९ ॥ उर्ध्व व्यतिक्रम, अधो व्यतिक्रम, तिर्यग्व्यतिक्रम, क्षेत्र वृद्धि और स्मृत्यन्तराधान ये दिग्विरति व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३० ॥

आनयन प्रेष्यप्रयोग, शब्दानुपात, रूपानुपात और पुद्गल क्षेप ये देशविरति व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३१ ॥ कन्दर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य असभीक्ष्याधिकरण और उपभोग परिभोगानर्थक्य ये अनर्थदण्ड विरति व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३२ ॥ काययोग, दुष्प्रणिधान, वचन योग दुष्प्रणिधान मनोयोग दुःष्प्रणिधान अनादर और स्मृति का अनुपस्थान, ये सामायिक व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३३ ॥ अप्रत्यवेक्षित, अप्रमार्जित, भूमि में उत्सर्ग, अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित वस्तु का आदान, अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित संस्तर का उपक्रमण अनादर और स्मृति का अनुपस्थान ये प्रोषधोपवास व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३४ ॥ सचित्ताहार, सम्बन्धाहार, सम्मिश्राहार, अभिषवाहार और दुःपक्वाहार ये उपभोग परिमाण व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३५ ॥ सचित्त निक्षेप, सचित्ता पिधान, परव्यपदेश, मात्सर्य और कालातिक्रम ये अतिथि संविभाग व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३६ ॥

जीविताशंसा, मरणाशंसा, मित्रानुराग, सुखानुबन्ध और निदान ये सल्लेखना व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३८ ॥ अनुग्रह के लिए अपनी वस्तु का त्याग करना दान है ॥३८ ॥ विधि, देय, वस्तु दाता और पात्र की विशेता से उसकी विशेषता है ॥३९ ॥

श्रीमद उमास्वामी द्वारा रचित तत्वार्थ सूत्र के हिन्दी रूपान्तर का
सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

मिथ्यादर्शनाविरति-प्रमाद-कषाय-योगा बन्धहेतवः ॥१ ॥ सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः ॥२ ॥ प्रकृति-स्थित्यनुभव-प्रदेशास्तद्विधयः ॥३ ॥ आद्यो-ज्ञान-दर्शनावरण-वेदनीय-मोहनीयायुर्नाम-गोत्रान्तरायाः ॥४ ॥

पञ्च-नव-द्व्यष्टाविंशति-चतुर्द्विचत्वारिंशद् द्वि-पञ्च भेदा यथा-क्रमम् ॥५॥ मति-श्रुतावधि-मनः पर्यय-केवलानाम्- ॥६॥ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रा-निद्रानिद्रा-प्रचला- प्रचला-प्रचला- स्त्यानगृद्धयश्च ॥७॥ सदसद्वेद्ये ॥८॥ दर्शन-चारित्र-मोहनीयाकषाय- कषायवेदनीयाख्यास्त्रि द्वि-नव-षोडशभेदाः सम्यक्त्व-मिथ्यात्व तदुभयान्यकषाय-कषायौ हास्य- रत्यरति-शोक-भय- जुगुप्सा-स्त्री-पुन्नपुंसक- वेदा अनन्तानु- बन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यान-संज्वलन- विकल्पाश्चैकशः क्रोधमान-माया-लोभाः ॥९॥ नारकतैर्यग्योन-मानुष- दैवानि ॥१०॥ गति-जाति- शरीराङ्गोपाङ्ग-निर्माण-बन्धन- संघात- संस्थान-संहनन-स्पर्श- रस-गन्ध वर्णानुपूर्व्य-गुरुलघूपघात- परघातातपोद्योतोच्छ्वास- विहायोगतयः प्रत्येकशरीर-त्रस- सुभग-सुस्वर- शुभ-सूक्ष्म- पर्याप्ति-स्थिरादेय यशःकीर्ति- सेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥११॥ उच्चैर्नीचैश्च ॥१२॥ दान- लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणाम् ॥१३॥ आदितस्तिसृणा- मंतरायस्य च त्रिंशत्सागरोपम-कोटीकोट्यः परा स्थितिः ॥१४॥ सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥१५॥ विंशतिर्नाम-गोत्रयोः ॥१६॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥१७॥ अपरा द्वादश मुहूर्ता वेदनीयस्य ॥१८॥ नाम-गोत्रयोरष्टौ ॥१९॥ शेषाणा- मन्तर्मुहूर्ता ॥२०॥ विपाकोऽ-नुभवः ॥२१॥ स यथानाम ॥२२॥ ततश्च निर्जरा ॥२३॥ नाम-प्रत्ययाः सर्वतो योग-विशेषात्-सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाह- स्थिताः सर्वात्म- प्रदेशेष्व- नन्तानन्त-प्रदेशाः ॥२४॥ सद्वेद्य-शुभायुर्नाम-गोत्राणि पुण्यम् ॥२५॥ अतोऽन्यत्पापम् ॥२६॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रेऽष्टमोध्यायः ॥८॥

आठवाँ अध्याय

मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये बन्ध के हेतु हैं ॥१॥ कषाय सहित होने से जीव कर्म के योग्य पुदगलों को ग्रहण करता है वह बंध है ॥२॥ उसके प्रकृति, स्थिति अनुभव और प्रदेश ये चार भेद हैं ॥३॥ पहला अर्थात् प्रकृति बंध, ज्ञानावरण दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गौत्र और अन्तराय रूप है ॥४॥ आठ मूल प्रकृतियों के अनुक्रम से पांच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार ब्यालीस, दो और पाँच भेद हैं ॥५॥ मतिज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधिज्ञान मनः पर्यय ज्ञान और केवल ज्ञान इनको आवरण करने वाले कर्म पाँच ज्ञानावरण हैं ॥६॥ चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन और केवलदर्शन इन चारों के चार आवरण तथा निद्रा-निद्रा, निद्रा, प्रचला-प्रचला, प्रचला और स्त्यानगृद्धि ये पाँच निद्रादिक ऐसे नौ दर्शनावरण हैं ॥७॥ सद्वेद्य और असद्वेद्य ये दो वेदनीय हैं ॥८॥

दर्शन मोहनीय, चारित्र मोहनीय, अकषाय, वेदनीय, और कषाय वेदनीय इनके क्रम से तीन, दो, नौ और सोलह भेद हैं। सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और तदुभय ये तीन दर्शन मोहनीय हैं अकषाय वेदनीय और कषाय वेदनीय ये दो चारित्र मोहनीय हैं। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद और नपुंसक वेद ये नौ अकषाय वेदनीय हैं। अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन ये प्रत्येक क्रोध, मान, माया और लोभ के भेद से सोलह कषाय वेदनीय है ॥९॥ नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु ये चार आयु हैं ॥१०॥ गति, जाति, शरीर, अंगोपांग, निर्माण, बंधन, संघात, संस्थान, संहनन, स्पर्श, रस गन्ध वर्ण आनुपूर्व्य, अगुरु लघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत् उच्छ्वास और विहायोगति तथा प्रतिपक्ष भूत प्रकृतियों के साथ अर्थात् साधारण शरीर और प्रत्येक शरीर, स्थावर और त्रस, दुर्भग और सुभग, दुःस्वर और सुस्वर, शुभ और अशुभ, वादर और सूक्ष्म अपर्याप्त और पर्याप्त, अस्थिर और स्थिर, अनादेय और आदेय अयशः कीर्ति, यशः कीर्ति एवं तीर्थकरत्व ये ब्यालीस नाम कर्म के भेद हैं ॥११॥ उच्च गोत्र और नीच गौत्र ये दो गोत्र कर्म हैं ॥१२॥ दान लाभ

भोग उपभोग और वीर्य ये पाँच अन्तराय हैं ॥१३॥

आदि की तीन प्रकृतियां अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और वेदनीय तथा अन्तराय इन चार की उत्कृष्ट स्थित तीस कोटा कोटि सागरोपम है ॥१४॥ मोहनीय की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोटा कोटि सागरोपम है ॥१५॥ नाम और गौत्र की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोटा कोटि सागरोपम है ॥१६॥ आयु की उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरोपम है ॥१७॥ वेदनीय की जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त है ॥१८॥ नाम और गोत्र की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त है ॥१९॥ बाकी के पांच कर्मों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहुर्त है ॥२०॥ विपाक अर्थात् विविध प्रकार के फल देने की शक्ति का पड़ना अनुभव है ॥२१॥ वह जिस कर्म का जैसा नाम है उसके अनुरूप होता है ॥२२॥ इसके बाद निर्जरा होती है ॥२३॥ कर्म प्रकृतियों के कारण भूत प्रति समय योग विशेष से सूक्ष्म एक क्षेत्रागवाही और स्थित अनंतानन्त पुद्गल परमाणु सब आत्म प्रदेशों में (संबंध को प्राप्त) होते हैं ॥२४॥ साता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम और शुभ गोत्र ये प्रकृतियां पुण्य रूप हैं ॥२५॥ इनके सिवा शेष सब प्रकृतियां पाप रूप हैं ॥२६॥

श्रीमद उमास्वामी द्वारा रचित तत्वार्थ सूत्र के हिन्दी रूपान्तर का
आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

आस्रव-निरोधः संवरः ॥१॥ स गुप्ति-समिति-धर्मानुप्रेक्षा-परीषहजय-चारित्रैः ॥२॥ तपसा निर्जरा च ॥३॥ सम्यग्योग-निग्रहो गुप्तिः ॥४॥ ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥५॥ उत्तमक्षमा- मार्दवार्जव-शौच-सत्य-संयम तपस्त्यागाकिञ्चन्य- ब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥६॥ अनित्याशरण-संसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रव- संवर-निर्जरा-लोक- बोधिदुर्लभ धर्म-स्वाख्याततत्वानुचिन्तन मनुप्रेक्षाः ॥७॥ मार्गाच्यवन-निर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः ॥८॥ क्षुत्पिपासा-

शीतोष्णदंशमशक- नाग्न्यारति- स्त्री-चर्या- निषद्या-
शय्याक्रोश-वध- याचनालाभ-रोग- तृणस्पर्श- मल-
सत्कारपुरस्कार- प्रज्ञाज्ञानादर्श नानि ॥९॥ सूक्ष्मसाम्पराय-
छद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ॥१०॥ एकादश जिने ॥११॥
बादरसाम्पराये सर्वे ॥१२॥ ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥१३॥
दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ ॥१४॥ चारित्रमोहे
नाग्न्यारति-स्त्री-निषद्या-क्रोश-याचना- सत्कारपुरस्कारा:
॥१५॥ वेदनीये शेषा: ॥१६॥ एकादयो भाज्या
युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशते: ॥१७॥ सामायिकच्छे-
दोपस्थापना- परिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसाम्पराय- यथाख्यातमिति
चारित्रम् ॥१८॥ अनशनावमौदर्य- वृत्तिपरिसंख्यान- रस-
परित्याग-विविक्तशय्यासन- कायक्लेशा बाह्यं तप: ॥१९॥
प्रायश्चित्त-विनय वैयावृत्त्य-स्वाध्याय- व्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम्
॥२०॥ नवचतुर्दश-पञ्च द्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥२१॥
आलोचना - प्रतिक्रमण - तदुभय - विवेक - व्युत्सर्ग-तपश्छेद
परिहारोपस्थापना: ॥२२॥ ज्ञान-दर्शनचारित्रोपचारा: ॥२३॥
आचार्योपाध्याय-तपस्वि-शैक्ष्यग्लानगण-कुल- संघ-साधु-
मनोज्ञानाम् ॥२४॥ वाचना-पृच्छनानुप्रेक्षाम्नाय-धर्मोपदेशा:
॥२५॥ बाह्याभ्यन्तरोपध्यो: ॥२६॥ उत्तम- संहननस्यैकाग्र-
चिन्ता-निरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ॥२७॥ आर्त्त-रौद्र-धर्म्य-
शुक्लानि ॥२८॥ परे मोक्ष-हेतू ॥२९॥ आर्तममनोज्ञस्य
संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृति-समन्वाहार: ॥३०॥ विपरीतं
मनोज्ञस्य ॥३१॥ वेदनायाश्च ॥३२॥ निदानं च ॥३३॥
तदविरत-देश-विरत- प्रमत्तसंयतानाम् ॥३४॥ हिंसानृत-स्तेय-
विषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरत-देशविरतयो: ॥३५॥ आज्ञापा-

यविपाक-संस्थान-विचयाय धर्म्यम् ॥३६॥ शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥३७॥ परे केवलिनः ॥३८॥ पृथक्त्वैकत्त्ववितर्क-सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति-व्युपरतक्रियानिवर्तीनि ॥३९॥ त्र्येकयोग-काययोगा योगानाम् ॥४०॥ एकाश्रये सवितर्क-वीचारे पूर्वे ॥४१॥ अवीचारं द्वितीयम् ॥४२॥ वितर्कः श्रुतम् ॥४३॥ वीचारोऽर्थ-व्यञ्जन- योगसंक्रान्तिः ॥४४॥ सम्यग्दृष्टि-श्रावक-विरतानन्त- वियोजक- दर्शनमोह-क्षपकोपशम- कोपशान्त-मोहक्षपक-क्षीणमोह-जिनाः क्रमशोऽसंख्येय- गुणनिर्जरा ॥४५॥ पुलाक-वकुश-कुशील-निर्ग्रन्थ- स्नातका निर्ग्रन्थाः ॥४६॥ संयम-श्रुत- प्रतिसेवना-तीर्थ-लिङ्ग- लेश्योपपाद-स्थान-विकल्पतः साध्याः ॥४७॥

इति तत्वार्धाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥९॥

नवमाँ अध्याय

आस्रव का निरोध करना संवर है ॥१॥ वह संवर, गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा परिषह जय और चारित्र से होता है ॥२॥ तप से संवर और निर्जरा होती है ॥३॥ योगों का सम्यक प्रकार से निग्रह करना गुप्ति है ॥४॥ ईर्या, भाषा, ऐषणा, आदान निक्षेप और उत्सर्ग ये पांच समितियां हैं ॥५॥ उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिञ्चन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य यह दस प्रकार का धर्म है ॥६॥ अनित्य अशरण, संसार एकत्व अन्यत्व, अशुचि आस्रव, संवर, निर्जरा, बोधि दुर्लभ और धर्म स्वाख्यातत्व का बार बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है ॥७॥ मार्ग से च्युत न होने के लिए और कर्मों की निर्जरा करने के लिए जो सहन करने योग्य हो वे परिषह हैं ॥८॥ क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नग्नता, अरति, स्त्री, चर्या, निषधा शय्या आक्रोश, वध, याचना अलाभ, रोग तृष्ण स्पर्श मल सत्कार पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान, और अदर्शन इन नाम वाले परिषह हैं ॥९॥

सूक्ष्म साम्पराय और छद्मस्थ वीतराग के चौदह परिषय सम्भवहैं ॥१८॥

जिन में ग्यारह परिषह सम्भव हैं ॥११ ॥ बादर साम्पराय में सब परिषह सम्भव हैं ॥१२ ॥ ज्ञानावरण के सद्भाव में प्रज्ञा और अज्ञान परिषह होते हैं ॥१३ ॥ दर्शन मोह और अन्तराय के सद्भाव में क्रम से अदर्शन और अलाभ परिषह होते हैं ॥१४ ॥ चारित्र मोह के सद्भाव में नाग्न्य, अरति स्त्री निषद्या, आक्रोश, याचना और सत्कार पुरुस्कार परिषह होते हैं ॥१५ ॥ बाकी के सब परिषह वेदनीय के सद्भाव में होते हैं ॥१६ ॥ एक साथ एक आत्मा में एक से लेकर उन्नीस तक परिषह विकल्प से हो सकते हैं ॥१७ ॥ सामयिक, छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि सूक्ष्म साम्पराय और यथाख्यात यह पाँच प्रकार का चारित्र है ॥१८ ॥ अनशन अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्त शय्यासन और कायक्लेश यह छह प्रकार का बाह्य तप है ॥१९ ॥ प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान ये छह प्रकार का आभ्यन्तर तप है ॥२० ॥

ध्यान से पूर्व के आभ्यन्तर तपों के अनुक्रम से नौ चार, दश, पांच और दो भेद हैं ॥२१ ॥ आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, परिहार और उपस्थापना यह नव प्रकार का प्रायश्चित है ॥२२ ॥ ज्ञान विनय, दर्शन विनय, चारित्र विनय, और उपचार विनय यह चार प्रकार का विनय है ॥२३ ॥ आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु और मनोज्ञ इनकी वैयावृत्य के भेद से वैयावृत्य दश प्रकार का है ॥२४ ॥ वांचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा आम्नाय और धर्मोपदेश यह पांच प्रकार का स्वाध्याय है ॥२५ ॥ बाह्य और अभ्यन्तर उपधि का त्याग यह दो प्रकार का व्युत्सर्ग है ॥२६ ॥ उत्तम संहनन वाले का एक विषय में चित्त वृत्ति का रोकना ध्यान है जो अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है ॥२७ ॥ आर्त्त, रौद्र, धर्म्य और शुक्ल ये ध्यान के चार भेद हैं ॥२८ ॥ उनमें से पर अर्थात् अन्त के दो ध्यान मोक्ष के हेतू हैं ॥२९ ॥ अमनोज्ञ पदार्थ के प्राप्त होने पर उसके वियोग के लिए चिन्ता सातत्य का होना प्रथम आर्त्त ध्यान है ॥३० ॥ मनोज्ञ वस्तु के वियोग होने पर उसकी प्राप्ति की सतत चिन्ता करना दूसरा आर्त ध्यान है ॥३१ ॥ वेदना के होने पर उसे दूर करने के लिए सतत् चिन्ता करना तीसरा आर्त्त ध्यान है ॥३२ ॥ निदान नाम का चौथा आर्त्त ध्यान है ॥३३ ॥ यह आर्त्त ध्यान अविरति, देशविरति और प्रमत्त संयत जीवों के होता है ॥३४ ॥ हिंसा, असत्य, चोरी और विषय संरक्षण के

लिए सतत चिन्तन करना रौद्र ध्यान है। वह अविरति और देश विरति के होता है ॥३५॥ आज्ञा अपाय, विपाक और संस्थान इनकी विचारणा के निमित्त मन को एकाग्र करना धर्म ध्यान है ॥३६॥ आदि के दो शुक्ल ध्यान पूर्व विद् के होते हैं ॥३७॥ शेष दो शुक्ल ध्यान केवली के होती हैं ॥३८॥ पृथक्त्वविर्तक, एकत्वविर्तक, सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती और व्युपरत क्रियानिवर्ति ये चार शुक्ल ध्यान हैं ॥३९॥ ये चार ध्यानक्रम में, तीन योग वाले, एक योग वाले काय योग वाले और अयोग के होते हैं ॥४०॥ पहले के दो ध्यान एक आश्रय वाले सविर्तक और सविचार होते हैं ॥४१॥ दूसरा ध्यान अविचार है ॥४२॥ विर्तक का अर्थ श्रुत है ॥४३॥ अर्थ व्यञ्जन और योग की संक्रान्ति वी चार है ॥४४॥ सम्यक दृष्टि श्रावक, विरत, अनन्तानुबंधी वियोजक दर्शन मोह क्षपक उपशमक, उपशान्त मोह, क्षपक, क्षीण मोह, और जिन, ये क्रम से असंख्यात गुण निर्जरा वाले होते हैं ॥४५॥ पुलाक, वकुश, कुशील निर्ग्रन्थ और स्नातक ये पाँच निर्ग्रन्थ हैं ॥४६॥ संयमश्रुत प्रतिसेवना, तीर्थलिंग, लेश्या, उपपाद और स्थान के भेद से इन निर्ग्रन्थों का व्याख्यान करना चाहिए ॥४७॥

श्रीमद उमास्वामी द्वारा रचित तत्वार्थ सूत्र के हिन्दी रूपान्तर का
नवमाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

मोहक्षयाज्ज्ञान-दर्शनावरणान्तराय-क्षयाच्च केवलम् ॥१॥ बन्धहेत्वभाव-निर्जराभ्यां कृत्स्न-कर्म- विप्रमोक्षो मोक्षः ॥२।. औपशमिकादि-भव्यत्वानां च ॥३॥ अन्यत्र केवलसम्यक्त्व-ज्ञान-दर्शन-सिद्धत्वेभ्यः ॥४॥ तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्या-लोकान्तात् ।.५॥ पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद् बन्धच्छेदात्तथागति-परिणामाच्च ॥६॥ आविद्धकुलालचक्रवद्- व्यपगतले-पालांबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च ॥७॥ धर्मास्तिका-याभावात् ॥८॥ क्षेत्र-काल-गति-लिङ्ग- तीर्थ-चारित्र प्रत्येक-बुद्धबोधित-ज्ञानावगाहनान्तर-संख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥९॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

दशवाँ अध्याय

मोह का क्षय होने से तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म का क्षय होने से केवल ज्ञान प्रकट होता है ॥१ ॥ बन्ध-हेतुओं के अभाव और निर्जरा से सब कर्मों का आत्यन्तिक क्षय होना ही मोक्ष है ॥२ ॥ तथा औपशमिक आदि भावों और भव्यत्वभाव के अभाव होने से मोक्ष होता है ॥३ ॥ पर केवल सम्यक्त्व, केवल ज्ञान, केवल दर्शन और सिद्धत्वभाव का अभाव नहीं होता ॥४ ॥ तदनन्तर, मुक्त जीव लोक के अन्त तक ऊपर जाता है ॥५ ॥

पूर्व प्रयोग से, संग का अभाव होने से बन्धन के टूटने से और वैसा गमन करना स्वभाव होने से मुक्त जीव ऊर्ध्वगमन करता है ॥६ ॥ घुमाये गए कुम्हार के चक्र के समान, लेप से मुक्त हुई तूमड़ी के समान एरण्ड के बीज के समान और अग्नि की शिखा के समान ॥७ ॥ धर्मास्तिकाय का अभाव होने से मुक्त जीव लोकान्त से और ऊपर नहीं जाता ॥८ ॥ क्षेत्र, काल, गति, लिंग, तीर्थ, चारित्र प्रत्येक बोधित-बुद्धिबोधित, ज्ञान, अवगाहना, अंतर संख्या और अल्प बहुत्व इन द्वारा सिद्ध जीव विभाग करने योग्य है ॥९ ॥

श्रीमद उमास्वामी द्वारा रचित तत्वार्थ सूत्र के हिन्दी रूपांतर का
दशवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

अक्षर मात्र पद स्वर हीनं, व्यञ्जन सन्धि विवर्जित रेफम्।
साधु भिरत्र मम क्षम्तव्यं, को न विमह्यति शास्त्र समुद्रे ॥१ ॥

इस शास्त्र में यदि कहीं अक्षर, मात्रा, पद या स्वर रहित हो तथा व्यंजन, संधि व रेफ से रहित हो तो सज्जन पुरुष मुझे क्षमा करें। क्योंकि शास्त्र समुद्र में कौन पुरुष मोह को प्राप्त नहीं होता अर्थात् भूल नहीं करता ॥१ ॥

दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति।
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनि पुङ्गवैः ॥२ ॥

इस दश अध्यायों में विभक्त इस तत्त्वार्थ सूत्र (मोक्षशास्त्र) के पाठ करने तथा परिच्छेदन अर्थात् भावपूर्वक मनन से श्रेष्ठ मुनियों ने एक उपवास का फल कहा है ॥२ ॥

श्रीजिनसहस्त्रनामस्तोत्रम्

(भगवज्जिनसेनाचार्य कृत)

स्वयंभुवे नमस्तुभ्यमुत्पाद्यात्मानमात्मनि ।
स्वात्मनैव तथोद्भूतवृत्तयेऽचिन्त्यवृत्तये ॥१ ॥
नमस्ते जगतां पत्ये लक्ष्मीभर्त्रे नमोऽस्तु ते ।
विदांवर नमस्तुभ्यं नमस्ते वदतांवर ॥२ ॥
कर्मशत्रुहणं देवमामनन्ति मनीषिणः ।
त्वामानमत्सुरेणमौलि-भा-मालाभ्यर्चित-क्रमम् । ।३ ॥
ध्यान - द्रुघण - निर्भिन्न - घन - घाति - महातरुः ।
अनन्त-भव-सन्तान-जयादासीरनन्तजित् ॥४ ॥
त्रैलोक्य-निर्जयावाप्त-दुर्दर्पमतिदुर्जयम् ।
मृत्युराजं विजित्यासीज्जिन मृत्युंजयो भवान् ॥५ ॥
विधूताशेष-संसार-बन्धनो भव्य-बान्धवः ।
त्रिपुरारिस्त्वमीशाऽसि जन्म-मृत्युजरान्तकृत् ॥६ ॥
त्रिकाल-विषयाशेष-तत्वभेदात् त्रिधोत्थितम् ।
केवलाख्यं दधच्चक्षुस्त्रिनेत्रोऽसि त्वमीशितः ॥७ ॥
त्वामन्धकान्तकं प्राहुर्मोहान्धासुर-मर्दनात् ।
अर्द्धं ते नारयो यस्मादर्धनारीश्वरोऽस्यतः ॥८ ॥
शिवः शिव-पदाध्यासाद् दुरितारि-हरो हरः ।
शङ्करः कृतशं लोके शम्भवस्त्वं भवन्सुखे ॥९ ॥
वृषभोऽसि जगज्ज्येष्ठः पुरुः पुरु-गुणोदयैः ।
नाभेयो नाभि-सम्भूतेरिक्ष्वाकु-कुल-नन्दनः ॥१० ॥
त्वमेकः पुरुषस्कंधस्त्वं द्वे लोकस्य लोचने ।
त्वं त्रिधा बुद्ध-सन्मार्गस्त्रिज्ञस्त्रिज्ञन-धारकः ॥११ ॥

चतुःशरण-माङ्गल्यमूर्तिस्त्वं चतुरस्रधीः ।
पञ्च-ब्रह्ममयो देव पावनस्त्वं पुनीहि माम् ॥१२॥
स्वर्गावतरिणे तुभ्यं सद्योजातात्मने नमः ।
जन्माभिषेक-वामाय वामदेव नमोऽस्तु ते ॥१३॥
सन्निष्क्रान्तावघोराय परं प्रशममीयुषे ।
केवलज्ञान-संसिद्धावीशानाय नमोऽस्तु ते ॥१४॥
पुरस्तत्पुरुषत्वेन विमुक्ति-पद-भाजिने ।
नमस्तत्पुरुषावस्थां भाविनीं तेऽद्य बिभ्रते ॥१५॥
ज्ञानावरणनिर्ह्रासान्नमस्तेऽनन्तचक्षुषे ।
दर्शनावरणोच्छेदान्नमस्ते विश्वदृश्वने ॥१६॥
नमो दर्शनमोहघ्ने क्षायिकामलदृष्टये ।
नमश्चारित्रमोहघ्ने विरागाय महौजसे ॥१७॥
नमस्तेऽनन्त-वीर्याय नमोऽनन्त-सुखात्मने ।
नमस्तेऽनन्त-लोकाय लोकालोकावलोकिने ॥१८॥
नमस्तेऽनन्त-दानाय नमस्तेऽनन्त-लब्धये ।
नमस्तेऽनन्त-भोगाय नमोऽनन्तोपभोगिने ॥१९॥
नमः परम-योगाय नमस्तुभ्यमयोनये ।
नमः परम-पूताय नमस्ते परमर्षये ॥२०॥
नमः परम-विद्याय नमः पर-मत-च्छिदे ।
नमः परम-तत्त्वाय नमस्ते परमात्मने ॥२१॥
नमः परमरूपाय नमः परम-तेजसे ।
नमः परम-मार्गाय नमस्ते परमेष्ठिने ॥२२॥
परमर्धिजुषे धाम्ने परम-ज्योतिषे नमः ।
नमः पारेतमःप्राप्तधाम्ने परतराऽऽत्मने ॥२३॥

नमः क्षीण-कलङ्काय क्षीण-बन्ध नमोऽस्तु ते।
नमस्ते क्षीण-मोहाय क्षीण-दोषाय ते नमः ॥२४॥
नमः सुगतये तुभ्यं शोभनां गतिमीयुषे।
नमस्तेऽतीन्द्रिय-ज्ञान-सुखायानिन्द्रियात्मने ॥२५॥
काय-बन्धननिर्मोक्षादकायाय नमोऽस्तु ते।
नमस्तुभ्यमयोगाय योगिनामधियोगिने ॥२६॥
अवेदाय नमस्तुभ्यमकषायाय ते नमः।
नमः परम-योगीन्द्र-वन्दितांघ्रि-द्वयाय ते ॥२७॥
नमः परम-विज्ञान नमः परम-संयम।
नमः परमदृग्दृष्ट-परमार्थाय तायिने ॥२८॥
नमस्तुभ्यमलेश्याय शुक्ललेश्यांशक-स्पृशे।
नमो भव्येतरावस्थाव्यतीताय विमोक्षिणे ॥२९॥
संज्ञ्यसंज्ञिद्वयावस्थाव्यतिरिक्तामलात्मने।
नमस्ते वीतसंज्ञाय नमः क्षायिकदृष्टये ॥३०॥
अनाहाराय तृप्ताय नमः परमभाजुषे।
व्यतीताशेषदोषाय भवाब्धेः पारमीयुषे ॥३१॥
अजराय नमस्तुभ्यं नमस्ते स्तादजन्मने।
अमृत्यवे नमस्तुभ्यमचलायाक्षरात्मने ॥३२॥
अलमास्तां गुणस्तोत्रमनन्तास्तावका गुणाः।
त्वां नामस्मृतिमात्रेण पर्युपासिसिषामहे ॥३३॥
प्रसिद्धाष्ट-सहस्रेद्धलक्षणं त्वां गिरां पतिम्।
नाम्नामष्टसहस्रेण तोष्टुमोऽभीष्टसिद्धये ॥३४॥
एवं स्तुत्वा जिनं देवं भक्त्या परमया सुधीः।
पठेदष्टोत्तरं नाम्नां सहस्रं पाप-शान्तये ॥३५॥

॥इति पीठिका ॥

सहस्त्रनाम भाषा

पीठिका

हे नाथ आप अपने आत्मा में अपने ही आत्मा के द्वारा अपने आत्मा को उत्पन्न कर प्रकट हुए हैं इसलिए आप स्वयं भू अर्थात् अपने आप उत्पन्न हुए कहलाते हैं। इसके सिवाय आपका महात्म्य भी अचिन्त्य है अतः आपको नमस्कार हो ॥१॥ आप तीन लोक के स्वामी हैं आप लक्ष्मी के भर्ता हैं आप विद्वानों में श्रेष्ठ हैं। इसलिए आपको नमस्कार हो आप वक्ताओं में श्रेष्ठ हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ॥२॥ काम रूपी शत्रु को नष्ट करने वाले हैं आपके चरण कमल इन्द्रों के मुकुटों की कान्ति के मसूह से पूजित हैं इसलिए हम आपको नमस्कार करते हैं ॥३॥ अपने ध्यान रूपी कुठार से अतिशय मजबूत घातिया कर्म रूपी बड़े भारी वृक्ष को काट डाला है तथा अनन्त संसार की संतति को भी आपने जीत लिया है इसलिए आप अनन्त जित् कहलाते हैं ॥४॥

हे जिनेन्द्र तीन लोकों को जीत लेने से जिसे भारी अहंकार उत्पन्न हुआ है और जो अनन्त दुर्जेय है ऐसे मृत्युराज को भी आपने जीत लिया है इसलिए आप मृत्युंजय कहलाते हैं ॥५॥ आपने संसार रूपी समस्त बन्धन नष्ट कर दिए हैं आप भव्य जीवों के बंधु हैं और आप जन्म मरण तथा बुढ़ापा इन तीनों का नाश करने वाले हैं इसलिए आप त्रिपुरारि हैं ॥६॥ हे ईश्वर जो तीनों काल विषयक समस्त पदार्थों को जानने के कारण तीन प्रकार से उत्पन्न हुआ कहलाता है ऐसे केवल ज्ञान नामक नेत्र को आप धारण करते हैं इसलिए आप ही त्रिनेत्र कहे जाते हैं ॥७॥ आपने मोह रूपी अंधासुर को नष्ट कर दिया है इसलिए विद्वान लोग आपको अन्धकान्तक कहते हैं आठ कर्म रूपी शत्रुओं में से आपके आधे अर्थात् चार घातिया कर्म रूपी शत्रुओं के ईश्वर नहीं हैं इसलिए आप अर्ध नारीश्वर कहलाते हैं ॥८॥ आप शिव पद अर्थात् मोक्ष स्थान में निवास करते हैं इसलिए शिव कहलाते हैं पाप रूपी शत्रुओं को नाश करने वाले हैं इसलिए हर कहलाते हैं। लोक में शान्ति करने वाले हैं इसलिए शंकर कहलाते हैं और सुख से उत्पन्न हुए हैं इसलिए शंभव कहलाते हैं ॥९॥ जगत में श्रेष्ठ हैं इसलिए वृषभ कहलाते हैं अनेक उत्तम गुणों का उदय होने से पुरू कहलाते हैं नाभिराजा से उत्पन्न हुए हैं इसलिए नाभेय कहलाते हैं और इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न हुए हैं

इसलिए इक्ष्वाकु कुल नन्दन कहलाते हैं ॥१०॥ समस्त पुरुषों में श्रेष्ठ आप एक ही हैं लोगों के नेत्र होने से आप दो रूप धारण करने वाले हैं आप सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक चारित्र के भेद से तीन प्रकार का मोक्ष का मार्ग जानते हैं अथवा भूत भविष्यत और वर्तमान काल सम्बन्धी तीन प्रकार का ज्ञान धारण करते हैं इसलिए आप त्रिज्ञ भी कहलाते हैं ॥११॥

अरहंत, सिद्ध, साधु और केवली भगवान के द्वारा कहा धर्म ये चार शरण तथा मंगल कहलाते हैं आप इन चारों की मूर्ति स्वरूप हैं आप चतुरस्त्रधी हैं अर्थात् चारों ओर से समस्त वस्तुओं को जानने वाले हैं पंचपरमेष्ठी रूप हैं और अत्यंत पवित्र हैं इसलिए हे देव मुझे भी पवित्र कीजिए ॥१२॥ हे नाथ आप स्वर्गावतरण के समय सद्योजात अर्थात् शीघ्र ही उत्पन्न होने वाले कहलाते थे इसलिए आपको नमस्कार हो आप जन्माभिषेक के समय बहुत सुन्दर जान पड़ते थे इसलिए हे वाम देव आपके लिए नमस्कार हो ॥१३॥

दीक्षा कल्याण के समय आप परम शान्ति को प्राप्त हुए और केवल ज्ञान के प्राप्त होने पर परम पद को प्राप्त हुए तथा ईश्वर कहलाए इसलिए आपको नमस्कार हो ॥१४॥ अब आगे शुद्ध आत्म स्वरूप के द्वारा मोक्ष स्थान को प्राप्त होंगे। इसलिए आगामी काल में प्राप्त होने वाली सिद्ध अवस्था को धारण करने वाले आपके लिए मेरा आज ही नमस्कार हो ॥१५॥ ज्ञानावरण कर्म का नाश होने से जो अनन्त चक्षु अर्थात् अनन्त ज्ञानी कहलाते हैं ऐसे आपके लिए नमस्कार हो और दर्शनावरण कर्म का विनाश हो जाने से जो विश्व दृश्वा अर्थात् समस्त संसार की देखने वाले कहलाते हैं ऐसे आपके लिए नमस्कार हो ॥१६॥

हे भगवान आप दर्शन मोहनीय कर्म को नष्ट करने वाले तथा निर्मल क्षायिक सम्यग्दर्शन को धारण करने वाले हैं इसलिए आपको नमस्कार हो इसी प्रकार आप चारित्र मोहनीय कर्म को नष्ट करने वाले वीतराग और अतिशय तेजस्वी हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ॥१७॥ आप अनन्त वीर्य को धारण करने वाले हैं इसलिए आपको नमस्कार हो। आप अनंत सुख रूप हैं इसलिए आपको नमस्कार हो। आप अनन्त प्रकाश से सहित तथा लोक व अलोक को देखने वाले हो इसलिए आपको नमस्कार हो ॥१८॥ अनन्त दान को धारण करने

वाले हो आपके लिए नमस्कार हो अनन्त लाभ को धारण करने वाले हो, अनन्त भोग, अनन्त उपभोग को धारण करने वाले हो इसलिए आपको नमस्कार हो ॥१९ ॥ हे भगवान आप परम ध्यानी हैं आपके लिए नमस्कार हो योनि भ्रमण से रहित हैं आपके लिए नमस्कार हो आप परम पवित्र हैं आपके लिए नमस्कार हो और आप परम ऋषि हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ॥२० ॥

आप परम विद्या अर्थात् केवल ज्ञान को धारण करने वाले हैं अन्य सब मतों का खण्डन करने वाले हैं परम तत्व स्वरूप हैं परमात्मा हैं और इसलिए आपको नमस्कार हो ॥२१ ॥ आप उत्कृष्ट रूप को धारण करने वाले हैं परम तेजस्वी हैं उत्कृष्ठ मार्ग स्वरूप हैं और परमेष्ठी हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ॥२२ ॥ आप सर्वोत्कृष्ठ मोक्ष स्थान की सेवा करने वाले हैं परम ज्योति स्वरूप हैं आपका ज्ञान रूपी तेज अन्धकार से परे है और आप सर्वोत्कृष्ट हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ॥२३ ॥ आप कर्म रूपी कलंक से रहित हैं इसलिए आपको नमस्कार हो आपका कर्मबंधन क्षीण हो गया है इसलिए आपको नमस्कार हो आपका मोह कर्म नष्ट हो गया है इसलिए आपको नमस्कार हो आपके समस्त रागादि दोष नष्ट हो गये हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ॥२४ ॥ आप मोक्ष रूपी उत्तम गति को प्राप्त होने वाले हैं इसलिए सुगति हैं इसलिए आपको नमस्कार हो आप अतीन्द्रिय ज्ञान और सुख से सहित हैं तथा इन्द्रियों से रहित अथवा इन्द्रियों के अगोचर हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ॥२५ ॥ आप शरीर रूपी बन्धन के नष्ट हो जाने से अकाय कहलाते हैं इसलिए आपको नमस्कार हो और योग रहित हैं आप योगियों अर्थात् मुनियों में सर्वोत्कृष्ट हैं इसलिए आपको नमस्कारर हो ॥२६ ॥ आप वेद रहित हैं कषाय रहित हैं और बड़े-बड़े योगिराज भी आपके चरण युगल की वंदना करते हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ॥२७ ॥

हे परम विज्ञान अर्थात् उत्कृष्ट केवल ज्ञान को धारण करने वाले आपको नमस्कार हो हे परम संयम अर्थात् उत्कृष्ट यथाख्यात चारित्र को धारण करने वाले हैं आपको नमस्कार हो हे भगवान आपने उत्कृष्ट केवल दर्शन के द्वारा परमार्थ को देख लिया है तथा आप सबकी रक्षा करने वाले हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ॥२८ ॥ आप यद्यपि लेश्याओं से रहित हैं तथापि उपचार से शुद्ध शुक्ल लेश्या के अंशों का स्पर्श करने वाले हैं भव्य और अभव्य दोनों ही

अवस्थाओं से रहित हैं और मोक्ष रूप हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ॥२९॥ आप संज्ञी और असंज्ञी दोनों अवस्थाओं से रहित निर्मल आत्मा को धारण करने वाले हैं आपकी आहार भय मैंथुन और परिग्रह ये चारों संज्ञायें नष्ट हो गई हैं तथा क्षायिक सम्यक् दर्शन को धारण कर रहे हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ॥३०॥ आप आहार रहित होते हुए भी तृप्त है परम दीप्ति को प्राप्त है। आपके समस्त दोष नष्ट हो गये हैं और आप संसार रूपी समुन्द्र के पार को प्राप्त हुए हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ॥३१॥आप बुढ़ापा रहित हैं जन्म रहित हैं मृत्यु रहित हैं अचल रूप हैं और अविनाशी हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ॥३२॥ हे भगवान आपके गुणों का स्तवन दूर रहे, क्योंकि आपके गुण अनन्त हैं उन सबका स्तवन होना कठिन है इसलिये केवल आपके नामों का स्मरण करके ही हम लोग आपकी उपासना करना चाहते हैं ॥३३॥ आपके देदीप्यमान एक हजार आठ लक्षण अतिशय प्रसिद्ध हैं और आप समस्त प्राणियों के स्वामी हैं इसलिए हम लोग अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए एक हजार आठ नामों से आपकी स्तुति करते हैं ॥३४॥ इस प्रकार सुधी जन परम भक्ति से जिनेन्द्र देव का स्तवन कर पाप शान्ति के लिए भगवान के एक हजार आठ नामों को पढ़ें ॥३५॥

श्रीमान्स्वयम्भूर्वृषभः शंभवः शंभुरात्मभूः।
स्वयंप्रभः प्रभुर्भोक्ता विश्वभूरपुनर्भवः ॥२॥
विश्वात्मा विश्वलोकेशो विश्वतश्चक्षुरक्षरः।
विश्वविद्विश्वविद्येशो विश्वयोनिरनश्वरः॥३॥
विश्वदृश्वा विभुर्धाता विश्वेशो विश्वलोचनः।
विश्वव्यापी विधिर्वेधाः शाश्वतो विश्वतोमुखः ॥४॥
विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठो विश्वमूर्तिर्जिनेश्वरः।
विश्वदृग् विश्वभूतेशो विश्वज्योतिरनीश्वरः ॥५॥
जिनो जिष्णुरमेयात्मा विश्वरीशो जगत्पतिः।
अनन्तजिदचिन्त्यात्मा भव्यबन्धुरबन्धनः॥६॥
युगादिपुरुषो ब्रह्मा पञ्चब्रह्ममयः शिवः।

परः परतरः सूक्ष्मः परमेष्ठी सनातनः ॥७॥
स्वयंज्योतिरजोऽजन्मा ब्रह्मयोनिरयोनिजः।
मोहारिविजयी जेता धर्मचक्री दयाध्वजः ॥८॥
प्रशान्तारिरनन्तात्मा योगी योगीश्वरार्चितः।
ब्रह्मविद् ब्रह्मतत्त्वज्ञो ब्रह्मोद्याविद्यतीश्वरः ॥९॥
शुद्धो बुद्धः प्रबुद्धात्मा सिद्धार्थः सिद्धशासनः।
सिद्धः सिद्धान्तविद् ध्येयः सिद्धसाध्यो जगद्धितः ॥१०॥
सहिष्णुरच्युतोऽनन्तः प्रभविष्णुर्भवोद्भवः।
प्रभूष्णुरजरोऽजर्यो भ्राजिष्णुर्धीश्वरोऽव्ययः ॥११॥
विभावसुरसम्भूष्णुः स्वयम्भूष्णुः पुरातनः।
परमात्मा परंज्योतिस्त्रिजगत्परमेश्वरः ॥१२॥

इति श्रीमदादिशतम् ॥१॥

श्री मदादि शतक (१)

श्रीमान, स्वयंभू, वृषभ, शंभव, शंभु, आत्मभू, स्वयंप्रभ, प्रभू, भोक्ता, विश्वभू, अपुनर्भव, विश्वात्मा, विश्वलोकेश, विश्वतश्चक्षु, अक्षर, विश्वविद्, विश्वविद्येश, विश्वयोनि, अनश्वर, विश्वदृश्वा, विभु, धाता, विश्वेश, विश्वविलोचन, विश्व व्यापी, विधि, वेधा, शाश्वत, विश्वतोमुख विश्वकर्मा, जगज्ज्येष्ठ, विश्वमूर्ति, जिनेश्वर, विश्वदृक, विश्वभूतेश, विश्व ज्योति, अनीश्वर, जिन, जिष्णु, अमेयात्मा, विश्वरीश, जगत्पति, अनंतजित, अचिन्त्यात्मा, भव्य बन्धु, अबन्धन, युगादिपुरुष, ब्रह्मा, ब्रह्ममय, शिव, पर, परतर, सूक्ष्म, परमेष्ठी, सनातन, स्वयं ज्योति, अज, अजन्मा, ब्रह्मयोनि, अयोनिज, मोहारिविजयी, जेता, धर्मचक्री, दयाध्वज, प्रशान्तारि, अनंतात्मा, योगी, योगीश्वरार्चित ब्रह्मविद, ब्रह्म तत्वज्ञ, ब्रह्मोद्यवित, यतीश्वर, शुद्ध, बुद्ध, प्रबुद्धात्मा सिद्धार्थ सिद्ध शासन, सिद्ध, सिद्धांत विद्, ध्येय, सिद्ध साध्य, जगद्धित, सहिष्णु, अच्युत, अनन्त, प्रभविष्णु, भवोद्भव प्रभूष्णु, अजर, अजर्य, भ्राजिष्णु, धीश्वर, अव्यय, विभावसु, असंभूष्णु स्वयंभूष्णु, पुरातन, परमात्मा, परम ज्योति, त्रिजगत्परमेश्वर।

दिव्यभाषापतिर्दिव्यः पूतवाक्पूतशासनः ।
पूतात्मा परमज्योतिःधर्माध्यक्षो दमीश्वरः ॥१ ॥
श्रीपतिर्भगवानर्हन्नरजा विरजाः शुचिः ।
तीर्थकृत्केवलीशानः पूजार्हः स्नातकोऽमलः ॥२ ॥
अनन्तदीप्तिर्ज्ञानात्मा स्वयम्बुद्धः प्रजापतिः ।
मुक्तः शक्तो निराबाधो निष्कलो भुवनेश्वरः ॥३ ॥
निरञ्जनो जगज्ज्योतिर्निरुक्तोक्तिरनामयः ।
अचलस्थितिरक्षोभ्यः कूटस्थः स्थाणुरक्षयः ॥४ ॥
अग्रणीर्ग्रामणीर्नेता प्रणेता न्यायशास्त्रकृत् ।
शास्ता धर्मपतिर्धर्म्यो धर्मात्मा धर्मतीर्थकृत् ॥५ ॥
वृषध्वजो वृषाधीशो वृषकेतुर्वृषायुधः ।
वृषो वृषपतिर्भर्ता वृषभाङ्को वृषोद्भवः ॥६ ॥
हिरण्यनाभिर्भूतात्मा भूतभृद् भूतभावनः ।
प्रभवो विभवो भास्वान् भवो भावो भवान्तकः ॥७ ॥
हिरण्यगर्भः श्रीगर्भः प्रभूतविभवोऽभवः ।
स्वयंप्रभुः प्रभूतात्मा भूतनाथो जगत्प्रभुः ॥८ ॥
सर्वादिः सर्वदृक् सार्वः सर्वज्ञः सर्वदर्शनः ।
सर्वात्मा सर्वलोकेशः सर्ववित्सर्वलोकजित् ॥९ ॥
सुगतिः सुश्रुतः सुश्रुत् सुवाक् सूरिर्बहुश्रुतः ।
विश्रुतः विश्वतः पादो विश्वशीर्षः शुचिश्रवाः ॥१० ॥
सहस्रशीर्षः क्षेत्रज्ञः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
भूतभव्यभवद्भर्ता विश्वविद्यामहेश्वरः ॥११ ॥

इति श्री दिव्यादिशतम्

श्री दिव्यादिशतक (२)

दिव्यभाषापति, दिव्य, पूतवाक, पूत शासन, पूतात्मा, परम ज्योति, धर्माध्यक्ष, दमीश्वर, श्रीपति, भगवान, अर्हन्, अरजाः विरजाः, शुचि तीर्थकृत, केवली, ईशान, पूजार्ह, स्नातक, अमल, अनंतदीप्ति, ज्ञानात्मा, स्वयंबुद्ध, प्रजापति, मुक्त, शक्त, निराबाध, निष्फल, भुवनेश्वर, निरंजन, जगज्ज्योति, निरुक्तोक्ति, अनामय, अचलस्थिति, अक्षोभ्य, कूटस्थ, स्थाणु, अक्षय, अग्रणी ग्रामणी, नेता, प्रणेता, न्यायशास्त्रकृत, शास्ता, धर्मपति, धर्म्य, धर्मात्मा, धर्म तीर्थकृत्, वृषध्वज वृषाधीश, वृषकेतु, वृषायुध, वृष, वृषपति, भर्ता, वृषभाङ्क, वृषोद्भव, हिरण्यनाभि, भूतात्मा, भूतभृत, भूतभावन, प्रभव, विभव, भास्वान्, भव, भाव, भवांतक, हिरण्यगर्भ, प्रभूतविभव श्रीगर्भ, अभव, स्वयंप्रभु, प्रभूतात्मा, भूतनाथ, जगत्प्रभु, सर्वादि सर्वदृक् सार्व सर्वज्ञ, सर्व दर्शन, सर्वात्मा, सर्वलोकेश, सर्वविद्, सर्वलोकजित, सुगति, सुश्रुत सुश्रुत्, सुवाक् सूरि, बहुश्रुत, विश्रुत, विश्वतः पाद, विश्वशीर्ष, शुचिश्रवा, सहस्त्र शीर्ष, क्षेत्रज्ञ, सहस्राक्ष, सहस्रपात्, भूत भव्य भवद्भर्ता, विश्व विद्या महेश्वर ।

स्थविष्ठः स्थविरो जेष्ठः प्रष्ठः प्रेष्ठो वरिष्ठधीः ।
स्थेष्ठो गरिष्ठो बंहिष्ठः श्रेष्ठोऽणिष्ठो गरिष्ठगीः ॥१ ॥
विश्वमृद्विश्वसृड् विश्वेट् विश्वभुग्विश्वनायकः ।
विश्वाशीर्विश्वरूपात्मा विश्वजिद्विजितान्तकः ॥२ ॥
विभवो विभयो वीरो विशोको विजरो जरन् ।
विरागो विरतोऽसङ्गो विविक्तो वीतमत्सरः ॥३ ॥
विनेयजनताबन्धुर्विलीनाशेषकल्मषः ।
वियोगो योगविद्विद्वान्विधाता सुविधिः सुधी ॥४ ॥
क्षान्तिभाक्पृथिविमूर्तिः शान्तिभाक् सलिलात्मकः ।
वायुमूर्तिरसङ्गात्मा वह्निमूर्तिरधर्मधक् ॥५ ॥
सुयज्वा यजमानात्मा सुत्वा सुत्रामपूजितः ।
ऋत्विग्यज्ञपतिर्याज्यो यज्ञाङ्गममृतं हविः ॥६ ॥

व्योममूर्तिरमूर्तात्मा निर्लेपो निर्मलोऽचलः।
सोममूर्तिः सुसौम्यात्मा सूर्यमूर्तिर्महाप्रभः ॥७॥
मन्त्रविन्मन्त्रकृन्मन्त्री मन्त्रमूर्तिरनन्तगः।
स्वतन्त्रस्तन्त्रकृत्स्वन्तः कृतान्तान्तः कृतान्तकृत् ॥८॥
कृती कृतार्थः सत्कृत्यः कृतकृत्यः कृतक्रतुः।
नित्यो मृत्युञ्जोयोऽमृत्युस्मृतात्माऽमृतोद्भवः ॥९॥
ब्रह्मनिष्ठः परंब्रह्म ब्रह्मात्मा ब्रह्मसम्भवः।
महाब्रह्मपतिर्ब्रह्मेड् महाब्रह्मपदेश्वरः ॥१०॥
सुप्रसन्नः प्रसन्नात्मा ज्ञानधर्मदमप्रभुः।
प्रशमात्मा प्रशान्तात्मा पुराणपुरुषोत्तमः ॥११॥

इति स्थविष्ठादिशतम् ॥३॥

श्री स्थविष्ठादिशतक (३)

स्थविष्ट, स्थविर, ज्येष्ठ प्रष्ठ, प्रेष्ठ वरिष्ठधी, स्थेष्ठ, गरिष्ठ, बंहिष्ठ, श्रेष्ठ, अणिष्ठ, गरिष्ठगी विश्वमुट, विश्वसृट् विश्वट्, विश्वभुक, विश्व नायक, विश्वासी विश्वरूपात्मा, विश्वजित्, विजितान्तक, विभव, विभय, वीर, विशोक, विजर, जरन्, विराग, विरत, असंग, विविक्त, वीतमत्सर, विनेय जनता बन्धु विलीनाशेष कल्मष, वियोग, योगविद्, विद्वान्, विधाता, सुविधि, सुधी, क्षान्तिभाक, पृथ्वीमूर्ति, शान्तिभाक, सलिलात्मक वायुमूर्ति, असंगात्मा, वह्निमूर्ति, अधर्म धक्, सुयज्वा यजमानात्मा, सुत्वा, सुत्राम पूजित ऋत्विक यज्ञपति, याज्य, यज्ञांग, अमृत हवि, व्योममूर्ति, अमूर्तात्मा, निर्लेप, निर्मल, अचल, सोममूर्ति, सुसौम्यात्मा, सूर्यमूर्ति, महाप्रभ मंत्रवित, मंत्रकृत, मंत्री, मंत्रमूर्ति अनन्तग, स्वतंत्र, तन्त्रकृत, स्वन्तः, कृतान्तान्त, कृतान्तकृत कृती कृतार्थ सतकृत्य, कृत कृत्य, कृत क्रतु, नित्य, मृत्युंजय, अमृत्यु, अमृतात्मा अमृतोद्भव ब्रह्मनिष्ठ परब्रह्म, ब्रह्मात्मा ब्रह्मसंभव, महाब्रह्मपति, ब्रह्मेंट्, महाब्रह्म पदेश्वर सुप्रसन्न, प्रसन्नात्मा, ज्ञान धर्म दमप्रभु, प्रशमात्मा, प्रशान्तामा, पुराण पुरुषोत्तम।

महाशोकध्वजोऽशोकः कः स्त्रष्टा पद्मविष्टरः।
पद्मेशः पद्मसम्भूतिः पद्मनाभिरनुत्तरः ॥१॥
पद्मयोनिर्जगद्योनिरित्यः स्तुत्यः स्तुतीश्वरः।
स्तवनार्हो हृषीकेशो जितजेयः कृतक्रियः ॥२॥
गणाधिपो गणज्येष्ठो गण्यः पुण्यो गणाग्रणीः।
गुणाकरो गुणाम्भोधिर्गुणज्ञो गुणनायकः ॥३॥
गुणादरी गुणोच्छेदी निर्गुणः पुण्यगीर्गुणः।
शरण्यः पुण्यवाक्पूतो वरेण्यः पुण्यनायकः ॥४॥
अगण्यः पुण्यधीर्गुण्यः पुण्यकृत्पुण्यशासनः।
धर्मारामो गुणग्रामः पुण्यापुण्यनिरोधकः ॥५॥
पापापेतो विपापात्मा विपाप्मा वीतकल्मषः।
निर्द्वन्द्वो निर्मदः शान्तो निर्मोहो निरुपद्रवः ॥६॥
निर्निमेषो निराहारो निष्क्रियो निरुपप्लवः।
निष्कलङ्को निरस्तैना निर्धूतागा निरास्त्रवः ॥७॥
विशालो विपुलज्योतिरतुलोऽचिन्त्यवैभवः।
सुसंवृतः सुगुप्तात्मा सुभुत् सुनयतत्त्ववित् ॥८॥
एकविद्यो महाविद्यो मुनिः परिवृढः पतिः।
धीशो विद्यानिधिः साक्षी विनेता विहतान्तकः ॥९॥
पिता पितामहः पाता पवित्रः पावनो गतिः।
त्राता भिषग्वरो वर्यो वरदः परमः पुमान् ॥१०॥
कविः पुराणपुरुषो वर्षीयान्वृषभः पुरुः।
प्रतिष्ठाप्रसवो हेतुर्भुवनैकपितामहः ॥११॥

इति महाशोकध्वजादिशतम् ॥४॥ अर्घ्यम्।

श्री महादिशतक (४)

महाशोक ध्वज, अशोक, 'क' स्त्रष्टा, पद्मविष्टर, पद्मेश पद्मसंभूति, पद्मनाभि, अनुत्तर, पद्मयोनि, जगद्योनि, इत्य, स्तुत्य, स्तुतीश्वर, स्तवनार्ह, हृषिकेश, जित जेय, कृत क्रिय, गणाधिप, गणज्येष्ट, गण्य, पुण्य, गणाग्रणी, गुणाकर, गुणाम्भोधि, गुणज्ञ, गुण नायक, गुणादरी, गुणोच्छेदी, निर्गुण, पुण्यगी, गुण, शरण्य, पूतवाक् पूत, वरेण्य, पुण्य नायक, अगण्य, पुण्यधी, गुण्य, पुण्यकृत्, पुण्य शासन, धर्माराम, गुणग्राम, पुण्यापुण्य निरोधक, पापापेत, विपापात्मा, विपाप्म, वीत कल्मष, निर्द्वन्द्व, निर्मद, निर्मोह, निरुपद्रव, निर्निमेष, निराहार, निष्क्रिय, निरूपप्लव निष्कलंक, निरस्तैना निर्द्धतागस् निरास्त्रव, विशाल विपुल ज्योति, अतुल, अचिन्त्य वैभव सुसंवृत, सुगुप्तात्मा, सुभुत, सुनय तत्वविद्, एकविद्य, महाविद्य, मुनि, परिवृढ़, पति, धीश, विद्यानिधि, साक्षी, विनेता, विहतान्तक, पिता, पितामह, पाता, पवित्र, पावन गति, त्राता, भिषग्वर, वर्य, वरद, परम, पुमान्, कवि, पुराण पुरुष, वर्षीयान्, ऋषभ, पुरू, प्रतिष्ठा प्रसव, अगति, प्रतिष्ठा प्रसव, भुवनैक पितामह ।

श्रीवृक्षलक्षणः श्लक्ष्णो लक्षण्यः शुभलक्षणः ।
निरक्षः पुण्डरीकाक्षः पुष्कलः पुष्करेक्षणः ॥१ ॥
सिद्धिदः सिद्धसङ्कल्पः सिद्धात्मा सिद्धसाधनः ।
बुद्धबोध्यो महाबोधिर्वर्धमानो महर्द्धिकः ॥२ ॥
वेदाङ्गो वेदविद्वेद्यो जातरूपो विदांवरः ।
वेदवेद्यः स्वसंवेद्यो विवेदो वदतांवरः ॥३ ॥
अनादिनिधनोऽव्यक्तो व्यक्तवाग्व्यक्तशासनः ।
युगादिकृद्युगाधारो युगादिर्जगदादिजः ॥४ ॥
अतीन्द्रोऽतीन्द्रियो धीन्द्रो महेन्द्रोऽतीन्द्रियार्थदृक् ।
अनिन्द्रियोऽहमिन्द्राच्यों महेन्द्रमहितो महान् ॥५ ॥
उद्भवः कारणं कर्ता पारगो भवतारकः ।
अग्राह्यो गहनं गुह्यं परार्ध्यः परमेश्वरः ॥६ ॥
अनन्तर्द्धिरमेयर्द्धिरचिन्त्यर्द्धिः समग्रधीः ।
प्राग्यः प्राग्रहरोऽभ्यग्रः प्रत्यग्रोऽग्रयोऽग्रिमोऽग्रजः ॥७ ॥

महातपा महातेजा महोदर्को महोदयः।
महायशा महाधामा महासत्त्वो महाधृतिः ॥८॥
महाधैर्यो महावीर्यो महासम्पन्महाबलः।
महाशक्तिर्महाज्योतिर्महाभूतिर्महाद्युतिः ॥९॥
महामतिर्महानीतिर्महाक्षान्तिर्महादयः।
महाप्राज्ञो महाभागो महानन्दो महाकविः ॥१०॥
महामहा महाकीर्तिर्महाकान्तिर्महावपुः।
महादानो महाज्ञानो महायोगो महागुणः ॥११॥
महामहपतिः प्राप्तमहाकल्याणपञ्चकः।
महाप्रभुर्महाप्रातिहार्याधीशो महेश्वरः ॥१२॥

इति श्रीवृक्षादिशतम् ॥५॥

श्री वृक्षादिशतक (५)

श्री वृक्षलक्षण, श्लक्ष्ण, लक्षण्य, शुभ लक्षण, निरीक्ष, पुण्डरीकाक्ष, पुष्कल, पुष्करेक्षण, सिद्धिद, सिद्ध संकल्प, सिद्धात्मा, सिद्धसाधन बुद्ध बोध्य, महाबोधि, वर्धमान, महर्द्धिक, वेदांग, वेदवित्, वेद्य, जातरूप, विदांवर, वेद वेद्य, स्वसंवेद्य, विवेद, वदतांवर, अनादि निधन, व्यक्त, व्यक्त वाक्, व्यक्त शासन, युगादि कृत्, युगाधार, युगादि, जगदादिज, अतीन्द्र, अतीन्दीय, धीन्द्र, महेन्द्र, अतीन्द्रियार्थदृक्, अनिन्द्रिय, अहमिन्द्रार्च्य, महेन्द्र महित, महान, उद्‌भव, कारण कर्ता, पारग भवतारक, अगाह्य, गहन, गुह्य, परार्ध्य, परमेश्वर, अनन्तर्द्धि अमेयर्द्धि, अचिन्त्यर्द्धि, समग्रधी, प्राग्य, प्राग्रहर, अभ्यग्र, प्रत्यग्र, अग्य्र, अग्रिम, अग्रज, महातपा, महातेजा, महोदर्क महादय, महायशा, महाधामा, महासत्त्व, महाधृति महाधैर्य, महावीर्य, महासंपत, महाबल, महाशक्ति, महाज्योति, महाभूति, महाद्युति, महामति, महानीति, महाक्षान्ति, महोदय, महाप्राज्ञ, महाभाग, महानन्द, महाकवि, महामहा, महाकीर्ति, महाकान्ति, महावपु, महादान, महाज्ञान, महायोग, महागुण, महामहपति, प्राप्त महा कल्याण पञ्चक, महाप्रभु, महाप्रातिहार्याधीश, महेश्वर।

महामुनिर्महामौनी महाध्यानो महादमः ।
महाक्षमो महाशीलो महायज्ञो महामखः ॥१ ॥
महाव्रतपतिर्मह्यो महाकान्तिधरोऽधिपः ।
महामैत्री मयोऽमेयो महोपायो महोमयः ॥२ ॥
महाकारुणिको मन्ता महोमन्त्रो महायतिः ।
महानादो महाघोषो महेज्यो महासांपतिः ॥३ ॥
महाध्वरधरो धुर्यो महौदार्यो महिष्ठवाक् ।
महात्मा महसांधाम महर्षिर्महितोदयः ॥४ ॥
महाक्लेशाङ्कुशः शूरो महाभूतपतिर्गुरुः ।
महापराक्रमोऽनन्तो महाक्रोधरिपुर्वशी ॥५ ॥
महाभवाब्धिसन्तारिमहामोहाद्रिसूदनः ।
महागुणाकरः क्षान्तो महायोगीश्वरः शमी ॥६ ॥
महाध्यानपतिर्ध्यातमहाधर्मा महाव्रतः ।
महाकर्मारिहाऽऽत्मज्ञो महादेवो महेशिता ॥७ ॥
सर्वक्लेशापहः साधुः सर्वदोषहरो हरः ।
असंख्येयोऽप्रमेयात्मा शमात्मा प्रशमाकरः ॥८ ॥
सर्वयोगीश्वरोऽचिन्त्यः श्रुतात्मा विष्टरश्रवाः ।
दान्तात्मा दमतीर्थेशो योगात्मा ज्ञानसर्वगः ॥९ ॥
प्रधानमात्मा प्रकृतिः परमः परमोदयः ।
प्रक्षीणबन्धः कामारिः क्षेमकृत्क्षेमशासनः ॥१० ॥
प्रणवः प्रणतः प्राणः प्राणदः प्रणतेश्वरः ।
प्रमाणं प्रणिधिर्दक्षो दक्षिणोऽध्वर्युरध्वरः ॥११ ॥
आनन्दो नन्दनो नन्दो वन्द्योऽनिन्द्योऽभिनन्दनः ।
कामहा कामदः काम्यः कामधेनुररिञ्जयः ॥१२ ॥

इति महामुन्यादिशतम् ॥६ ॥ अर्घ्यम् ।

श्री महामुन्यादिशतक (६)

महामुनि, महामौनि, महाध्यान, महादम, महाक्षम, महाशील, महायज्ञ, महामख, महाव्रतपति, मह्य, महाकांतिधर, अधिप, महामैत्रीमय, अमेय, महोपाय, महोमय, महाकांतिधर, अधिप, महामैत्रीमय, अमेय, महोपाय, मोहमय, महाकारूणिक, मंता, महामंत्र, महायति, महानाद, महाघोष, महेज्य, महासांपति, महाध्वरधर, धुर्य, महौदार्य, महेष्ठवाक् महात्मा, महासांधाम, महर्षि, महितोदय, महाक्लेशांकुश, शूर, महाभूपति, गुरु, महापराक्रम, अनन्त, महाक्रोधरिपु, वशी, महाभवाब्धिसंतारी, महामोहाद्रिसूदन, महागुणाकर, क्षान्त, महायोगीश्वर, शमी, महाध्यानपति, ध्यातमहाधर्म, महाव्रत, महाकर्मारिहा, आत्मज्ञ, महादेव, महेशिता, सर्व क्लेशापह, साधु, सर्व दोषहर, हर, असंख्येय, अप्रेयात्मा, शमात्मा, प्रशमाकर, सर्व योगीश्वर, अचिन्त्य, श्रुतात्मा, विष्ठर श्रवा, दान्तात्मा् दमतीर्थेश, योगात्मा ज्ञान सर्वग, प्रधान, आत्मा, प्रकृति, परम, परमोदय, प्रक्षीणबन्ध, कामारि, क्षेमकृत, क्षेम शासन, प्रणव, प्रणत, प्राण, प्राणद, प्रणतेश्वर, प्रमाण, प्रणिधि दक्ष, दक्षिण, अध्वर्यु, अध्वर, आनन्द, नन्दन, नन्द वन्द्य, अनिन्द्य, अभिनन्दन कामहा, कामद, काम्य, कामधेनु, अरिंजय।

असंस्कृतसुसंस्कारः प्राकृतो वैकृतान्तकृत्।
अन्तकृत्कान्तगुः कान्तश्चिन्तामणिरभीष्टदः ॥१ ॥
अजितो जितकामारिरमितोऽमितशासनः।
जितक्रोधो जितामित्रो जितक्लेशो जितान्तकः ॥२ ॥
जिनेन्द्रः परमानन्दो मुनीन्द्रो दुन्दुभिस्वनः।
महेन्द्रवन्द्यो योगीन्द्रो यतीन्द्रो नाभिनन्दनः ॥३ ॥
नाभेयो नाभिजोऽजातः सुव्रतो मनुरुत्तमः।
अभेद्योऽनत्ययोऽनाश्वानधिकोऽधिगुरुः सुधीः ॥४ ॥
सुमेधा विक्रमी स्वामी दुराधर्षो निरुत्सुकः।
विशिष्टः शिष्टभुक् शिष्टः प्रत्ययः कामनोऽनघः ॥५ ॥

क्षेमी क्षेमङ्करोऽक्षय्यः क्षेमधर्मपतिः क्षमी।
अग्राह्यो ज्ञाननिग्राह्यो ध्यानगम्यो निरुत्तरः॥६॥
सुकृती धातुरिज्यार्हः सुनयश्चतुराननः।
श्रीनिवासश्चतुर्वक्त्रश्चतुरास्यश्चतुर्मुखः ॥७॥
सत्यात्मा सत्यविज्ञानः सत्यवाक्सत्यशासनः।
सत्याशीः सत्यसन्धानः सत्यः सत्यपरायणः॥८॥
स्थेयान्स्थवीयान्नेदीयान्दवीयान् दूरदर्शनः।
अणोरणीयाननणुर्गुरुराद्यो गरीयसाम्॥९॥
सदायोगः सदाभोगः सदातृप्तः सदाशिवः।
सदागतिः सदासौख्यः सदाविद्यः सदोदयः॥१०॥
सुघोषः सुमुखः सौम्यः सुखदः सुहितः सुहृत्।
सुगुप्तो गुप्तिभृद् गोप्ता लोकाध्यक्षो दमीश्वरः॥११॥

इति असंस्कृतादिशतम् ॥७॥ अर्घ्यम्।

श्री असंस्कृतादिशतक (७)

असंस्कृत सुसंस्कार, प्राकृत, वैकृतांतकृत, अंतकृत, कांतगु, कांत, चिन्तामणि, अभीष्टद, अजित, जित कामारि, अमित, अमित शासन, जित क्रोध, जिता मित्र, जित क्लेश, जितान्तक, जिनेन्द्र, परमानन्द, मुनीन्द्र, दुन्दुभिस्वन, महेन्द्रवन्ध, योगीन्द्र, यतीन्द्र, नाभिनन्दन, नाभेय, नाभिज, अजात, सुव्रत, मनु, उत्तम, अभेद्य अनत्यय, अनाश्वान, अधिक, अधिगुरु, सुधी, सुमेधा, विक्रमी, स्वामी, दुराधर्ष, निरूत्सुक, विशिष्ट, शिष्ट भुक्, शिष्ट, प्रत्यय, कामन, अनद्य, क्षेमी, क्षेमंकर, अक्षय, क्षेमधर्मपति, क्षमी, अग्राह्य, ज्ञाननिग्राह्य, ज्ञानगम्य, निरूत्तर, सुकृती, धातु, इज्यार्ह, सुनय, श्रीनिवास, चतुरानन, चतुर्वक्त्र, चतुरास्य, चतुर्मुख, सत्यात्मा, सत्यविज्ञान, सत्यवाक् सत्यशासन, सत्याशी, सत्यसंधान, सत्य, सत्य परायण, स्थेयान्, स्थवीयान्, नेदीयान्, दवीयान्, दूर दर्शन, अणोः अणीयान्, अनणु, गरीय सामाद्य, सदायोग, सदाभोग, सदातृप्त, सदाशिव, सदागति, सदासौख्य, सदाविद्य, सदोदय, सुघोष, सुमुख, सौम्य, सुखद, सुहित्, सुहृत, सुगुप्त, गुप्ति भृत्, गोप्ता लोकाध्यक्ष, दमेश्वर।

बृहद्बृहस्पतिर्वाग्मी वाचस्पतिरुदारधीः ।
मनीषी धिषणो धीमांञ्छेमुषीशो गिरांपतिः ॥१ ॥
नैकरूपो नयोत्तुङ्गो नैकात्मा नैकधर्मकृत् ।
अविज्ञेयोऽप्रतर्क्यात्मा कृतज्ञः कृतलक्षणः ॥२ ॥
ज्ञानगर्भो दयागर्भो रत्नगर्भः प्रभास्वरः ।
पद्मगर्भो जगद्गर्भो हेमगर्भः सुदर्शनः ॥३ ॥
लक्ष्मीवांस्त्रिदशाध्यक्षो दृढीयानिन ईशिता ।
मनोहरो मनोज्ञाङ्गो धीरो गम्भीरशासनः ॥४ ॥
धर्मयूपो दयायागो धर्मनेमिर्मुनीश्वरः ।
धर्मचक्रायुधो देवः कर्महा धर्मघोषणः ॥५ ॥
अमोघवागमोघाज्ञो निर्मलोऽमोघशासनः ।
सुरूपः सुभगस्त्यागी समयज्ञः समाहितः ॥६ ॥
सुस्थितः स्वास्थ्यभाक्स्वस्थो नीरजस्को निरुद्धवः ।
अलेपो निष्कलङ्कात्मा वीतरागो गतस्पृहः ॥७ ॥
वश्येन्द्रियो विमुक्तात्मा निःसपत्नो जितेन्द्रियः ।
प्रशान्तोऽनन्तधामर्षिर्मङ्गलं मलहानघः ॥८ ॥
अनीदृगुपमाभूतो दिष्टिर्दैवमगोचरः ।
अमूर्तो मूर्तिमानेको नैको नानैकतत्त्वदृक् ॥९ ॥
अध्यात्मगम्यो ऽगम्यात्मा योगविद्योगिवन्दितः ।
सर्वत्रगः सदाभावी त्रिकालविषयार्थदृक् ॥१० ॥
शङ्करः शंवदो दान्तो दमी क्षान्तिपरयाणः ।
अधिपः परमानन्दः परात्मज्ञः परात्परः ॥११ ॥
त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्च्यस्त्रिजगन्मङ्गलोदयः ।
त्रिजगत्पतिपूज्यांघ्रिस्त्रिलोकाग्रशिखामणिः ॥१२ ॥

इति बृहदादिशतम् ॥८ ॥ अर्घ्यम् ।

श्री वृहदादिशतक (८)

बृहद् बृहस्पति, वाग्मी, वाचस्पति, उदारधी, मनीषी, धिषण, धीमान्, शेमुषीश, गिरांपति, नैकरूप, नयोतुङ्ग नैकात्मा, नैक धर्मकृत, अविज्ञेय, अप्रतर्क्यात्मा, कृतज्ञ, कृत लक्षण, ज्ञानगर्भ, दयागर्भ, रत्नगर्भ, प्रभास्वर, पद्म गर्भ, जगद्गर्भ, हेमगर्भ, सुदर्शन, लक्ष्मीवान्, त्रिदशाध्यक्ष, द्रढ़ीयान्, इन, ईशिता, मनोहर, मनोज्ञाङ्ग, धीर, गम्भीर शासन, धर्मयूप, दयायाग, धर्मनेमि, मुनीश्वर, धर्मचक्रायुध, देव, कर्महा, धर्म घोषण, अमोघ वाक्, अमोघाज्ञ, निर्मल, अमोघ शासन, सुरूप सुभग, त्यागी, समयज्ञ, समहित, सुस्थित, स्वास्थ्यभाक्, स्वस्थ, नीरजस्क, निरूद्धव, अलेप, निष्कलंकात्मा, गतस्पृह, वीतराग, वश्येन्द्रिय, विमुक्तात्मा, निःसपत्न, जितेन्द्रिय, प्रशान्त, अनन्त धामर्षि, मङ्गल, मलहा, अनघ, अनीदृक, उपमाभूत, दिष्टि, दैव, अगोचर, अमूर्त, मूर्तिमान्, एक, नैक, नानैकतत्वदृक, आध्यात्मगम्य, अगम्यात्मा, योगविद्, योगिवन्दित, सर्वत्रग सदाभावी, त्रिकाल विषयार्थदृक, शंकर, शंवद दान्त, दमी, क्षान्ति परायण, अधिप, परमानन्द, परत्मज्ञ, परात्पर, त्रिजगद्वल्लभ, अभ्यर्च्य, त्रिजगन्मंगलोदय, त्रिजगत्पतिपूज्याङ्घ्रि, त्रिलोकाग्रशिखामणि ।

त्रिकालदर्शी लोकेशो लोकधाता दृढव्रतः ।
सर्वलोकातिगः पूज्यः सर्वलोकैकसारथिः ॥१॥
पुराणः पुरुषः पूर्वः कृतपूर्वाङ्गविस्तरः ।
आदिदेवः पुराणाद्यः पुरुदेवोऽधिदेवता ॥२॥
युगमुख्यो युगज्येष्ठो युगादिस्थितिदेशकः ।
कल्याणवर्णः कल्याणः कल्यः कल्याणलक्षणः ॥३॥
कल्याणप्रकृतिर्दीप्रकल्याणात्मा विकल्मषः ।
विकलङ्कः कलातीतः कलिलघ्नः कलाधरः ॥४॥
देवदेवो जगन्नाथो जगद्बन्धुर्जगद्विभुः ।
जगद्धितैषी लोकज्ञः सर्वगो जगदग्रजः ॥५॥

चराचरगुरुर्गोप्यो गुढात्मा गूढगोचरः।
सद्योजातः प्रकाशात्मा ज्वलज्ज्वलनसप्रभः ॥६ ॥
आदित्यवर्णो भर्माभः सुप्रभः कनकप्रभः।
सुवर्णवर्णो रुक्माभः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥७ ॥
तपनीयनिभस्तुङ्गो बालार्काभोऽनलप्रभः।
सन्ध्याभ्रबभ्रुर्हेमाभस्तप्तचामीकरच्छविः ॥८ ॥
निष्टप्तकनकच्छायः कनत्काञ्चनसन्निभः।
हिरण्यवर्णः स्वर्णाभः शातकुम्भनिभप्रभः ॥९ ॥
द्युम्नाभो जातरूपाभस्तप्तजाम्बूनदद्युतिः।
सुधौतकलधौतश्री प्रदीप्तो हाटकद्युतिः ॥१० ॥
शिष्टेष्टः पुष्टिदः पुष्टः स्पष्टः स्पष्टाक्षरः क्षमः।
शत्रुघ्नोऽप्रतिघोऽमोघः प्रशास्ता शासिता स्वभूः ॥११ ॥
शान्तिनिष्ठो मुनिज्येष्ठः शिवतातिः शिवप्रदः।
शान्तिदः शान्तिकृच्छान्तिः कान्तिमान्कामितप्रदः ॥१२ ॥
श्रेयोनिधिरधिष्ठानमप्रतिष्ठः प्रतिष्ठितः।
सुस्थिरः स्थावरः स्थास्नुः प्रथीयान्प्रथितः पृथुः ॥१३ ॥

इति त्रिकालदर्श्यादिशतम् ॥९ ॥ अर्घ्यम्।

श्री त्रिकालदर्शादिशतक (९)

त्रिकालदर्शी, लोकेश, लोकधाता, दृढ़व्रत, सर्वलोकातिग, पूज्य, सर्वलौकैक सारथि, पुराण, पुरुष, पूर्व, कृत पूर्वाङ्ग विस्तर आदि देव, पुराणआद्य, पुरुदेव, अधि देवता, युग मुख्य, युग ज्येष्ठ, युगादि स्थिति देशक, कल्याण वर्ण, कल्याण, कल्य, कल्याण लक्षण, प्रकृति, दीप्रकल्याणात्मा, विकल्मष, विकलङ्क कलातीत, कलीलघ्न, देव देव, कलाधर, जगन्नाथ, जगद्वन्धु, जगद्विभु, जगद्धितैषी, लोकज्ञ, सवर्ग, जगदग्रज, चराचर गुरु, गोप्य, गूढ़ात्मा, गूढ़गोचर, सद्योजात, प्रकाशात्मा, ज्वलज्ज्वलन सप्रभ, आदित्य वर्ण, भर्माभ, सुप्रभ, कनकप्रभ, सुवर्ण वर्ण, रूक्माभ,

सूर्यकोटि सम प्रभ, तपनीय निभ, तुङ्ग, बालार्काभ, अनलप्रभ, सन्ध्याभ्रवभ्रु, हेमाभ, तप्त चामीकरप्रभ, निष्टप्तकनकच्छाय, कनत्कञ्चनसन्निभ, हिरण्य वर्ण, स्वर्णाभ, शात कुम्भनिभप्रभ, द्युम्नाभ, जात रूपाभ, तप्त जाम्बूनदद्युति, सुधौत कलधौत श्री हाटक द्युति, प्रदीप्त, शिष्टेष्ट, पुष्टिद, पुष्ट, स्पष्ट, स्पष्टाक्षर, क्षम, शत्रुघ्न, अप्रतिघ, अमोघ, प्रशास्ता, शासिता, स्वभू, शान्तिनिष्ठ, मुनिज्येष्ठ, शिवताति, शिवप्रद, शान्तिद, शान्तिकृत्, शान्ति, कांतिमान्, कामितप्रद, श्रेयोनिधि, अधिष्ठान, अप्रतिष्ठ, प्रतिष्ठित, सुस्थिर, स्थावर, स्थाणु, प्रथीयान्, प्रथित, पृथु ।

दिग्वासा वातरशनो निर्ग्रन्थेशो निरम्बरः ।
निष्किञ्चनो निराशंसो ज्ञानचक्षुरमोमुहः ॥१ ॥
तेजोराशिरनन्तौजा ज्ञानाब्धिः शीलसागरः ।
तेजोमयोऽमितज्योतिर्ज्योतिमूर्तिस्तमोपहः ॥२ ॥
जगच्चूडामणिर्दीप्तः शंवान्विघ्नविनायकः ।
कलिघ्नः कर्मशत्रुघ्नो लोकालोकप्रकाशकः ॥३ ॥
अनिद्रालुरतन्द्रालुर्जागरूकः प्रमामयः ।
लक्ष्मीपतिर्जगज्ज्योतिर्धर्मराजः प्रजाहितः ॥४ ॥
मुमुक्षुर्बन्धमोक्षज्ञो जिताज्ञो जितमन्मथः ।
प्रशान्तरसशैलूषो भव्यपेटकनायकः ॥५ ॥
मूलकर्ताऽखिलज्योतिर्मलघ्नो मूलकारणम् ।
आप्तो वागीश्वरः श्रेयाञ्छ्रायसोक्तिर्निरुक्तवाक् ॥६ ॥
प्रवक्ता वचसामीशो मारजिद्विश्वभाववित् ।
सुतनुस्तनुनिर्मुक्तः सुगतो हतदुर्नयः ॥७ ॥
श्रीशः श्रीश्रितपादाब्जो वीतभीरभयङ्करः ।
उत्सन्नदोषो निर्विघ्नो निश्चलो लोकवत्सलः ॥८ ॥
लोकोत्तरो लोकपतिर्लोकचक्षुरपारधीः ।
धीरधीर्बुद्धसन्मार्गः शुद्धः सूनृतपूतवाक् ॥९ ॥

प्रज्ञापारमितः प्राज्ञो यतिर्नियमितेन्द्रियः ।
भदन्तो भद्रकृद्भद्रः कल्पवृक्षो वरप्रदः ॥१०॥
समुन्मूलितकर्मारिः कर्मकाष्ठाशुशुक्षणिः ।
कर्मण्यः कर्मठः प्रांशुर्हेयादेयविचक्षणः ॥११॥
अनन्तशक्तिरच्छेद्यस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः ।
त्रिनेत्रस्त्र्यम्बकस्त्र्यक्षः केवलज्ञानवीक्षणः ॥१२॥
समन्तभद्रः शान्तारिर्धर्माचार्यो दयानिधिः ।
सूक्ष्मदर्शी जितानङ्गः कृपालुर्धर्मदेशकः ॥१३॥
शुभंयुः सुखसाद्भूतः पुण्यराशिरनामयः ।
धर्मपालो जगत्पालो धर्मसाम्राज्यनायकः ॥१४॥

इति दिग्वासाद्यष्टोत्तरशतम् ॥१०॥ अर्घ्यम् ।

श्री दिग्वासाद्यष्टोत्तरशतक (१०)

दिग्वासा, वातरशन, निर्ग्रन्थेश, निरम्बर, निष्किंचन, निराशंस, ज्ञानचक्षु, अमोमुह, तेजोराशि, अनन्तौज, ज्ञानाब्धि, शीलसागर, तेजोमय, अमित ज्योति, ज्योतिर्मूर्ति, तमोऽपह, जगच्चूड़ामणि, दीप्त, शंवान्, विघ्न विनायक, कलिघ्न, कर्म शत्रुघ्न, लोकालोक प्रकाशक, अनिन्द्रालु, अतन्द्रालु, जागरूक, प्रमामय, लक्ष्मीपति, जगज्ज्योति, धर्मराज, प्रजाहित, मुमुक्षु, मोक्षज्ञ, जिताक्ष, जितमन्मथ, प्रशांत रस शैलूष, भव्य पेटक नायक, मूलकर्ता, अखिल ज्योति, मलघ्न, मूल कर्त्ता, आप्त, वागीश्वर, श्रेयान्, श्रायसौक्ति, निरूक्तवाक्, प्रवक्ता, वचसामीश, मारजित, विश्वभाव वित, सुतनु, तनु निर्मुक्त, सुगत, हत दुर्नय, श्रीश, श्रीश्रितपादाब्ज, वीतभी, अभयंकर उत्सन्नदोष, निर्विघ्न, निश्चल, लोक वत्सल, लोकोत्तर, लोकपति, लोकचक्षु, अपारधी, धीरधी, बुद्ध सन्मार्ग, शुद्ध, सत्यसूनृतवाक् प्रज्ञा पार मित, प्राज्ञ, यति, नियमितेन्द्र, भदंत, भद्रकृत्, भद्र, कल्पवृक्ष, वरप्रद, समुन्मूलित कर्मारि, कर्म काष्ठाशु शुक्षणि, कर्मण्य, कर्मठ, प्रांशु, हेयादेय विचक्षण, अनन्त शक्ति, अच्छेद्य त्रिपुरारि, त्रिलोचन, त्रिनेत्र, त्र्यम्बक, त्र्यक्ष, केवलज्ञान वीक्षण समन्तभद्र, शान्तारि, धर्माचार्य, दयानिधि, सूक्ष्मदर्शी, जितानङ्ग, कृपालु, शुभंयु, धर्मदेशक, सुखसाद्भत, पुण्यराशि अनामय, धर्मपाल, जगत्पाल, धर्म साम्राज्य नायक ।

जाप्य मंत्र

35 अक्षरों का मंत्र

णमो अरिहंताणं, णमोसिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमोउवज्झायाणं णमो लोए सव्व साहूणं ।

16 अक्षरों का मंत्र

अरहंत सिद्ध आइरिया उवज्झाया साहू

6 अक्षरों का मंत्र

(1) अरहन्त सिद्ध (2) अरहन्त सिसा (3) ओं नमः सिद्धेभ्यः (4) नमोऽर्हत्सिद्धेभ्यः

5 अक्षरों का मंत्र

अ सि आ उ सा

4 अक्षरों का मंत्र

(1) अरहन्त (2) अ सि साहू

2 अक्षरों का मंत्र

(1) सिद्ध (2) अ आ (3) ओं ह्रीं

1 अक्षर का मंत्र

ओम्

रत्नत्रय जाप्य मंत्र

ओं ह्रीं श्री सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रेभ्यो नमः ।

दशलक्षण जाप्य मंत्र

ओं ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद् गताय उत्तम क्षमा धर्माङ्गाय नमः ।

अथवा

ओं ह्रीं उत्तमक्षमा धर्माङ्गाय नमः ।

इसी प्रकार 'उत्तम मार्दव' आदि धर्मो का मंत्र जानना चाहिये ।

षोडश कारण जाप्य मंत्र

समुच्चय मंत्र- ओं ह्रीं षोडश कारण भावनाभ्यः नमः

1. ओं ह्रीं दर्शन विशुद्धये नमः
2. ओं ह्रीं विनय सम्पन्नतायै नमः ।
3. ओं ह्रीं शील व्रतानति चाराय नमः ।
4. ओं ह्रीं अभीक्षण ज्ञानोपयोगाय नमः ।
5. ओं ह्रीं संवेगाय नमः ।
6. ओं ह्रीं शक्ति तस्त्यागाय नमः ।
7. ओं ह्रीं शक्तितस्तपसे नमः ।
8. ओं ह्रीं साधु समाध्ये नमः ।
9. ओं ह्रीं वैयावृत्यकरणाय नमः ।
10. ओं ह्रीं अर्हद्‌भक्तये नमः ।
11. ओं ह्रीं आचार्य भक्तये नमः ।
12. ओं ह्रीं बहुश्रुत भक्तये नमः ।
13. ओं ह्रीं प्रवचन भक्तये नमः ।
14. ओं ह्रीं आवश्यका परिहाणये नमः ।
15. ओं ह्रीं सन्मार्ग प्रभावनायै नमः ।
16. ओं ह्रीं प्रवचन वत्सलत्वाय नमः ।

नंदीश्वर व्रत (आष्टान्हिक व्रत) जाप्य मंत्र

(1) ओं ह्रीं नंदीश्वर संज्ञाय नमः ।

(2) ओं ह्रीं अष्ट महाविभूति संज्ञाय नमः ।

(3) ओं ह्रीं त्रिलोक सार संज्ञाय नमः ।

(4) ओं ह्रीं चतुर्मुख संज्ञाय नमः ।

(5) ओं ह्रीं पंचमहालक्षण संज्ञाय नमः ।

(6) ओं ह्रीं स्वर्ग सोपान संज्ञाय नमः ।

(7) ओं ह्रीं श्री सिद्ध चक्राय नमः ।

(8) ओं ह्रीं इन्द्रध्वज संज्ञाय नमः ।

पुष्पांजलि व्रत जाप

ओं ह्रीं पंच मेरु संबंधि अशीति जिनालयेभ्यो नमः

रोहणी व्रत जाप

ओं ह्रीं श्री वासु पूज्य जिनेन्द्राय नमः

ऋषि मण्डल जाप्य मंत्र

ओं ह्रा ह्रिं ह्रुं ह्रूं ह्रे ह्रैं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रेभ्यो ह्रीं नमः

लघु शान्ति मंत्र

ओं ह्रीं अर्हं असि आ उसा सर्व शान्तिं कुरु-कुरु स्वाहा

रविव्रत जाप्य मंत्र

ओं ह्रीं अर्हं श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथाय नमः ।

मनोरथ सिद्धि दायक मंत्र

ओं ह्रीं श्रीं अर्हं नमः

लक्ष्मी प्राप्ति एव मनोकामना पूर्ण करने का मंत्र

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं श्री असि आ उ सा नमः

शान्तिकारक मंत्र

ओं ह्रीं परम शान्ति विधायकाय श्रीशान्ति नाथाय नमः ।

सर्व सिद्धि दायक मंत्र

ओं ह्रीं क्लीं श्रीं अर्हं श्री वृषभ नाथ तीर्थंकराय नमः

सर्वग्रह शान्ति मंत्र

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा सर्व शान्ति कुरु कुरु स्वाहा ।

लघु शान्ति मंत्र

ओंह्रीं अर्हं असि आ उ सा सर्व शान्तिं कुरु-कुरु स्वाहा ।

सोला-सोलह प्रकार की शुद्धि

(1) द्रव्य शुद्धि (2) क्षेत्र शुद्धि (3) काल शुद्धि (4) भावशुद्धि ।

(1) द्रव्य शुद्धि—

(1) **अन्न शुद्ध**—खाद्य सामग्री सडी गली धुनी, एवं अभक्ष्य न हो ।

(2) **जल शुद्धि**—जल जीवानी किया हुआ हो, प्रासुक हो, नल का न हो ।

(3) **अग्नि शुद्धि**—ईंधन देखकर, शोधकर, उपयोग किया गया हो ।

(4) **कर्त्ता शुद्धि**—भोजन बनाने वाला स्वस्थ हो, तथा नहा धोकर साफ कपड़े पहने हो, नाखून बड़े न हों, अंगुली वगैरह कट जाने पर खून का स्पर्श खाद्य वस्तु से न हो, गर्मी में पसीना का स्पर्श न हो, या पसीना खाद्य वस्तु में न गिरे ।

(2) क्षेत्र शुद्धि—

(1) **प्रकाश शुद्धि**—रसोई में समुचित सूर्य का प्रकाश रहता हो ।

(2) **वायु शुद्धि**— रसोई में शुद्ध हवा का आना जाना हो ।

(3) **स्थान शुद्धि**—आवागमन का सार्वजनिक स्थान न हो ।एवं अधिक अंधेरे वाला स्थान न हो ।

(4) **दुर्गंधता से रहित**—हिंसादिक कार्य न होता हो गंदगी से दूर हो ।

(3) काल शुद्धि—

(1) **ग्रहण काल**—चन्द्र ग्रहण या सूर्य ग्रहण का काल न हो ।

(2) **शोक काल**—शोक, दुःख, अथवा मरण का काल न हो ।

(3) **रात्रि काल**—रात्रि का समय न हो ।

(4) **प्रभावना काल**—धर्म प्रभावना अर्थात् उत्सव का काल न हो ।

(4) भाव शुद्धि—

(1) **वात्सल्य भाव**—पात्र और धर्म के प्रति वात्सल्य होना ।

(2) **करुणा का भाव**—सब जीवों एवं पात्र के ऊपर दया का भाव ।

(3) **विनय का भाव**—पात्र के प्रति विनय के भाव का होना ।

(4) **दान का भाव**—कषाय रहित हर्ष सहित ऐसे भोजन हितकारी होता है दान करने का भाव होना ।

संक्षिप्त सूतकविधि

सूतक में देव शास्त्र गुरुका पूजन प्रक्षालादिक तथा मंदिर जी की जाजम वस्त्रादिको स्पर्श नहीं करना चाहिये। सूतक का समय पूर्ण हुये बाद पूजनादि करके पात्रदानादि करना चाहिये।

1—जन्मका सूतक दश दिन तक माना जाता है।

2—यदि स्त्रीका गर्भपात (पांचवें छठे महीने में) हो तो जितने महीने का गर्भपात हो उतने दिन का सूतक माना जाता है।

3—प्रसूति स्त्री को 45 दिन का सूतक होता है, कहीं-कहीं चालीस दिन का भी माना जाता है। प्रसूति स्थान एक मास तक अशुद्ध है।

4—रजस्वला स्त्री चौथे दिन पतिके भोजनादिके लिये शुद्ध होती है परन्तु देव पूजन, पात्र दान के लिये पांचवें दिन शुद्ध होती है। व्यभिचारिणी स्त्री के सदा ही सूतक रहता है।

5—मृत्यु का सूतक तीन पीढ़ी तक 12 दिन का माना जाता है। चौथी पीढ़ी में दस दिन का, पांचवीं छठी पीढ़ी तक छै दिन का, सातवीं पीढ़ी में तीन दिन आठवीं पीढ़ी में एक दिन रात, नवमी पीढ़ी में स्नान मात्र में शुद्धता हो जाती है।

6—जन्म तथा मृत्यु का सूतक गोत्र के मनुष्य का पांच दिन का होता है। तीन दिन के बालक की मृत्यु का एक दिन का, आठ वर्ष के बालक की मृत्यु का तीन दिन तक का माना जाता है। इसके आगे बारह दिन का।

7—अपने कुलके किसी गृहत्यागी का सन्यासमरण या किसी कुटुम्बी का संग्राम में मरण हो जाय तो इक दिन का सूतक माना जाता है।

8—यदि अपने कुलका कोई देशांतरमें मरण करे और 12 दिन पहले खबर सुने तो शेष दिनों का ही सूतक मानना चाहिये। यदि 12 दिन पूर्ण हो गये हों तो स्नान-मात्र सूतक जानो।

9—गौ, भैंस, घोड़ी आदि पशु अपने घर में जनै तो एक दिन का सूतक और घर के बाहर जनै तो सूतक नहीं होता। घर में दासी तथा पुत्री के प्रसूति होय तो एक दिन, मरण हो तो तीन दिन का सूतक होता है। यदि घर से बाहर हो तो

सूतक नहीं। जो कोई अपने को अग्नि आदिक में जलाकर वा विष, शस्त्रादिसे आत्महत्या करे तो छह महीने तक का सूतक होता है। इसी प्रकार और भी विचार है सो आदिपुराण से जानना।

10—बच्चा हुये बाद भैंस का दूध 15 दिन तक, गायका दूध 10 दिन तक, बकरी का 8 दिन तक अभक्ष्य (अशुद्ध) होता है। देश भेद से सूतक विधान में कुछ न्यूनाधिक भी होता परन्तु शास्त्र की पद्धति मिलाकर ही सूतक मानना चाहिये।

पूजा, आत्मान्वेषण की प्रक्रिया है। इसे स्वाध्याय भी कहा गया है। जिन पूजा से लाभान्वित होने में हमें कसर नहीं रखनी चाहिये। पूरा लाभ लेने की भरसक कोशिश करनी चाहिये।

यदर्थ मात्रा-पदवाक्य हीनं,
मया प्रमादाद्यदि किञ्चनोक्तम्।
तन्मे क्षमित्वा..... विद धातु देवी,
सरस्वती केवल बोध लब्धिम्॥१०॥

भावार्थ-मैंने प्रमाद से यदि अर्थ मात्रा पद और वाक्य से हीन अर्थात् जनागम से विरूद्ध कुछ प्रतिपादन किया हो तो वह मेरा अपराध सरस्वती देवी क्षमा करे तथा मुझे केवल ज्ञान रूपलब्धि प्रदान करे।

॥परमात्म द्वात्रिंशतिका॥

भक्ष्या भक्ष्य विचार
भक्ष्य पदार्थों की मर्यादायें

क्रमांक	पदार्थ	शीतकाल	ग्रीष्मकाल	वर्षा काल
1.	बूरा	एक मास	15 दिन	7 दिन
2.	सर्व प्रकार का आटा	7 दिन	5 दिन	3 दिन
3.	सर्व प्रकार का पिसा हुआ मसाला	7 दिन	5 दिन	3 दिन
4.	नमक पिसा हुआ,	48 मि०	48 मि०	48 मि०
	नमक में मसाला मिला दे तो	6 घंटे	6 घंटे	6 घंटे
	नमक को गरम कर दे तो	6 घंटे	6 घंटे	6 घंटे
5.	दूध दुहने के पश्चात्	48 मि०	48 मि०	48 मि०
6.	दही गर्म दूध का	24 घंटे	24 घंटे	24 घंटे
7.	छाछ बिलोते समय गर्म पानी डाले तो	12 घंटे	12 घंटे	12 घंटे
	छाछ में पीछे पानी ठण्डा डाले तो	48 मि०	48 मि०	48 मि०
8.	घी, तैल, गुड़	एक वर्ष	एक वर्ष	एक वर्ष
9.	अधिक जल वाले पदार्थ, रोटी, पूरी, हलुआ, बड़ा सेव, बूंदी, आदि तैल या घी में तले हुए पदार्थ पापड़, बड़ी, सेमइंया, आदि।	12 घंटे	12 घंटे	12 घंटे
10.	खिचड़ी, कड़ी, दाल, भात, तरकारी	6 घंटे	6 घंटे	6 घंटे
11.	बिना पानी के पकवान	7 दिन	5 दिन	3 दिन

क्रमांक	पदार्थ	शीतकाल	ग्रीष्मकाल	वर्षा काल
12.	लाई, काजू आदि कुटे गर्म किये मेवा	7 दिन	5 दिन	3 दिन
13.	मक्खन	48 मि०	48 मि०	48 मि०
14.	भेड़ बकरी का दूध (प्रसूत के बाद)	8 दिन	8 दिन	8 दिन
15.	गाय का दूध (प्रसूत के बाद)	10 दिन	10 दिन	10 दिन
16.	भैंस का दूध (प्रसूत के बाद)	15 दिन	15 दिन	15 दिन
17.	प्रासुक पानी	6 घंटे	6 घंटे	6 घंटे
18.	गर्म उबला हुआ पानी	24 घंटे	24 घंटे	24 घंटे
19.	छना हुआ पानी	48 मि०	48 मि०	48 मि०

सम्यक्त दर्शन, ज्ञान चारित्राणि मोक्षः मार्गः

जिनेन्द्र देव भगवान की द्वादशांग वाणी खिरी थी गणधरों ने सुनी थी, आचार्यो ने लिखी थी, उपाध्यायों व गुरुओं ने हमें अपनी भाषा में बतलाया कि जिस भव्य जीव को सच्चा श्रद्धान, अपने देव, शास्त्र, गुरुओं पर हो जायेगा, और वह जीव संयम से चारित्र धारण करें तब ज्ञान की प्राप्ति होती है। यदि वह लगातार यह कार्य करता रहे तब उसको केवल ज्ञान की प्राप्ति हो जावेगी, और जीव अपने कर्मों की निर्जरा करके, अपना आत्म कल्याण कर लेगा। ऐसे ही अनादि काल से अनन्तानन्त जीवों ने अपना आत्म कल्याण किया है।

अब प्रश्न उठता है देव कौन है:- देव, जिनेन्द्र देव जी जिन्होंने अपने सभी पापों का नाश करके, अपनी इन्द्रीयों को वश में करके उन पर विजय प्राप्त कर ली, ऐसे जिनेन्द्र देव से अलग कोई और दूसरी जाति का देव आज तक पैदा नहीं हुआ और न ही इस वक्त हैं, और न ही पैदा होगा। इसीलिए इन्हीं जिनेन्द्र देव को प्रणाम है। हे जिनेन्द्र देव आप वीतराग हैं। सर्वज्ञ हैं। तीनों लोकों के ज्ञाता हैं और तीनों लोकों के दृष्टा हैं। आप अजर –अमर हैं। आपका नाम लेने से जन्म-जन्मातरों के अशुभ कर्म क्षय हो जाते हैं और जीव शुभ कर्मों में रमण करने लगता है जिससे वह बाद में शुद्धों पयोग में जाकर अपने कर्मों की निर्जरा कर सकता है। इसीलिए जिनेन्द्र देव को ही नमस्कार है और किसी जाति के दूसरे देव को नहीं है।

(जैसे- वैष्णो देवी, हनुमान जी, भोले-शंकर-पार्वती, रामचन्द्रजी, दुर्गा इत्यादि)

शास्त्र कौन-२ हैं :- जिनेन्द्र- देवकी द्वादशांग वाणी खिरी थी, गणधरों ने सुनी थी, आचार्यों ने लिखी थी, उपाध्यायों व गुरुओं ने हमें पढ़कर बतलाया था, उन्हीं जिनवाणी पर-पक्का श्रद्धान है और उन्हीं को नमस्कार है। दूसरे शास्त्रों (हनुमान चालिसा आदि) को नहीं है।

गुरु :- निर्ग्रन्थ, दशलक्षण धर्म युक्त, दिगम्बर, परिग्रह रहित, जन कल्याण के वक्ता, निस्पृही, निरा आडम्बरी, इन्हीं गुरुओं को प्रणाम है और किसी-गुरु को प्रणाम नहीं है।

चौपाई

प्रभु-तुम चरण कमल गुण गायें, वहु-विधि भक्ति करों मन लाय,
जन्म-जन्म प्रभु-पाउ तोय, यह सेवा फल दीजै मोय।।
औपा-तिहारी ऐसी होय, जन्म-मरण मिटायौ मोह,
वार-वार मैं विनती करूँ-तुम सेवक भव सागर तरूं।।
नाम लेते सब दुःख-मिट जायें, तुम-प्रभु-दर्शन-देखें आयं,
तुम हो प्रभु -देवन के देव, मैं तो करूँ -चरणन की सेव।।
मैं आयो दर्शन के काज, मेरा जन्म सफल भयो आज,
दर्शन करके निवाउ मैं शीश, मुझ अपराध क्षमा जगदीश।।
सुःख देना, दुःख मेटना यही तुम्हारी वान,
मुझ गरीव की विनती सुन लीजे भगवान,
विन कारण, मोते अधम तार दिये स्वमेव,
भो मेरा कारज सफल कर देवन के देव,
दर्शन-करते देव का, आधी रात बहुसान,
स्वर्गन के सुख भोगकर पावे मोक्ष निदान,
जैसी महिमा तुम विषै, और धरे नहीं कोय,
जो सूरज में ज्योति सो तारागण नहीं होया
नाम तिहारे नाम से अग दिन मगहि पलाय,
खेवटिया तुम हो प्रभु जय-जय -जय जिनराय
वोलो जिनेन्द्र देव की जय,
पंच-परमेष्ठी भगवान को नमः

पुनि द्रव्य कमावन काजै, बहु आरंभ हिंसा साजै।
किये तिसनावश अध भारी,करुणा नहि रंच विचारी ।।२६।।
इत्यादिक पाप अनंता, हम कीने श्री भगवंता।
संतति चिरकाल उपाई, वाणी तै कहिये न जाई।।२७।।
ताको जु उदय अब आयो, नाना विध मोहि सतायो।
फल भुँजत जिय दुख पावै, वचतैं कैसे करि गावै।।२८।।
तुम जानत केवलज्ञानी, दुख दूर करो शिवथानी ।
हम तो तुम शरण लही है, जिन तारन विरद सही है।२६।
इक गॉवपती जो होवे, सो भी दुखिया दुख खोवै।
तुम तीन भुवन के स्वामी, दुख मेटहु अंतरजामी।।३०।।
द्रोपदि को चीर बढ़ायो, सीता-प्रति कमल रचायो।
अंजनसे किये अकामी, दुख मेटहु अतरजामी।।३१।।
मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपना विरद सम्हारो।
सब दोष-रहित करि स्वामी, दुख मेटहु अंतरजामी।।३२।।
इंद्रादिक पदवी नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहि लुभाऊँ।
रागादिक दोष हरीजे, परमातम निज पद दीजे।।३२।।

दोहा

दोष -रहित जिनदेवजी, निज- पद दीज्यो मोय।
सब जीवन के सुख बढ़ैं, आनंद मंगल होय।।
अनुभव माणिक पारखी, जौहरि आप जिनन्द।
येही वर मोहि दीजिये, चरण शरण आनन्द।।

बारहभावना (श्री मंगतराय जी कृत)

दोहा छंद

वंदू श्री अरहंतपद, वीतराग विज्ञान।
वरणूँ बारह भावना,जगजीवन-हित जान।।१।

विष्णुपद छंद

कहां गये चक्री जिन जीता, भरतखंड सारा।
कहाँ गये वह राम-रू-लक्ष्मण, जिन रावण मारा।।
कहां कृष्ण रुक्मिणि सतभामा, अरू सपति सगरी।
कहां गये वह रंगमहल अरू, सुवरनकी नगरी।।२।।
नहीं रहे वह लोभी कौरव जुझ मरे रन में।
गये राज तज पांडव वनको, अगिन लगी तनमें।।
मोह-नींदसे उठ रे चेतन, तुझे जगावन को।
हो दयाल उपदेश करै गुरू, बारह भावन को।।३।।

१ अथिर भावना

सूरज चाँछ छिपै निकलै ऋतु, फिर फिर कर आवै।
प्यारी आयू ऐसी बीतै, पता नहीं पावै।।
पर्वत-पतित-नदी-सरिता-जल बहकर नहि हटता।
स्वाँस चलत यों धटै काठ जयों, आरे सों कटता ।।४।।
ओस-बूंद ज्यों गलै धूपमें, वा अंजुलि पानी।
छिन छिन यौवन छीन होत है क्या समझै प्रानी।।
इंद्रजाल आकाश नगर सम जग-संपति सारी।
अथिर रूप संसार विचारो सब नर अरु नारी।।५।।

२ अशरण भावना

काल-सिंहने मृग-चेतनको घेरा भव वन मैं।
नही बचावन-हारा कोई यों समझो मन मै।।
मंत्र-यंत्र सेना धनसंपति, राज पाट छूटै।
वश नहि चलता काल लुटेरा, कायनगरि लूटै।।६।।
चक्ररत्न हलधर सा भाई काम नही आया।
एक तीरके लगत कृष्ण की विनश गई काया।।
देव धर्म गुरू शरण जगत में, और नहीं कोई।
भ्रम से फिरै भटकता चेतन, युँही उमर खोई।।७।।

३ संसार भावना

जनम-मरन अरु जरा-रोगसे,सदा दुखी रहता।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव-परिवर्तन सहता।।
छेदन भेदन नरक पशूगति, बध बँधन सहना।
राग-उदयसेदुख सुरगति में, कहां सुखी रहना।।८।।
भोगि-पुण्यफल हो इकइंद्री, क्या इसमें लाली।
कुतवाली दिनचार वही फिर,खुरपा अरु जाली।।
मानुष-जन्म अनेक विपतिमय, कही न सुख देखा।
पंचमगति सुख मिलै शुभा-शुभको मेटो लेखा।।६।।

४ एकत्व भावना

जन्मै मरै अकेला चेतन, सुकख-दुखका भोगी।
और किसीका क्या इक दिन यह, देह जुदी होगी।।
कमला चलत न पैंड जाय मरधट तक परिवारा।
अपने अपने सुखको रोवैं, पिता पुत्र दारा।।१०।।
ज्यों मेले में पंथीजन मिल नेह फिरैं धरते।
ज्यों तरवर पै रैन बसेरा पंछी आ करते।।

कोस कोई दो कोस कोई उड़ फिर थक थक हारै।
जाय अकेला हंस संगमें, कोई न पर मारै।।११।।

५ भिन्न भावना

मोह-रूप मृग-तृष्णा जगमें मिथ्या जल चमकै।
मृग चेतन नित भ्रम में उठ उठ, दौडैं थक थककै।।
जल नहि पावै प्राण गमावै, भटक भटक मरता।
वस्तु पराई मानै अपनी, भेद नहीं करता।।१२।।
तू चेतन अरू देह अचेतन, यह जड़ तु ज्ञानी।
मिले-अनाउि यतनतैं बिछुडै, ज्यों पय अरुपानी।।
रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेद ज्ञान करना।
जौलों पौरूष थकै न तौलों उधमसों चरना।।१३।।

६ अशुचि भावना

तू नित पोखै यह सूखे जयों, धोवै। त्यों मैली।
निश दिन करै उपाय देहका,रोग-दशा फैली।।
मात-पिता-रज-वीरज मिलकर, बनी देह तेरी।
मांस हाड़ नश लहू राधकी, प्रगट व्याधि धेरी।।१४।।
काना पौंडा पड़ा हाथ यह चूसै तो रोवै।
फल अनंत जु धर्म ध्यानकी,भूमि-विषै बोवै।।
केसर चंदन पुष्प सुगंधित, वस्तु देखसारी।
देह परसते होय अपावन,निशादिन मल जारी।।१५।।
ज्यों सर-जल आवत मोरी त्यों, आस्रव कर्मनको।
दर्वित जीव प्रदेश गहै जव पुदगल भरमनको।।
भावित आस्रवभाव शुभाशुभ, निशदिन चेतनको।
पाप पुण्य केदोनों करता, कारण वंधनको।।१६।।
पन-मिथ्यात योग-पंद्रह द्वादश- अविरत जानो।
पंचरू वीस कषाय मिले सव, सत्तावन मानो।।

मोह-भावकी ममता टारै, पर परणत खोते।
करै मोखका यतन निरास्रव, ज्ञानी जन होते।।१७।।

८ संवर भावना

जयों मोरी मे डाट लगावै, तव जल रूक जाता।
त्यों आस्रवको रोकै संवर, कयोनहि मन लाता।।
पंच-महाव्रत समिति गुप्तिकर वचन काय मनको।
दशविध-धर्म परीषह-बाइस, बारह भावनको।।१८।।
यह सब भाव सतावन मिलकर, आस्रवको खौते।
सुपन दशासे जागो चेतन, कहां पडे सोते।।
भाव शुभा-शुभ रहित शुद्ध- भावन-सवर भावै।
डाँट लगत यह नाव पड़ी मझधार पार जावै।।१९।।

९ निर्जरा भावना

ज्यों सरवर जल रूका सुखता, तपन पडै भारी।
संवर रोकै कर्म, निर्जरा है सोखनहारी।।
उदय-भोग सविपाक-समय,पक जाय आम डाली।
दूजी है अविपाक पकावै, पालविषै माली।।२०।।
पहली सबके होय, नही कुछ सरै काम तेरा।
दूजी करै जु उधम करकै, मिटै जगत फेरा।।
संवर सहित करो तप प्रानी, मिलै मुकत रानी।
इस दुलहिन की यही सहेली, जानै सब ज्ञानी।।२१।।

१० लोक भावना

लोक अलोक अकाश माहिं थिरए निराधार जानो।
पुरुषरूप कर-कटी भये षट, द्रव्यनसों मानों।।
इसका कोई न करता हरता, अमिट अनादी है।
जीवरु पुद्गल नाचै यामैं, कर्म उपाधीहै।।२२।।

पापपुण्यसों जीव जगत म, नित सुख दुख भरता।
अपनी करनी आप भरै सिर, औरनके धरता।।
मोहकर्मको नाश, मेटकर सब जग की आसा।
निज पदमें थिर होय लोकके, शीश करो वासा।।२३।।

११ बोधि-दुर्लभ भावना

दुर्लभ है निगोदसे थावर, अरु त्रास गति पानी।
नरकायाको सुरपति तरसै सो· दुर्लभ प्रानी।।
उत्तम देश सुसंगति दुर्लभ, श्रावककुल पाना।
दुर्लभ सम्यक दुर्लभ संयम, पंचम गुणठाना।।२४।।
दुर्लभ रत्नत्राय आराधन दीक्षा का धरना।
दुर्लभ मुनिवरके व्रत पालन, शुद्धभाव करना।।
दुर्लभसे दुर्लभ है चंतन, वोधिज्ञान पावै।
पाकर केवलज्ञान, नहीं फिर इस भवमें आवै।।२५।।

१२ धर्म भावना

धर्म 'अहिंसा परमो धर्मः' ही सच्चा जानो।
जो पर को दुख दे, सुख माने, उसे पतित मानों।।
राग द्वेष मद मोह घटा आतम रुचि प्रकटावे।
धर्म-पोत पर चढ़ प्राणी भव-सिन्धु पार जावे।।२६।।
वीतराग सर्वज्ञ दोष विन, श्रीजिनकी वानी।
सप्त तत्वका वर्णन जामें, सवको सुखदानी।।
इनका चितवन बार बार कर, श्रद्धा उर धरना।
'मंगत' इसी जतनतै। इकदिन, भव-सागर-तरना।।२७।।

इति सुलतानपुर निवासी मंगतरायजी औत वारह भावना।।

बारह-भावना

(कविवर भूधरदास जी कृत)

दोहा

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार।।१।।
दल बल देवी देवता, मात पिता परिवार।
मरती बिरियां जीवको, कोई न राखनहार।।२।।
दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान।
कहूं न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान।।३।।
आप अकेला अवतरै, मरै अकेलो होय।
यूं कबहूँ इस जीव को, साथी सगा न कोय।।४।।
जहां देह अपनी नहीं, तहां न अपना कोय।
घर संपति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय।।५।।
दिपै चाम-चादर मढ़ी, हाड पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, अवर नहीं घिन-गेह।।६।।

सोरठा

मोह-नींदके जोर, जगवासी घूमैं सदा।
कर्म-चोर चहुं ओर, सरवस लूटै। सुध नहीं।।७।।
सतगुरु देय जगाय, मोह-नींद जब उपशमै।
तब कछुबनैं उपाय, कर्म-चोर आवत रुकैं।।८।।

दोहा

ज्ञान-दीप तप-तेल भर, घर शोधै भ्रम छोर।
या विध बिन निकसै नहीं, पैठे पूरब चोर।।९।।
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच परकार।
प्रवल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार।।१०।।

चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष-संठान।
तामें जीव अनादि तैं, भरमत हैं बिन ज्ञान।।११।।
धन कन कंचन राजसुख, सबहि सुलभ्कर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान।।१२।।
जाँचे सुर-तरु देय सुख, चिंतन चिंतारैन।
बिन जाचै बिन चिंतये, धर्म सकल सुख दैन।।१३।।

जब सेठ सुधन्नजी को वापी में गिराया।
ऊपरसे दुष्ट फिर उसे वह मारने आया।।
उस वक्त तुम्हें सेठने दिल अपने में ध्याया।
तत्काल ही जंजाल से तब उसको बचाया। हो०।।१३।।

इक सेठके घरमें किया दारिद्रने डेरा।
भोजनका ठिकाना भि न था साँझ सबेरा।।
उस वक्त तुम्हें सेठने. जब ध्यान में घेरा।
घर उसके में तब कर दिया लक्ष्मी का बसेरा। हो०।।१४।।

बलि वादमें मुनिराज सों जब पार न पाया।
तब रातको तलवार ले शठ मारने आया।।
मुनिराजने निजध्यान में मन लीन लगाया।
उस वक्त हो प्रत्यक्ष तहां देव बचाया। हो०।।१५।।

जब रामने हनुमंत को गढ़लंक पठाया।
सीताकी खबर लेनेको सह सैन्य सिधाया।।
मग बीच दो मुनिराजकी लख आगमें काया।
झट वारि मूसलधार से उपसर्ग मिटाया। हो०।।१६।।

जिननाथही को माथ नवाता था उदारा।
घेरेमें पड़ा था वह वज्र-कर्ण विचारा।।
उसवक्त तुम्हें प्रेमसे संकटमें चितारा।
रघुवीरने सब दुःख तहां तुरत निवारा। हो०।।१७।।

रणपाल कुंवरके पड़ीथी पांवमें बेरी।
उस वक्त तुम्हें ध्यान में ध्याया था सबेरी।।
तत्काल ही सुकुमालकी सब झड़ पड़ी बेरी।
तुम राज-कुंवरकी सभी दुखदेद निवेरी। हो०।।१८।।

जब सेठके नंदनको डसा नाग जू कारा।

उसवक्त तुम्हें पीरमें धर धीर पुकारा।।

तत्काल ही उस बाल का विष भूरि उतारा।

वह जाग उठा सोके मानो सेज सकारा। हो०।।१६।।

मुनि मानतुंगको दई जब भूपने पीरा।

तालेमें किया बंद भरी लोह-जंजीरा।।

मुनिईश ने आदीशकी थुति की है गंभीरा।

चक्रेश्वरी तब आनिके झट दूर की पीरा। हो०।।२०।।

शिवकोटिने हट था किया सामंतभद्रसों।

शिव पिंडकी बंदन करो शंको अभद्रसों।।

उस वक्त स्वयंभू रचा गुरु भावभद्रसों।

जिनचंद्रकी प्रतिमा तहां प्रगटी सुभद्रसों। हो०।।२१।।

तोते ने तुम्हें आनिके फाल आम चढ़ाया।

मेंढक ले चला फूल भरा भक्ति का भाया।।

तुम दोनों को अभिराम स्वर्गधाम बसाया।

हम आपसे दातारको लख आज ही पाया। हो०।।२२।।

कपि श्वान सिंह नेवला अज बैल बिचारे।

तिर्यंच जिन्हें रंच न था बोध, चितारे।।

इत्यादिको सुर धांम दे शिवधाममें धारे।

हम आपसे दातारको प्रभु आज निहारे। हो०।।२३।।

तुम हीं अनंत जंतु का भय भीर निवारा।,

वेदोपुराण में गुरु गणधरने उचारा।।

हम आपकी सरनागतीमें आके पुकारा।

तुम हो प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष इच्छितकारा। हो०।।२४।।

प्रभु भक्त व्यक्त भक्त जक्त मुक्तके दानी।
आनंद कंद वृंदको हो मुक्त के दानी।।
मोहि दीन जान दीनबंधु पातक भानी।
संसार विषम खार तार अंतर जामी।। हो०।।२५।।
करुणनिधान बानको अब क्यों न निहारो।
दानी अनंतदानके दाता हो सँभारो।।
वृषचंदनंद 'वृंद' का उपसर्ग निवारो।
संसार विषम खारसे प्रभु पार उतारो।।
हो दीन-बंधु श्रीपति करुणानिधानजी।
अब मेरी विथा क्यों न हरो बार क्या लगी।।२६।।

समाधि भावना

दिन रात मेरे स्वामी मैं भावना ये भाऊं।
देहांत के समय में तुमको न भूल जाऊं।।
शत्रु अगर कोई हो संतुष्ट उनको करदूं।
समता का भाव धरकर सबसे क्षमा कराऊं।।
त्याग अहार पानी औषध विचार अवसर।
टूटे नियम न कोई दृढ़ता हृदय में लाऊं।।
जागें नहीं कषायें नहीं वेदना सातावें।
तुमसे ही लौ लगी हो दुर्ध्यान को भगाऊं।।
आतम स्वरूप अथवा आराधना विचारन।
अरहंत सिद्ध साधु रटना यही लगाऊं।।
धरमात्मा निकट हों चरचा धरम सुनावें।
वह सावधान रक्खें गाफिल न होने पाऊं।।
जीने की हो न वाँछा मरने की हो न इच्छा।।
परिवार मित्र जन से मै। राग को हटाऊं।।
भोगे जो भोग पहिले उनका न होवे सुमरन।
मै। राज्य संपदा या पद इन्द्र का न चाहूं।
रत्नत्रय का पालन हो अन्त में समाधी।....

चिंतामणि पारस कल्पतरु, सुखदायक ये सरधाना है।
तव दासनके सब दास यही, हमरे मनमें ठहराना है।।
तुम भक्तनको सुरइंदपदी, फिर चक्रपर्तापद पाना है।
क्या बात कहों विस्तार बड़ा, वे पावैं मुक्ति ठिकाना है।।७।।
गति चार चुरासी लाखविषैं, चिन्मूरत मेरा भटका है।
हो दीनबंधु करुणानिधान, अबलों न मिटा वह खटका है।।
जब जोग मिला शिवसाधनका, तब विघन करमने हटका है।
तुम विधन हमारे दूर करो सुख देहु निराकुल घटका है।।८।।
ज्यों सागर गोपद रूप किया, मैना का संकट टारा है।
गज-ग्राह-ग्रसित उद्धार लिया, ज्यों अंजन तस्कर तारा है।।
ज्यों सूलीतें सिंहासन औ, बेड़ीको काट बिडारा है।
त्यौं मेरा संकट दूर करो, प्रभु मोकूं आस तुम्हारा है।।९।।
ज्यों फाटक टेकत पांय खुला, औ सांप सुमन कर डारा है।
ज्यों खड्कग कुसुमका माल किया, बालक का जहर उतारा है।
ज्यों सेठ विपत चकचूरि पूर, घर लक्ष्मीसुख विस्तारा है।
त्यों मेरा संकट दूर करो, प्रभु मोकूं आस तुम्हारा है।।१०।।
यद्यपि तुमको रागादि नहीं, यह सत्या सर्वथा जना है।
चिनमूरति आप अनंतगुनी, नित शुद्धदशा शिवथाना है।।
तद्यपि भक्तकी भीरि हरो, सुख देत तिन्हें जु सुहाना है।
यह शक्ति अचिंत तुम्हारी का, क्या पावै पार सयाना है।।११।।
दुखखंडन श्रीसुखमंडनका, तुमरा प्रन परम प्रमाना है।
वरदान दया जस कीरतका, तिहुंलोकधुजा फहराना है।।
कमलाधरजी! कमलाकरजी! करिये कमला अमलाना है।
अब मेरि विथा अवलोकि रमापति, रंच न बार लगाना है।।१२।
हो दीनानाथ अनाथहितू, जन दीन अनाथ पुकारी है।
उदयागत कर्मविपाक हलाहल, मोह विथा विस्तारी है।।
ज्यों आप और भवि जीवनकी, तत्काल विथा निरवारी है।
त्यों 'वृंदावन' यह अर्ज करै, प्रभु आज हमारी बारी है।।१३।।

दुःखहरण विनती

(शेर की लय में तथा और और रागतियों में भी वनती है।)

श्रीपति जिनवर करुणायतनं, दुखहरन तुमारा वाना है।
मत मेरी वार अवार करो, मोहि देहु विमल कल्याना है।टेक।।
त्रैकालिक वस्तु प्रत्याक्ष लखो, तुम सें कछु वात न छाना है।
मेरे उर आरत जो वरतैं, निहचै सब सो तुम जाना है।
अवलोक् विथा मत मौन गहो, नहीं मेरे कहीं ठिकाना है।
हो राजिवलोचन सोचविमोचन, मै तुमसों हित ठाना है।।१।।
सब ग्रंथनि में निरग्रंथनिने, निरधार यही गणधार कही।
जिननायक ही सब लायक हैं, सुखदायक छायक ज्ञानमही।।
यह बात हमारे कान परी, तब आन तुमारी सरन गही।
क्यों मेरी बार बिलंब करो, जिन नाथ कहो वह बात सही।।२।।
काहूको भोग मनोग करो, काहूको स्वर्ग-विमाना है।
काहूको नाग नरेशपती, काहूको ऋद्धि निधाना है।
अब मोपर क्यों न कृपा करते, यह क्या अंधेर जमाना है।
इन्साफ करो मत देर करो, सुखवृंद भरो भगवाना है।।३।।
खल कर्म मुझे हैरान किया, तब तुमसों आन पुकारा है।
तुम ही समरत्थ न न्याय करो, तब बंदेका क्या चारा है।।
खल घालक पालक बालकका नुपनीति यही जगसारा है।
तुम नीति निपुण त्रैलोकपती, तुमही लगि दौर हमारा है।।४।।
जबसे तुमसे पहिचान भई, तबसे तुमहीको माना है।
तुमरे ही शासनका स्वामी, हमको शरना सरधाना है।।
जिनको तुमरी शरनागत हैं, तिनसौं जमराज डराना है।
यह सुजस तुम्हारे सांचेका, सब गावत वेद पुराना है।।५।।
जिसने तुमसे दिलदर्द कहा, तिसका तुमने दुख हाना है।
अघ छोटा मोटा नाशि तुरत, सुख दिया तिन्हें मनमाना है।।
पावकसाकें शीतल नीर किया, औ चीर बढ़ा असमाना है।
भोजन था जिसके पास नहीं, सों किया कुबेर समाना है।।६।।

जिनवाणी स्तुति

(अनन्त कुमार जैन)

हे भारती माँ हे भारती माँ ।
तेरी उतारें सभी आरती माँ

अरिहन्त भाषित ये जिनवाणी प्यारी ।

गणधर ऋषि और मुनियो ने धारी
जो तुझको ध्याते सुख शान्ति पाते ।
जीवन की नौका को तू तारती माँ ।

हे भारती ....

तेरे श्रवण से खुशी हममें छाई
नया बोध पाया दिशा नव्य पाई ।
दया धर्म संयम के पथ पर चले हम
अतः आज मिलकर करें आरती माँ ।

हे भारती ....

माँ तेरी महिमा को कैसे बताऊँ ।
अल्पज्ञ हूँ भक्ति से सिर झुकाऊँ ।।
सद्ज्ञान का सूर्य तम को करे दूर
ज्योति सदा फैले यू भारती माँ ।

हे भारती माँ......................

माता जिनवाणी हमारी,दूर मत करना शरण से
दे सहारा मात मेरी, मैं लगा तेरी चरण से,

दूरमत ....

छोड़कर संसार सारा, माँ लिया तेरा सहारा
ठौर तेरा ना मिला तो, क्या मिला इस मनुज तन से

दूरमत..........................

पवित जीवन पुण्य होगा, चरण रज से धन्य होगा।
मै चरण तेरे परवारु, भक्ति के गीले नयन से ।

दूरमत ....

सप्त भंगा गीत तुझमें, स्याद्वादी रीत तुझ में
मै बनूँ संगीत तेरा छूट जाऊँ भव भ्रमण से

दूरमत ....

तेरे ही आँचल तले माँ, गर मेरा जीवन पले माँ
है अटल विशवास मेरा, जीत जाँऊगा मरण से

दूरमत............................

ज्ञान का वरदान दे माँ, त्याग का सम्मान दे माँ,
बोधि समाधि मिले तुझको, माँ तेरे ही अनुशरण से

दूरमत............................

जिनवाणी को नमन करो, यह वाणी है भगवान
की वन्दे तारणम् जय जय वन्देतारणम् स्याद्वाद की
धारा बहती अनेकान्त की माता है मद मिथ्यात्व
कषायें गलती, राग द्वेष गल जाता है। पढ़ने से है
ज्ञान जागता, पालन से मुक्ति मिलती जड़ चेतन
का ज्ञान हो इससे, कर्मों की शक्ति हिलती इस
वाणी का मनन करो, यह वाणी है कल्याण की

वन्दे ....

इसके पूत सपूत अनेको, कुन्द कुन्द गुरु
तारण है खुद भी तरे, अनेकों तारे तरने
वालों के कारण हैं महावीर की वाणी है, गुरु
गौतम ने इसको धारी सत्य धर्म का पाठ
पढ़ाती भव्यों को ही हितकारी सब मिल करके
नमन करो,यह वाणी केवल ज्ञानकी

वन्दे तारणम्......................

श्री ऋषि-मण्डल

जल फलादिक द्रव्य लेकर अर्घ सुन्दर कर लिया।
संसार रोग निवार भगवन् वारि तुम पद में दिया।।
जहां सुभग ऋषिमंडल विराजैं पूजि मन वच तन सदा।
तिस मनोवांछित मिलत सब सुख स्वप्न में दुख नहीं कदा।।

ओं ह्रीं सर्वोपद्रव-विनाशन-समर्थाय, रोग-शोक-सर्व-संकट हराय, सर्वशान्ति-पुष्टि-कराय, श्रीवृषभादि चौबीस तीर्थंकर, अष्ट वर्ग, अरहंतादि पंचपद, दर्शन-ज्ञान-चारित्रा, चातुर्णिकाय देव, चार प्रकार अवधिधारक श्रमण, अष्ट ऋद्धि संयुक्त ऋषि, बीस चार सूर, तीन ह्रीं, अर्हंतबिम्ब, दशदिग्पाल यन्त्रा सम्बन्धि परमदेवाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।।

श्री ऋषि-मण्डल पूजा भाषा

स्थापना

चौबिस जिन पद प्रथम नमि, दुतिय सुगणधर पाय।
त्रितिय पंच परमेष्ठि को, चौथे शारद माय।
मन वच तन ये चरन युग, करहुं सदा परनाम।
ऋषि मण्डल पूजा रचों, बुधि बल द्यो अभिराम।

अडिल्ल छन्द।

चौबीस जिन वसु वर्ग पंच गुरु जे कहे।
रत्नत्रय चव देव चार अवधी लहे।
अष्ट ऋद्धि चव दोय सूर ह्रीं तीन जू।
अरहंत दश दिग्पाल यंत्र में लीन जू।।

दोहा

यह सब ऋषिमण्डल विषै, देवा देव अपार।
तिष्ट तिष्ट रक्षा करो, पूजूं वसु विधि सार।।

ओं ह्रीं वृषभादि चौबीस तीर्थंकर, अष्ट वर्ग, अर्हंतादि पंचपद, दर्शनाज्ञानचारित्रा रूपरत्नत्रय,. चतुर्निकाय देव, चार प्रकार अवधि धारक श्रमण, अष्ट ऋद्धि, चौबीस सूर, तीन ह्रीं, अर्हंत बिम्ब, दश दिग्पाल, यन्त्रासंबंधी परमदेव समूह अत्र अवतर अवतर संवोषट् आहाननं। अत्र तिष्ट तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।।

(इति स्थापना)

इष्ट प्रार्थना

भावना दिन रात मेरी, सब सुखी संसार हो।
सत्य संयम शील का, व्यवहार घर-घर बार हो।टेक
धर्म का परचार हो अरू देश का उद्धार हो।
और ये बिगड़ा हुआ, भारत चमन गुलजार हो।।१।।
ज्ञान के अभ्यास से, जीवों का पूर्ण विकाश हो।
धर्म के परचार से, हिंसा का जग से ह्रास हो।।२।।
शन्ति अरू आनन्द का, हर एक घर में वास हो।
वीर वाणी पर सभी, संसार का विश्वास हो।।३।।
रोग अरू भय शोक होवें, दूर सब परमात्मा।
कर सकें कल्याण ज्योति, सब जगत की आत्मा।।४।।

पद्य

आरोग्य बुद्धि धन धान्य समृद्धि पावें।
भय रोग शोक परिताप सुदूर जावें सद्धर्म, शास्त्र गुरू भम्ति सुशांति होवे।
व्यापार लाभ कुल वृद्धि सुकीर्ति होवे।।१।।
श्री वर्द्धमान भगवान सुबुद्धि देवें।
सन्मान सत्यगुण संयम शील देवें।।
नव वर्ष हो यह सदा सुख शंतिदाई।
कल्याण हो शुभ तथा अति लाभ होवे।।२।।

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अर्हत-सिद्धाचार्योपाध्याय-साधवः शांति पुष्टिं च कुरूत २ स्वाहा।

गौतम स्वामीजी का अर्घ्य

गौतमादिक सर्वे एक दश गणधरा।
वीर जिन के मुनि सहस चौदह वरा।।
नीर गंधाक्षतं पुष्प चरू दीपकं।
धूप फल अर्घ्य ले हम जजें महर्षिकं।।
ओं ह्रीं महावीर-जिनस्य गौतमाद्येकादश-गणधर-चतुर्दश
सहस्र मुनिवरेभ्योऽर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

अन्तराय-नाशार्थ अर्घ्य।

लाभ की अंतराय के वश जीव सुख ना लहै।
जो करे कष्ट उत्पात सगरे कर्मवश विरथा रहे।।
नहिं जोर वाको चले इक छिन दीनसो जगमें फिरे।
अरहंत सिद्धसु अधर धरिके लाभ यों कर्म को हरे।।
ओं ह्रीं लाभांतराय-कर्म-रहिताभ्यां अर्हत्-सिद्ध-परमेष्ठिभ्यां अर्ध्यम् नि०।
अंतराय है कर्म प्रबल जो दान लाभ का घातक है।
वीर्य भोग उपभोग सभी में, विघ्न अनेक प्रदायक है।।
इसी कर्म के नाश हेतु श्री, वीर जिनेन्द्र और गणनाथ।
सदा सहायक हों हम सब के, विनती करें जोड़कर हाथ।।

लाभ 卐 शुभ

श्री ऋषभदेवाय: नमः श्री महावीराय: नमः
श्री गौतम-गणधराय: नमः श्री केवल ज्ञान-लक्ष्मयै: नमः
श्री "जन सरस्वत्मै नमः"